भूमिका

गुरुदेव का जीवन

१४ सितम्बर १९४२,उतर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद में एक बालक का जन्म हुआ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेटजाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित ४५ मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता। बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ में आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वेसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे। पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विशय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था। प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की एंसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ। कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो में श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म का कारण बनी। गुरुदेव इस जन्म में भले ही अपठित रहे,लेकिन शवासन की मुद्रा में आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान,उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष-स्थ आत्माओ का दिव्य उद्बोधन, प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहाँ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती। इन पंवचनो में ईश्वरीय की सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, ब्रह्माण्ड की विशालता, सृष्टि का उद्देश्य,विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो में ये किसी भी मनुष्य का,समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थ्य रखते है।

२० वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके, पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया। जिसके अर्न्तगत सन् १९६२ से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित ५० वर्ष के जीवन को भोगकर सन् १९९२ में महाप्रयाण किया।

इस अन्तराल इनके १५०० प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये। जिनको धीरे-धीरे प्रकाशित किया जा रहा है। वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है। उसके सम्वर्धन, संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है। जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस में प्रसारित हो सके। वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

१ प्रथम अध्याय-अनुशासन का मूर्तरूप राष्ट्र

संसार में वह मानव राष्ट्रीय होता है जो कर्म, वचन, मन से इस राष्ट्रीय आभा को जानता हुआ उसके लिए आहुति देता है। राष्ट्रीय जीवन वह है जिसमें मानव कोई अपराध नहीं करता। वह अपनी दृढ़ता को लेकर साहस और मानवीय मर्यादा के आधार पर अपने जीवन को उल्लास में ले जाता है। एक मानव है जो राष्ट्रीय क्षेत्र में नहीं केवल, मानवीय क्षेत्र में अपने को ऊँचा बनाना चाहता हे। मानवीय क्षेत्र में वह ऊँचा होता है तो अपने राष्ट्र को पतित नहीं होने देता, प्रजा को पतित न होने देकर मानवता का दिग्दर्शन करता है। (अट्ठारवां पुष्प २०-३-७२ ई.)

इस समाज में राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती जब माता अपने कर्त्तव्य का पालन करती हे, मानव कर्त्तव्यवादी बन जाते हैं। प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, उस समय राष्ट्र के शासन की आवश्यकता नहीं होती। वह समाज बड़ा महान् होता हे, उद्गमता में परिणत होता है। अपने-अपने कार्यों में रत रहने वाला समाज होता है।

शासक वहाँ होता है जहाँ निर्बुद्धि प्राणी होते हैं तथा जहाँ दुराचारी व्यक्ति होते हैं। उनके लिए नियम बनाये जाते हैं, संयम बनाया जाता है। जो संयमी पुरुष होते हैं, अपने मन पर संयम करने वाले होते हैं उनको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती। उनको राजा की आवश्यकता नहीं होती। राजा स्वयं उनके चरणों में ओत-प्रोत हो

जाते हैं। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

सृष्टि के आरम्भ में ३६ लाख वर्ष या कुछ ऋषियों के कथानुसार करोड़ों वर्षों तक यह संसार बिना किसी राजा के चलता रहा। न कोई राजा था, न प्रजा, ऋषि पत्नी और ऋषि-पति। सन्तानोत्पत्ति वेद के अनुकूल होती रही। करोड़ों वर्षों पश्चात् सर्वप्रथम स्वायम्भु मनु ने वेद के आधार पर राष्ट्र का निर्माण किया और राज कर्म करने के लिए अयोध्या नगरी का निर्माण किया। जिस समय मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया, उस समय मिथ्यावादियों की संख्या पूर्व से अधिक हो गई थी।

स्वायम्भु मनु

प्रभु ने यह संसार एक हजषर चतुर्युगियों का रचा है। इनको १४ भागों में बाँट दिया। ये १४ मन्वन्तर हो गए। प्रत्येक मन्वन्तर में एक मनु होता है जो राष्ट्र का निर्माण करता है । एक-एक मन्वन्तर में एक-एक मनु के नियम चलते हैं। इन नियमों को जानकर जो भी राजा राष्ट्र का स्वामी बने, वह दैत्यों पर शासन करने वाले नियमों के अनुकूल कार्य करे। चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। इस समय में जो त्रुटियों आ जाएँ राष्ट्र-निर्माण की नवीन समस्याएँ पापियों को नष्ट करने की आ जाएँ तो उसके बाद द्वितीय स्वायम्भु मनु इसका निर्माण कर देता है। जिस प्रकार नारद व इन्द्र की उपाधियां हैं, इसी प्रकार स्वायम्भु मनु की उपाधि है। यह उसको मिलती हे जो राष्ट्र का ऊँचा निर्माण कर दे। परमात्मा की महान् देन के आधार पर स्वयं एक मन्वन्तर के पश्चात् मनु आ करके राष्ट्र का निर्माण कर देते हैं।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि वही आत्मा आये जिसने स्वायम्भु मनु की उपाधि को पा लिया हो।(दूसरा पुष्प २१-८-६२ ई.)

लोक-लोकान्तरों में राष्ट्र-निर्माण

प्रश्नः-जैसे इस पृथ्वी-मण्डल पर भगवान मनु हुए, तो क्या जिस समय सूर्य-मण्डल में राष्ट्र का निर्माण हुआ वहाँ भी मनु हुए?

उत्तरः- सूर्य-मण्डल में अनुशासनहीनता होती ही नहीं। यदि होती है तो वहाँ मनु का निर्माण नहीं होता; विष्णु का निर्माण होता है। माता सविता के गर्भ से विष्णु का जन्म होता है और उस राजा का चुनाव स्वतः हो जाता है। मनु तथा विष्णु के राष्ट्र निर्माण के सिद्धान्तों में अन्तर होता है। जैसे भगवान् मनु ने ऐसे वाक्य भी मर्यादा में कटिबद्ध कर दिये हैं कि पिता-पुत्री तथा माता-पुत्र को भी एकान्त में नेत्रों में निहित होकर वाक्य नहीं प्रकट करने चाहिए। सूर्य-मण्डल में सतोगुण प्रधान होता है। इसलिए वहाँ इस नियम की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ पार्थिवता होती है वहाँ रजोगुण और तमोगुण की मात्रा अधिक होती है। वहाँ मनु का सिद्धान्त सर्वोपरि होता है। जहाँ अग्नि प्रधान होता है वहाँ सतोगुण प्रधान होता है। वहाँ पिता-पुत्री में सतोगुणी मात्रा होने के नाते उनमें कुटिल भाव उत्पन्न नहीं होते।

प्रश्न. जहाँ सतोगुण है वहाँ राष्ट्र निर्माण की क्या आवश्यकता है?

उत्तर सतोगुण की तीन मात्राएँ होती हैंऋप्रथम प्रभु की मात्रा जो सदैव सत् रहता है। द्वितीय प्रकृति की मात्रा, वह सत् है तथा तृतीय आत्मा का मात्रा, वह भी सत् है। इनकी तीन व्यवहृतियाँ और होती

हैं। एक वह जो अभाव में सत् है। सूर्य-मण्डल अथवा अन्य किसी मण्डल में जहाँ अग्नि प्रधान होती है, वहाँ सतोगुण प्रधान होता है। किन्तु जब उस सतोगुण का सूक्ष्मता से अभाव होने लगता है तभी वहाँ राष्ट्र की आवश्यकता हो जाती है और राजा का चुनाव हो जाता हे। इसके विपरीत पृथ्वी मण्डल में उस समय राजा का चुनाव होता है जब मानव कर्त्तव्यवाद से दूर हो जाता है। बृहस्पति मण्डल में जहाँ बृहस्पति गुरु हैं, ब्रह्मनाता केतु नाम के राजा का चुनाव होता है। इसी प्रकार जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के तत्व हैं उसी प्रकार का निर्माण होता है। (नौवां पुष्प २९-७-६७ ई.)

मनु द्वारा राष्ट्र का निर्माण

भगवान् मनु से पूर्व करोड़ों वर्षों तक यह संसार इस प्रकार चलता रहा। क्योंकि ऋषि परम्परा से राष्ट्र का निर्माण हुआ था। इसमें सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। जहाँ कर्त्तव्य का पालन किया जाता है वहाँ त्याग और तपस्या होती है और वहाँ राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं। राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता तभी होती है जब मानव अपने कर्त्तव्यों से दूर चला जाता है और धर्म का ह्रास होने लगता है। राष्ट्र के नियम धर्म की रक्षा के लिए बनाये जाते हैं। जब सभी मानव अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं उस समय राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती।

राष्ट्र का निर्माण धर्म की रक्षा के लिए किया जाता है। सृष्टि में पहले प्रकाश आता है, फिर अन्धेरा आता है। सृष्टि के निर्माण में

परमात्मा ने प्रथम सूर्य का निर्माण किया जो प्रकाश का प्रतीक है, फिर रात्रि को रचाया। उसके पश्चात् चन्द्रमा को रचाया। इसी प्रकार पहले धर्म था जो प्रकाश का प्रतीक है। उसमें सूक्ष्मता आने पर राष्ट्र की तथा कठोरता की आवश्यकता हुई। राष्ट्र एक प्रकार की रात्रि है। इसमें कर्त्तव्य की आकृति लाने के लिए एक प्रकार की ज्योति जागृत हो रही है। उसी ज्योति की रक्षा के लिए राष्ट्र का निर्माण किया गया। जिस प्रकार गुरु शिष्य को ज्ञान कराने के लिए तब नहीं जान पाता, तो डन्डे का प्रयोग करता है। इसी प्रकार जब राष्ट्र में, प्रजा में धर्म का पालन व अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया जाता तो राजा अपने डन्डे से पालन कराता है। यदि कोई यह कहे कि राष्ट्र में धर्म नहीं होता, तो वह राष्ट्र नहीं केवल स्वार्थ का क्षेत्र है। जहाँ राजा के साथ धर्म नहीं होता वहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है। जहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है, वहाँ स्वार्थ होता है। जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ विनाशता होती है। जहाँ विनाशता होती है वहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और संसार विनाश को प्राप्त हो जाता है। (सातवां पुष्प ७-७-६५ ई.)

जब मनु ने देखा कि धर्म पर आक्रमण होने लगा है, देवता कम होते जा रहे हैं, तथा दैत्यों का प्रभाव अधिक बढ़ता जा रहा है, तो उन्होंने विभाण्डक, पारा आदि-आदि ऋषियों को एकत्रित करके वेद में राष्ट्र के नियम के विषय में विचार किया। महर्षि तत्व-वेत्ता ने कहा कि वेद में राष्ट्र का विधान उस समय है जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य से विहीन हो जाता है। ऋषियों की सहायता से मनु ने दैत्यों को

दुराचारियों के दुराचार को नष्ट करने के लिए राष्ट्र को संगठित किया।

सर्वप्रथम उन्हांने वर्ण-व्यवस्था स्थापित की। शिक्षालयों में आचार्य यह निदान किया करते थे कि कौन ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी किस वर्ण का है। यदि कोई बुद्धिमान तथा ब्रह्म-तत्त्व पर उसकी बुद्धिमत्ता चलती तो उसे ब्राह्मण की उपाधि देते। जिसकी बुद्धि वाणिज्य आदि में तेज हो उसे वैश्य तथा जो रक्षा करने वाला, अस्त्र-शस्त्र और धनुर्वेद में रुचि लेने वाला हो उसे क्षत्रिय की उपाधि देते। जो इन तीनों में से किसी भी कार्य की विद्या न पा सके उसे शूद्र की उपाधि देते। ऋषियों द्वारा निर्मित उपर्युक्त नियमों का पालन कराने के लिए किसी राजा तथा राज्य के लिए किसी राजधानी की आवश्यकता अनुभव की गई; तो मनु ने सर्वप्रथम इस शरीर रूपी अयोध्या की नकल करके अयोध्या नगरी का निर्माण किया। जिसमें नौ द्वार थे। जैसे नाभि-शरीर का केन्द्र है इसी प्रकार जहाँ राजा बैठकर न्याय करे वह राष्ट्र का केन्द्र कहलाया। (सातवां पुष्प ७-७-६५ ई.)

जो मानव पाप किया करते, दुराचारी होते, उनके लिए राज्य के दूत होते। सत् पुरुषों के लिए, ऊँची देव-कन्याओं के लिए, ऊंचे कर्म करने वालों के लिए राज्य का कोई प्रबन्ध नहीं होता। वे तो राष्ट्र नियम जानते हैं तथा नियम के आधार पर चलते हैं। राष्ट्र का निर्माण उन लोगों के लिए किया जाता है जो तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं, जिससे वे महान् आत्माओं को, सच्चे व्यक्तियों को कष्ट न दे पाएँ। (दूसरा पुष्प २१-८-६२ ई.)

राष्ट्र की कुछ मान्यताएं

राष्ट्र उसको कहते हैं जहाँ प्राणीमात्र की रक्षा की जाती हो, गौ, दूध देने वाले अन्य पशुओं की रक्षा की जाती है; जहाँ विषैले वायु को शोषण करने वाले प्राणियों की रक्षा की जाती हो। इनकी रक्षा करना इसलिए अनिवार्य है, क्योंकि यह प्राणीमात्र को लाभ देते हैं। एक-दूसरे से इनका सम्बन्ध इतना घनिष्ट होता है कि जैसे मेघ और वायु का, तेज और वायु का, तेज और समुद्रों का, समुद्र और मेघों का। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

जिस राष्ट्र में एक संस्कृति न हो वहाँ मानव के विचार कभी भी एकता में नहीं आ सकते। एकता के लिए एक भाषा व एक संस्कृति का होना अनिवार्य है। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

राष्ट्रीयता उसी समय आती है जब प्रजा में प्रीति होती है तथा अपनापन होता है। तब प्रजा अन्न कहीं का ग्रहण करती है, गुणगान कहीं का गाती है तो वह राष्ट्र नहीं होता। वह तो एक समय में श्मशान भूमि बन जाता है। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

जिस राष्ट्र में नारी अपने श्रृंगार को भ्रष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करती है वह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। जिस राष्ट्र में माताओं के, कन्याओं के श्रृंगार को नष्ट किया जाता हो वह नष्ट हो जाना चाहिए। (नौवां पुष्प २६-७-६७ ई.)

राष्ट्रवाद रूढ़िवाद से कदापि भी पवित्र नहीं बन सकता। क्योंकि जिन मानवों के मस्तिष्क में रूढ़िवाद के अंकुर होते हैं, विशेषांकुर होते हैं उससे मानवता का सदैव विनाश होता रहता है। (बाईसवां

पुष्प)

रूढ़ि को हमारे यहाँ अशुद्ध कहा है। रूढ़ि उसे कहते हैं कि कोई महापुरूष हुआ उसने कोई विवेचना दी। उसका अध्ययन वेद के एक ही अंग पर होने के कारण वह सब अंगों को ले नहीं पाता। उस अंग को ले करके वह तो संसार से चला जाता है। उसके अनुयायी जो होते हैं उनमें आरूढ़ता न रह करके, इतना तप न रह करके, जिन सिद्धान्तों को वे महापुरुष चिरकार करते थे, उसमें त्रुटियाँ आ जाती हैं। उन अशुद्धियों को जो उच्चारण करता है, उन्हें वही विरोधी दृष्टिपात आता है और जो उनके अनुकूल होता है उसे अपनाने का प्रयास करते हैं। इसीलिए वह रूढ़ि बन जाती है। वह रूढ़िवाद राष्ट्र के ऊपर अपना आधिपत्य करना चाहता है, क्योंकि वह रूढ़ि राष्ट्र से पृथक होकर बनी। परन्तु जब अधिक समय हो जाता है तो वह राष्ट्रवाद पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर देता है और राष्ट्रवाद भी अशुद्ध हो जाता है। विचारक, राष्ट्रवेत्ता पुरुष यह विचारते हैं कि इस समस्या को कैसे सुलझाएं।

रूढ़ि उस काल में नहीं होती, जब महापुरुष होते हैं, विवेकी पुरुष होते हैं। जब रूढ़ि आती है तो क्राँति भी होती है। यदि वह क्राँति रूढ़िवादियों के विपरीत होती है तो रक्तभरी क्राँति भी होती है। इसलिए राष्ट्र को चाहिए कि वह बुद्धिमानों, विवेकी पुरुषों, योगियों, संयमी पुरुषों को महत्वपूर्ण पद प्रदान करें। राष्ट्र में समय-समय पर शिक्षण-शिविर लगने चाहिए। वे शिविर राष्ट्र को ऊँचा बनाने के सम्बन्ध में विचारते हों।

रूढ़ि वहाँ होती है जब राष्ट्र में द्रव्य को प्रधानता दी जाती है। राष्ट्र और द्रव्य को प्रधानता दे करके और अपने को उसमें संलग्न करके यह जानना कि मैं जितना हूं उतना ही यह संसार है तो उसका नाम रूढ़ि कहलाता है। (अठाईसवां पुष्प १७-११-७५ ई.)

जिस राष्ट्र में स्वार्थ की भावना बढ़ती चली जा रही हो तो वह स्वार्थ उसमें विष का कार्य करता चला जाएगा। दूसरों को नष्ट करने की जो भावना तुम्हारे अन्दर आ चुकी है उसको दूर कर दो। स्वार्थ की भावनाओं में एक-दूसरे को नष्ट करने की भावनाओं की अग्नि तभी शान्त हो सकती है जब मानव में मनोबल हो, विचार बल हो। इसके लिए एकान्त में बैठकर, विचार-विनिमय करके धर्म को व्यापक बनाना होगा।(छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

जिस राष्ट्र में, जिस समाज में सुरापान, मांस-भक्षण और विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट-भ्रष्ट होता चला जाएगा। जब पुत्रियों के नग्न नृत्य कराए जाते हैं, उनको ब्रह्मचारी दृष्टिपात करता है तो उसकी प्रवृत्तियां, इन्द्रियाँ भ्रष्ट हो जाती हैं, ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। दूषित होने पर उनके हृदय में कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती। जब कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती तो अधिकार-अनाधिकार भी नहीं रहता। जहाँ अधिकार-अनाधिकार नहीं रहता वहाँ आलस्य और प्रमाद छा जाता है। आलस्य और प्रमाद आने पर मानव अपने लक्ष्य से दूर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव-मानव के रक्त का पिपासु बनकर राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति हो जाती है। (अठाईसवां पुष्प

१७-११-७५ ई.)

यदि राष्ट्र में धर्म का द्रव्य नहीं, उसका उचित विभाजन नहीं तो उसमें पाप अधिक हो जाएंगे। लक्ष्मी का पति परमात्मा है। परमात्मा धर्म है। जब लक्ष्मी का पति नहीं रहेगा तो लक्ष्मी भी चली जाएगी। तब निर्धनता आ जाती है। (नौवां पुष्प २८-७-६७ ई.)

राष्ट्र में एक नियम यह होना चाहिए कि मानव को एक-दूसरे से घृणा नहीं होनी चाहिए। इस प्रभु के राष्ट्र में दूसरों से घृणा करना, अपने को उच्च मानना, यह मानव का दुर्भाग्य ही होता है। (सोलहवां पुष्प १-३-७० ई.)

महाराजा ज्ञानश्रुति तथा महर्षि भारद्वाज संवाद

भारद्वाज-हे ब्रह्मज्ञानी राजन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि राष्ट्र का प्राण क्या है?

ज्ञानश्रुति-भगवन्! राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है।

भारद्वाज-राष्ट्र की क्रान्ति क्या है?

ज्ञानश्रुति-राष्ट्र की क्रान्ति मानव में वे मानवीय विचार हैं जो राष्ट्रीय-क्रान्ति लाते हैं। अपना-अपना अधिकार पाने के लिए महान् क्रान्ति हुआ करती है।

भारद्वाज-राष्ट्र की शान्ति क्या है?

ज्ञानश्रुति-राष्ट्र की शान्ति है राजा के राष्ट्र में यज्ञ-कर्म होना। यज्ञादि कर्मों का होना ही राष्ट्र में शान्ति मानी गयी है। इस प्रकार राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है; शान्ति यज्ञ है तथा क्रान्ति मानव का कर्त्तव्य है। इसलिए मानव में ईश्वरवाद होगा तो कर्त्तव्य होगा, कर्त्तव्य

होगा तो यज्ञ होगा, यज्ञ होगा तो मानव को राष्ट्र में सुख होगा, शान्ति होगी और महत्ता की जिज्ञासा सदैव मानव के हृदय में प्रदीप्त होती रहेगी।

भारद्वाज-राष्ट्र का गहना क्या है?

ज्ञानश्रुति-राष्ट्र का भूषण राष्ट्र का चरित्र है। राजा के राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा। अतः राष्ट्र में चरित्र होना चाहिए।

भारद्वाज-हे राजन्! आप राजा हैं, अधिराज हैं, राजा के राष्ट्र में वसुन्धरा क्या है?

ज्ञानश्रुति-हे ऋषिवर! राष्ट्र की वसुन्धरा मानव की प्रतिभा है। मानव की प्रतिभा में जो ज्ञान-विज्ञान है, यही राष्ट्र की वसुन्धरा है। वसुन्धरा का अभिप्राय है जिसमें हम बसते हैं। अतः राष्ट्र की प्रतिभा ही मानवता में परिणत रहने वाली है। इसीलिए हमारे यहाँ उसे राष्ट्र की प्रतिभा को स्वीकार किया गया है।

भारद्वाज-क्या आप इसका विश्लेषण जानते हैं?

ज्ञानश्रुति-हे भगवन्! राजा के राष्ट्र में जितना चरित्रवाद होगा एक मानव दूसरे का विश्वासी होगा; एक नारी राष्ट्र के एक भाग से दूसरे भाग तक जाने पर उसको माता तथा भौजाई के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से कोई न देखे, यह चरित्र है। दूसरी मीमांसा चरित्र की यह है कि राष्ट्र में द्रव्य का सामान्य दृष्टि से व्यापकता के साथ सन्तुलित वितरण होना। इससे राष्ट्र में सच्चरित्रता होती है। दूसरे के अधिकार को जो मानव हनन करता है वह भी अचरित्रवान व्यक्ति माना जाता

है। इसलिए राष्ट्र में सर्वत्र समान विभाजित वस्तुएं होनी चाहिए।

भारद्वाज-कर्त्तव्य किसे कहते हैं?

ज्ञानश्रुति-जो मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ अपने अधिकार पर निर्भय रहता है, वह कर्त्तव्यवादी है, वह अपने जीवन की प्रतिभा में कटिबद्ध रहता है, उसमें मानवता एक महत्ता होती है, उसी से वह अपने जीवन को स्वराष्ट्र बना लेता है।

भारद्वाज-राजा के राष्ट्र की क्रान्ति क्या है?

ज्ञानश्रुति-क्रान्ति उसे कहते हैं जो मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करने के पश्चात अधिकार को स्वीकार करता है तथा अपने अधिकार में ही सन्तुष्ट रहता है। जो दूसरों के अधिकार को छीनने का प्रयास करता है, उस समय राष्ट्र में अजीर्ण हो जाता है। जहाँ अजीर्ण होता है, वहां क्रान्ति नहीं होती। वहाँ मानव एक-दूसरे के रक्त का पिपासु बन जाता है। अतः अपने अधिकार से सन्तुष्ट रहने को क्रान्ति कहते हैं, तथा दूसरे के अधिकार को छीनने का प्रयास करने वाले को दण्डित करना चाहिए, क्योंकि यह प्रवृत्ति रक्तभरी क्रांति को जन्म देती है।

भारद्वाज-राष्ट्र में पवित्रवाद, मानवता तथा महत्ता को वसुन्धरा कहते हैं, इस वसुन्धरा की मीमांसा क्या है?

ज्ञानश्रुति-हे ऋृषिवर! राष्ट्र में इस प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिएं जो खाद्य और खनिज-पदार्थों के जानने वाले हों। जहाँ खाद्य और खनिज-पदार्थों पर अनुसन्धान होता रहता है वहाँ पर पवित्रवाद होता रहता है। माता वसुन्धरा या प्रकृति के गर्भ में क्या नहीं होता। राष्ट्र में

खाद्य-पदार्थ अधिक होने चाहिएं। ये तभी होंगे जब अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति हों, जो बुद्धि के विशेषज्ञ हों। जब वे माता के गर्भ में अनुसन्धान करने को कटिबद्ध होते हैं तो गर्भ में नाना प्रकार की धातुओं को तथा खनिजों को जानकर, उनसे नाना प्रकार के यन्त्रों को बनाकर दूसरे लोकों में भ्रमण करते हैं। जब इस प्रकार ऊँचे-ऊँचे विभाग राष्ट्र में होते हैं तो वह पवित्र होता है। यही वसुन्धरा की मीमांसा है। वसुन्धरा नाम माता का भी है। जो माता अपने गर्भस्थल से सुन्दर-सुन्दर पुत्रों को जन्म देती है वह संसार में पूज्यनीय होती है। वह माता वसुन्धरा वास्तव में पूज्य है। उसकी मानवता उसका गर्भाशय है। वह उस समय उज्ज्वल होता है जब कृष्ण जैसे महापुरुष तथा कणाद और गौतम जैसे वैज्ञानिक को जन्म देता हुआ उसका गर्भाशय पवित्र होता है।

भारद्वाज-हे राजन्! आपके राष्ट्र में जहाँ मानवता के अंकुर होते हैं वहाँ एक धारा होती है, यज्ञ-कर्म होते हैं। आपके राष्ट्र में यज्ञ-कर्म किसे कहते हैं?

ज्ञानश्रुति-भगवन्! मेरे राष्ट्र में नाना प्रकार के संकल्प को जानने वाले तथा अग्नि में आहुति देने वाले हैं। जब अग्नि में आहुति दी जाती है तो राष्ट्र सुगन्धमय हो जाता है। विचारों तथा नाना प्रकार की वनस्पतियों की सुगन्धि जिस राजा के राष्ट्र में होती है, वह राष्ट्र वास्तव में पवित्र होता है। मेरी यही कामना रहती है, तथा इसी को लेकर मैं राष्ट्र का पालन करता हूँ। मेरे राष्ट्र में ईश्वरवाद की प्रतिभा रहनी चाहिये क्योंकि ईश्वरवाद ही राष्ट्र का भूषण है। (इक्कीसवां

पुष्प, २९-७-७३ ई.)

जो मनुष्य परमात्मा को सर्वव्यापक मानता है और विचारता है कि जहाँ मेरा मन जाता है वहीं परमात्मा है; तो वह मनुष्य संसार में किसी प्रकार का पाप नहीं कर सकता। जिस राजा के राष्ट्र में यह शिक्षा दी जाती है तथा यही संस्कृति होती है, वह शिरोमणि कहलाता है।(चौथा पुष्प,१८-४-७४)

विवेकी पुरुषों का महत्व

हमको भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक-विज्ञान दोनों को अपनाना चाहिए। भौतिक-विज्ञान से राष्ट्र का निर्माण होता है, तथा आध्यात्मिक-विज्ञान से चरित्र का। दोनों के रहने से राष्ट्र पवित्र बनता है तथा मानवता पवित्र बनती है। केवल भौतिक विज्ञान रहने से हमारा विज्ञान अधूरा रह जाता है। (सातवां पुष्प, ३०-९-६४ ई.)

राष्ट्र में आध्यात्मवाद उस समय तक कदापि नहीं आ सकेगा जब तक राजा स्वयं आध्यात्मिक वैज्ञानिक नहीं होगा। यदि राजा आध्यात्मिक-विज्ञान का जानने वाला हो तो उसकी प्रजा भी विज्ञान को जानने वाली होगी। (छठा पुष्प, प्र. कथा)

आत्म-विश्वासी ही राष्ट्र का नेतृत्व कर सकता है। जिसको अपनी आत्मा पर विश्वास नहीं होता, वह राष्ट्र का नेतृत्व नहीं कर सकता। राष्ट्र और आत्मा का सम्बन्ध है। आत्मा मानव का केन्द्र है। इसे जाने बिना वह कोई कर्त्तव्य नहीं कर सकता। आत्म-विश्वासी बनकर दृढ़ता में पहुँचने के पश्चात् मानव की ऊर्ध्वागति बन जाती है, जीवन में व्यापकता आ जाती है। व्यापकता आ जाने पर मानव अपने जीवन

को धर्मज्ञ बना लेता है। (नौवां पुष्प, १८-७-६७ ई.)

राष्ट्र में विवेकी पुरुष इसलिए होने चाहिएं जिससे विज्ञान का दुरुपयोग न हो। ऋषि आध्यात्मिक विज्ञान तथा भौतिक-विज्ञान दोनों को जानते हैं। आत्मा में लीन होने वाला ब्रह्म-वेत्ता भौतिकवाद के मार्ग से ही होकर जाता है। भौतिकवाद को वह निचली स्थली में त्याग देता है और स्वयं ऊर्ध्व में चला जाता है। विवेकी और योगी पुरुष राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग कराने वाले हों, जब विज्ञान का सदुपयोग होता है तो रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती है। यदि क्रान्ति होती है तो वह बुद्धिवर्द्धक होती है, बुद्धिवर्द्धक क्रान्ति ऐसी होती है कि अपने-अपने विकास का कार्य अपने जीवन के सन्म्बन्ध में विचारते हैं। उस विज्ञान से एक मानव ऊर्ध्वागति में जा रहा है, माता अपने गृह-कार्यों में दक्ष है, अपने गर्भ-स्थल से पुत्र को उत्पन्न करने में दक्ष है। (छब्बीसवां पुष्प, २-८-७३ ई.)

विज्ञान का दुरुपयोग उसे कहते हैं जिस विज्ञान को हम दृष्टिपात करते हैं, श्रवण करते हैं, यदि उन वैज्ञानिक यन्त्रों की वाणी को श्रवण करके हमारा चरित्र भ्रष्ट होता है, इममें अमानवता आती हो तो वह विज्ञान तो है, परन्तु उसका दुरुपयोग है। वह दुरुपयोग ब्रह्मचारियों के चरित्र को भ्रष्ट कर देता है। उससे छात्र-नाश अधिक होता है। जब राष्ट्र में छात्रों का चरित्रभ्रष्ट हो जाता है तो जानो कि राष्ट्र अब नष्ट होने जा रहा है। ब्रह्मचारी को २५ वर्ष की आयु तक ऐसे अश्लील चित्रों का दर्शन नहीं करना चाहिए जिनसे उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए और जीवन की प्रतिभा नष्ट हो जाए। (छब्बीसवां पुष्प,

२-८-७३ ई.)

आज राष्ट्र में गुरुओं का तथा शिक्षकों का अपमान हो रहा है। यह इसलिए कि वेदों की प्रगति तथा ऋषि-मुनियों का चरित्रब्रह्मचारियों के समक्ष नहीं रहा। उसी का यह परिणाम है कि राष्ट्र में तथा समाज में उनके जीवन में केवल भयंकर परिणाम होते चले जा रहे हैं। (छटा पुष्प, १९६६ ई.)

विष्णु राष्ट्र या रामराज्य

हमारे यहाँ विष्णु राष्ट्र का वर्णन आता है। विष्णु कहते ही उसे हैं जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पराकाष्ठा पर हो, जहाँ वैज्ञानिक पुरुष हों, वैज्ञानिक पुरुष अनुसन्धान करने वाले हों। गरुड़ इत्यादि के रूप में प्रायः वैज्ञानिकों का वर्णन आता रहता है। (१) गरुड़ नाम का पक्षी भी होता है, (२) परन्तु गरुड़ यहाँ वैदिक परम्परा में मन को कहा गया है। (३) गरुड़ अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिकों को कहा जाता है। उस विज्ञान पर विराजमान होकर जो लोक-लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वाला हो उन्हें विष्णु कहा जाता है। (चौबीसवां पुष्प, १७-८-७२ ई.)

विष्णु के जय-विजय दो गण हैं। जब हम राष्ट्रीय बनकर दूसरे राष्ट्रों को विजय करना चाहते हैं तो उस समय हम जय और विजय दोनों को अपने समीप रखते हैं। राजा जब दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करता हुआ जय विजय की घोषणा करता है, वह विष्णु बन जाता है। विष्णु बन करके रुद्र रूप धारण करके अपने राष्ट्र को उत्तम बनाता है, उसे महत्ता में लाता है; कभी राष्ट्र की प्रतिष्ठा समाप्त न हो

जाए। राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाला जो चालक होता है, संचालक होता है, वह जानता है कि विष्णु की कितनी महत्ता मानी गयी है। जो राजा विष्णु बनकर रुद्र रूप को धारण नहीं कर सकता, उस विष्णु की आभा को नहीं जान सकता, वह राजा नहीं कहलाता। जब वह उसको क्रियात्मक बनाने का प्रयास करता है तो उसका जीवन एक महत्ता में परिणत हो जाता है। जो राजा विष्णु नहीं बन सकता, अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा को ऊँचा नहीं बना सकता, तो उत्तम ब्राह्मण समाज को चाहिये कि उस राजा को राष्ट्र से दूर कर दे जो ज्ञानी और विवेकी न हो। (तैईसवां पुष्प २८-८-७१ ई.)

राम द्वारा विष्णु बनकर राम राज्य स्थापित करना

भगवान राम ने महाराजा वशिष्ठ से एक वाक्य कहा था कि महाराज! मैं यह जानता हूं कि मेरा राष्ट्र रावण के अत्याचारों से भयभीत है। मेरा राष्ट्र राम राज्य कैसे बन सकता है? उस समय वशिष्ठ बोले, ''हे राम! इस राष्ट्र को राम राज्य बनाने से पूर्व तुम्हें विष्णु बन जाना है। जब तक विष्णु नहीं बनोगे, तुम्हारा राम राज्य किसी प्रकार नहीं बन सकेगा।'' राम बोले, ''प्रभु मुझे व्याख्या कराइये कि मैं विष्णु किस प्रकार बन सकता हूं।''

वशिष्ठ बोले हे राम! सुनो-सर्व प्रथम तुम्हारे भुजाओं में एक पद्म होना चाहिए। पद्म नाम सदाचार और शिष्टाचार का है। जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार और शिष्टाचार होता है उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है। जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार नहीं होता, हृदय में एक-दूसरे का सम्मान नहीं होता, तो जानो कि वह राष्ट्र आज नहीं

तो कल अवश्य समाप्त हो जायेगा।

हे राम! यदि तुम अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना चाहते हो तो अनिवार्य है कि तुम्हारे एक भुजा में पद्म होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में यथार्थ-विद्या होनी चाहिए। विद्या में सदाचार और शिष्टाचार की तरंगें हों। वह विद्या सर्वोतम मानी जाती है, वह विद्या राज्य को सफल बना देती है। हे राम! यह पद्म तुम्हें ऊँचे से ऊँचा बना सकता है। तुम संसार पर शासन कर सकते हो। यदि सदाचार और शिष्टाचार नहीं तो तुम्हारा राष्ट्र राम राज्य कदापि न बनेगा।

द्वितीय तुम्हारे द्वारा 'गदा' होनी चाहिए। गदा नाम है क्षत्रियों का। राजा के राष्ट्र में बलवान क्षत्रिय होने चाहिएं। उन्हें अपनी आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। ब्रह्मचर्य उनके द्वारा पुष्ट होना चाहिए। जिस राजा के राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड दिया जाता है वह राष्ट्र सदैव राम-राज्य बनकर रहता है और जिस राजा के राज्य में अपराधियों को दण्ड नहीं मिलता, उस राजा का राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायेगा। हे राम! तुम्हें 'गदा' को स्थिर करना है, अपराधी को दण्ड देना है; दुराचार को नहीं रहने देना है। उस काल में तुम्हारा राष्ट्र राम-राज्य कहलायेगा। हे राम! तुम्हारे राष्ट्र में गदा और पद्म मुख्य रूप से रहने चाहिएं। यदि तुम्हारे राष्ट्र की कोई वार्ता किसी दूसरे राष्ट्र में पहुँच जाती है तो जानो कि राष्ट्र के क्षत्रिय ऊँचे नहीं हैं। जिस राष्ट्र में गदा होती है उस राजा का राष्ट्र पवित्र होता है।

तृतीय 'चक्र' होना चाहिए। 'चक्र' नाम संस्कृति का है। जिस राजा के राष्ट्र में संस्कृति होती है, उसके राष्ट्र में चक्र होता है।

संस्कृति वह अमूल्य वाणी है जो मानव को सदाचार और शिष्टाचार देने वाली है। संस्कृति कौन सी वाणी को कहते हैं? जो संस्कृति राष्ट्र से लेकर कृषि में, व्यापार में, धनुर्विद्या में, और नाना प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार करने में, सदाचार में, ब्रह्मचर्य की सुरक्षा करने में और अपनी आत्मा की उन्नति करने में और परमात्मा तक पहुंचने में प्रयुक्त होने वाला ज्ञान जिस वाणी में ओत-प्रोत हो उस वाणी का नाम हमारे यहाँ संस्कृति है। हे राम! इसको आज तुम्हें विचारना है। यदि तुम्हें अपने राष्ट्र को राम-राज्य बनाना है तो संसार में चक्र फैलाओ।

इन सबके पश्चात् राम ने प्रश्न किया कि भगवन्! मुझे शंख का निर्णय और करा दीजिए। मैं इस शंख को जानना चाहता हूँ। ऋषि बोले-शंख नाम वेद-ध्वनि का है। जिस राजा के राष्ट्र में वेद ध्वनि होती है और वह भी जटा-पाठ में, माला-पाठ में, धन-पाठ में, विसर्ग पाठ में, विदानद-पाठ में और भी नाना प्रकार के स्वरों में जहाँ भी वेदों का पाठ गाया जाता है उस राष्ट्र में अन्तरिक्ष भी वेद-मन्त्रों के पाठ से आच्छादित रहता है। जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार की शिक्षाएँ, वेद की शिक्षाएँ दी जाती हैं वहाँ का वातावरण भी उत्तम होता है। मनुष्य की विचारधाराएँ ऊँची होती हैं। सदाचार और शिष्टाचार रहता है। हे राम! आज शंख-ध्वनि का प्रश्न किया है। शंख-ध्वनि नाम वेद-ध्वनि का है, ज्ञान का है। हे राम! जिस राजा के राष्ट्र में यज्ञ होते हैं और यज्ञों में वेदों का पाठ होता है, उस राष्ट्र में कार्य करने वाले देवता भी प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर उस राजा के राष्ट्र को और प्रजा को और राजा को मनवांछित फल देते हैं। हे

राम! तुम्हें अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो तुम्हें विष्णु बनना पड़ेगा। (चौथा पुष्प १७-४-६४ ई.)

महाराजा वशिष्ठ मुनि के कथनानुसार जब भगवान् राम विष्णु बन गए तो उन्होंने विजय करने के लिए विचारा। माता की आज्ञा पाकर वनों में चले गए। वह कैसा विचित्र महापुरुष था जिसके मस्तिष्क में एक महान् क्रान्ति आती रहती थी। उन्होंने महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज से कहा कि महाराज! मैं विजय कैसे प्राप्त कर सकता हूँ। महर्षि बोले, 'हे राम! यदि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो विष्णु बनो। और जय-विजय दोनों को अपनाने का प्रयत्न करो, नीतिज्ञ बनो जिससे तुम्हारी विजय हो जाए। आततताई जो आक्रमणकारी है वह नष्ट हो जाना चाहिए। भारद्वाज के इस विचार ने राम के आंगन में ऐसा स्थान ग्रहण किया कि उसी वाक्य को अपने में धारण कर लिया और धारण करने के पश्चात् उन्होंने दोनों का मिलान किया। मिलान करके, विष्णु रूप धारण करके आततताई को नष्ट किया। (तेईसवां पुष्प २८-७-७१ ई.)

राम राज्य की रूपरेखा

राम राज्य यह कहता है कि उनको जीवन दो जो पतित हैं, तथा उन्हें द्रव्य दो जो संग्रहवादी हैं, उनको बीच में लाने का प्रयास करो। (चौबीसवां पुष्प २८-१०-७३ ई.)

दो प्रकार के राष्ट्र होते हैं-(१) ऋत और (२) ब्रह्म। जब राष्ट्र का निर्माण धर्म को लेकर किया जाता है तो राष्ट्र के साथ-साथ ऋत होता है। जब उसमें ब्रह्म को भी सम्मिलित कर लेते हैं तो वह ब्रह्म

और अृत दोनों बन जाता है। राजा ऋत्विज बने। जैसे यज्ञशाला में ऋत्विज सुन्दर आहुति देता है उसी प्रकार राजा भी अपनी मानवता की सुन्दर आहुति दे। राजा इस पर विचार-विनिमय करे कि तेरे राष्ट्र में जो प्रक्रिया है वह सुन्दर है या नहीं। जिस वस्तु का विभाजन होता है उसका भी सुन्दर रूप से संचार हो रहा है या नहीं और ज्ञान पूर्वक भी हो रहा है।

चक्रवर्ती राजा वह होता है जो ऋत्विज होता है, जो अपने राष्ट्र में विभाजन तथा क्रिया पर विचार करता है जैसे-किसी द्रव्य का विभाजन अच्छी प्रकार हुआ या नहीं तथा जहाँ के लिए विभाजन किया गया वहाँ पहुँचा कि नहीं। वह सब नियमावली बनाकर उसके पश्चात् राष्ट्र को सुन्दर बनाया जाता है। जैसे अपराधी को दण्ड दिया जाता है, चाहे डन्डे से दो या ज्ञान से दो या सत्संग से, किसी भी प्रकार से दो किन्तु उसे सुन्दर बनाओ। यह सब राष्ट्र की प्रक्रिया कहलाती हैं। राजा में यह भाव होना चाहिये कि यह द्रव्य मेरा नहीं, यह तो समाज का है, प्रजा का है। यह सोचकर वह सारा जीवन व्यतीत करेगा। तो उसका राष्ट्र अवश्य ही ऊँचा बनेगा। राजा के राष्ट्र में त्याग और तपस्या का होना बहुत अनिवार्य है। विचारों की दृढ़ता को त्याग और तपस्या कहते हैं। नाना प्रकार के प्रलोभनों में न आना, संकट आने पर उन्हें सहन करना तथा उन पर विचार करना, त्याग और तपस्या कहलाती है। जहाँ द्रव्य को नीचे छोड़ कर चरित्रको उन्नत किया जाता है वह राष्ट्र, वह समाज और मानव संसार में महान् और पवित्र कहलाता है।

चक्रवर्ती राजा बनने के लिए यह आवश्यक है कि अपराधियों को दण्ड दिया जाए तथा शिक्षालयों में उपनिषदों तथा दर्शनों की शिक्षा हो। उपनिषदों में वे व्यापक विद्याएं हैं, जिनको पान करते हुए बालकों तथा माताओं के हृदयों में पवित्रवाद छा जाता है। उस पवित्रवाद में शिक्षालयों में और समाज में उच्चता आती है। हम उन विद्याओं पर विचार करके अपने ब्रह्मचारियों को उस पवित्र शिक्षा को प्राप्त कराएँ जिससे हमारा राष्ट्र हमारा समाज हर प्रकार से ऊँचा बनता चला जाए। जहाँ चरित्रवाद और व्यापकता के उदार वाक्य ब्रह्मचारी में ओत-प्रोत किए जाते हों, उपनिषदों के अनुकूल गुरुओं का आदर करने वाले हों, वह राष्ट्र अवश्य ही ऊँचा बनेगा तथा उपनिषदों व वेद के साहित्य को सभी अवश्य स्वीकार कर लेंगे। शिक्षा में हमें भिन्न-भिन्न आचार्यों के विचारों पर मनन करके उनके मर्म को जानना चाहिए, चाहे वे पाणिनी के हों, शिव के हों, कृष्ण के हों, राम के हों अथवा अन्य संसार के किसी महापुरुष के। इस गौरव की पद्धति को इसलिए नहीं लाया जाता है क्योंकि मानव व्यापकता की दृष्टि से अपने विचारों पर दृष्टिपात नहीं करता। वास्तव में ऊँची संस्कृति से ही कल्याण हो सकेगा।

यदि राष्ट्र में भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं तो वैदिक ब्राह्मणों को निर्धारित करते हुए प्रत्येक भाषा का गठन किया जाना चाहिये। जब इस बात पर विचार किया जायेगा कि अमुक भाषा कहाँ से आई? तथा उसका विकास कैसे हुआ? तो यह प्रतीत होगा कि यह ऋषि-भाषा ही अपभ्रंश हो गयी है। इसका कारण शिक्षा-पद्धति का न होना है।

बुद्धिमानों को चाहिए कि भाषा में से अशुद्धियों को दूर करके, शुद्धियों को ला करके एक संस्कृति का गठन करें। संस्कृति गठन होने पर राष्ट्र को ऊँचा बनाया जा सकेगा। ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों की शिक्षा का प्रबन्ध पृथक्-पृथक् होना चाहिए। ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा देने वाली ब्रह्मचारिणी हों तथा ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले आचार्यजन हो। ये दोनों प्रकार के शिक्षक वानप्रस्थी होने चाहिए। ये वानप्रस्थी जितने ऊँचे होंगे उतना ही ऊँचा वे ब्रह्मचारियों को बनाएंगे तथा उतना ही ऊँचा हमारा समाज बनता चला जाएगा।

राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिएं। राजा को चाहिए कि जितने सम्प्रदाय हैं उनके बुद्धिमानों का समाज एकत्रित किया जाए। उनके मौलिक तथ्यों को लेकर विचार लिए जाएँ कि वे हितकर हैं या अहितकर। हितकर विद्या का ही प्रसार किया जाना चाहिये। सम्प्रदाय कदापि नहीं रहने देने चाहिएं क्योंकि इनसे अहित ही होता है। लाभ तो केवल प्रकाश से ही होता है। राष्ट्र में धर्म और नीति जब साथ-साथ चलती है तो राष्ट्र ऊँचा होता है। वर्तमान संकट को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि शासक में साहस हो, दृढ़ता हो, दण्ड देने की क्षमता हो और नम्रता हो। ज्ञान और प्रयत्न से राष्ट्र का निर्माण होता है। ज्ञान से राष्ट्र के नियम बनाये जाते हैं, और क्रिया से उनका विभाजन किया जाता है। उन्हीं विभाजनों से राष्ट्र का निर्माण, राष्ट्र की सम्पत्ति निर्धारित होती हुई राष्ट्र आगे को चला जाता है। (सातवां पुष्प १२-७-६६ ई.)

राष्ट्र के नायकों को सभी यथार्थता में लेना चाहिए। राष्ट्र में भिन्न-

भिन्न विचार-धाराओं के प्राणी रहते हैं। राष्ट्र के कर्मचारियों को उनमें इस प्रकार रहना चाहिए जैसे जल में कमल रहता है। परन्तु उन्हें महापुरुषों की वार्ताओं व विचारों को नहीं ठुकराना चाहिए। यदि ठुकराएँगे तो उनका जीवन संकुचित होकर इस प्रकार का बन जाएगा कि उस राष्ट्र पर तथा प्रजा पर शासन करने योग्य न रहेगा। (नौवां पुष्प २८-७-६७ ई.)

जहाँ महान् आत्माओं को ठोकर तथा दुराचारियों को मान दिया जाता है वह न राष्ट्र होता है न समाज। हमारी राष्ट्र की पद्धति वेद तथा दर्शन के आधार पर होनी चाहिये। मनु द्वारा निर्मित पद्धति होनी चाहिए। इससे यह आर्यावर्त धर्मज्ञ बन सकता है। मनु पद्धति लाने के लिए अहिंसा परमो धर्मः को अपनाना होगा। राष्ट्र में पशु-पक्षी तथा जलचर हों, उनकी हिंसा नहीं होनी चाहिये। उससे राष्ट्र और समाज दोनों ऊंचे बनेंगे। राष्ट्र में बुद्धिमान, वेदाचार्य, वेदज्ञ सबका एक समाज एकत्रित होकर राजा से कहे कि वह राष्ट्र को ऊँचा बनाए।

ब्राह्मण समाज ऊँचा तथा तपस्या में ओत-प्रोत होना चाहिए। केवल वेद के अक्षर-बोधि से ही किसी व्यक्ति को वेदज्ञ नहीं कहा जा सकता। वेदज्ञ वह होता है जो वेद के पथ पर चलने वाला ब्रह्मचारी, सदाचारी हो। वेद की महिमा को अपनाता हुआ, तपस्या में परिणत होता हुआ, अपनी वाणी पर संयम करता हुआ जो भी वाक्य उच्चारण करता है वह अशुद्धियों को नष्ट करता चला जाता है। जब ब्राह्मण इस प्रकार ऊँचा बन जाएगा तो वह आर्यावर्त में नहीं संसार में गौवध बन्द करा सकता है।

राष्ट्र में जब गुरुओं की पद्धति नष्ट हो जाती है, ऋषि-मुनियों के चरित्रकी गाथाएँ ब्रह्मचारियों से दूर चली जाती हैं तो वहाँ अनुशासन समाप्त हो जाता है और राष्ट्र पतन को प्राप्त हो जाता है। राजा का चुनाव श्रेष्ठ ब्राह्मण के द्वारा होना चाहिए। ब्राह्मण उसे चुने जो त्याग और तपस्या में परिणत होने वाला हो। (छठा पुष्प १९६६ ई.)

वेद कहता है कि सबसे पहले राष्ट्र के नियम लो। उसके पश्चात् जब तुम्हारे राष्ट्र के कर्म अच्छे हांगे तो तुम्हारा स्वार्थ स्वयं उसका गुण हो जाता है। कर्त्तव्यवाद में ही मानव को सुख प्रतीत होने लगता है। वेद का सिद्धान्त कहता है कि सार्वभौम प्रजा में सुख होना चाहिए। परन्तु यह तभी हो सकेगा जब राजा ऊँचा होगा, राजा का मस्तिष्क नवीन होगा। नवीन मस्तिष्क तभी होगा। जब वह अपने चरित्रऔर मानवता की रक्षा करेगा। इस नवीनता का आयु से कोई सन्म्बन्ध नहीं है। जब मानव में स्वार्थ और चरित्रहीनता आ जाती है तो वही मस्तिष्क चरित्रहीनता को प्राप्त हो जाता है। जो यह स्वीकार न करे तो यह उसका पाखण्ड है। जब मानव का स्वार्थ अधिक प्रबल हो जाता है तो उस समय उस स्वार्थ की जो अग्नि है वह बाह्य-रूप धारण करती है और वह उसका विराट स्वरूप होता है। जब विराट रूप होता है तो वह मानव को ऐसे निगलती चली जाती है जैसे सूर्य की किरणों रात्रि को निगल जाती हैं।

जब मानव के मस्तिष्क की विचारधारा को नष्ट करके उसे पराधीन किया जाता है तो वह व्यक्ति अधिक समय तक पराधीन नहीं रह सकता। परमात्मा ने मानव को विचार करने तथा कार्य करने के

लिए स्वतन्त्र बनाया है। अतः मानव दूसरे मानव के प्रभाव में, धृष्टता में तभी तक रह सकता है जब तक उसकी अन्तरात्मा की घृणा अपनी पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचती। जब इनका व्यापक रूप बन जाता है तो आगे चलकर वह उसी प्राणी को निगल जाता है जिसमें उसे पराधीन रखने की चेष्टा बन गयी थी।

एक मानव अन्न की कमी से क्षुधा से पीड़ित है, क्योंकि द्रव्यपति उसे एकत्रित करते रहते हैं। एक समय वह आता है कि उसके सहयोगी उसकी सहायता करने लगते हैं। एक समय उनकी भावना अग्नि रूप धारण कर लेती है। उस क्षुधा-पीड़ित व्यक्ति की भावना, द्रव्यपति की प्रतिभा और अन्तःकरण को निगल जाती है। द्रव्य के लोलुप तथा स्वार्थियों को यह सोचना चाहिये कि जब राष्ट्र और तेरे विचार में स्वतन्त्रता ही न रहेगी तो यह द्रव्य कहाँ रह जाएगा। कहा जाता है कि द्रव्य को भोगने का मानव का प्रारब्ध होता है। किन्तु इसमें कुछ विडम्बना है। प्रारब्ध तो है, परन्तु कर्महीन प्राणी का प्रारब्ध सूक्ष्मता को प्राप्त होता चला जाता है। मानव यदि प्रारब्ध पर आश्रित रहा तो कर्म नहीं करेगा और इस प्रकार कर्म की विशेषता समाप्त होती चली जाएगी। इसलिए कर्म और प्रारब्ध को साथ-साथ ही रखना है। जैसे एक मानव दूसरे का रक्तपान करता चला जा रहा है तो उसका प्रारब्ध रक्त का ही बनेगा, तपस्वी का नहीं। एक वैद्यराज है जिसको महापुरुष समझा जाता है। यदि वह किसी रुग्ण-व्यक्ति को अधिक मूल्य पर औषधि देता है तो उसको मूल्य तो अवश्य मिल जाएगा, किन्तु उसका अन्तःकरण यह अवश्य स्वीकार

करेगा कि तू अधिक मूल्य ले रहा है। इस प्रकार वह अधिक मूल्य उसके अन्तःकरण को निगल जायेगा।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा को ऊँचा बनाए। यदि वह वैश्य का कार्य करने लगे, स्वयं कृषि तथा व्यापार करने लगेगा तो उसका क्षत्रियपन समाप्त हो जाएगा। धन तो वैश्यों से आएगा। राजा उसे मानव के चरित्र-निर्माण तथा धर्म के कार्यों में लगावे। राष्ट्र की उत्पत्ति धर्म की रक्षा के लिए होती है, क्योंकि उसकी आवश्यकता कर्त्तव्यहीनता के कारण ही उत्पन्न होती है। अतः धर्म और राष्ट्र पृथक्-पृथक् नहीं होते। पहले धर्म फिर राष्ट्र होता है।

जब कोई सर्प की भान्ति द्रव्य का स्वामी बनकर उसे दबा लेता है, उसे धूर्त कहते हैं। जब राजा ऐसा करने लगे तो वह धूर्तों का राष्ट्र हो जाता है। राजा का क्षत्रियपन उसके कर्त्तव्य में है। उसके साथ उसका राष्ट्रवाद, उसका ब्रह्मचर्यत्व तथा चरित्र है।

जब कोई नारी अपने श्रृंगार को बेचकर उदरपूर्ति करती है तो उसे दुराचारी का राष्ट्र कहते हैं। जहाँ नारी अपने श्रृंगार की रक्षा नहीं कर सकती और मानव अपने चरित्रकी रक्षा नहीं कर सकता वह दैत्यों का राष्ट्र कहलाता है।

जब तक वैदिक परम्परा और धर्म आगे नहीं होगा और राष्ट्रवाद उसके पीछे नहीं होगा, तब तक यह राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बनेगा। राष्ट्र में नीति सुन्दर होनी चाहिए और वह धर्म के साथ-साथ होनी चाहिए। (तेरहवां पुष्प २३-८-६९ ई.)

जहाँ मानव के सुगठित विचार होते हैं, ''अहिंसा परमोधर्मः''

विचार होते हैं, वहाँ उन विचारों में एक शक्ति होती है, ओज होता है, बल होता है। उसी बल के आधार पर राष्ट्र हो, समाज हो, किसी भी प्रकार का समाज हो, धर्म हो, वह उन्नति करता चला जाता है। इसके विपरीत होने पर धर्म और समाज दोनों बिखर जाते हैं वहाँ राष्ट्रीयता नहीं रहती, धर्म को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता है। धर्म किसी काल में भी नष्ट नहीं होता। राष्ट्र का निर्माण होकर राजा को केवल धर्म की रक्षा के लिए चुना जाता है। जहाँ धर्म का ह्रास किया जाता हो और मानवता न हो उसको राष्ट्रवाहक कभी नहीं चुनना चाहिए, उसको राजा कहना बुद्धिमानों के समाज में अपराध होता है। जहाँ धर्म और मर्यादा को नष्ट किया जाए और मूर्खों के अनुकूल अपने विचारों को बनाया जाए तो वह राष्ट्रवाद नहीं हिंसावाद कहलाया जाता है, क्योंकि हिंसा उस मानव के द्वारा ही होती है जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता।

जब मानव कोई कार्य करने चलता है तो जो उसका आन्तरिक हृदय उच्चारण कर रहा है, वही कर्त्तव्यवाद होता है। वास्तव में कर्त्तव्यवाद मानव के हृदय में भी रहता है। मानव का आन्तरिक हृदय जिस वाक्य को उच्चारण करता है, शुद्ध और अशुद्ध को विचारता है, कर्मठता, धैर्य, अधर्म को विचारता है, वही शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो करके ''अहिंसा परमोधर्मः'' और कर्त्तव्यवाद में परिणत होता हुआ राष्ट्र का सुन्दर निर्माणवेत्ता बन जाता है। जहाँ राष्ट्र में प्रमाद आ जाता है वहाँ अराष्ट्रवाद छा जाता हे। जो राजा पाप और पुण्य को नहीं पहचानता, उसका सुकृत नष्ट हो जाता है। (पन्द्रहवां पुष्प २०-६-

६३ ई.)

यदि राष्ट्र से भ्रष्टाचार को समाप्त करना है तो प्रत्येक को अपने स्वार्थ को त्याग करके निस्वार्थी बन जाना चाहिए। धर्म और अपनी मानवता के लिए अपने जीवन को न्यौछावर कर देना चाहिए। जीवन की बलि देने का यह तात्पर्य नहीं कि अपने प्राणों को ही शान्त कर दो, बल्कि यह है कि अपने अवगुणों को शुद्ध विचारों की कामनाओं के साथ वेद-रूपी ज्ञानाग्नि में भस्म कर दो। जब उनकी आहुति चली जाएगी तो अग्नि प्रचण्ड हो जाएगी, जिसको कोई छू न सकेगा। (चौथा पुष्प २१-४-६४ ई.)

जिस राजा के राष्ट्र में प्रजा द्रव्य का अच्छी प्रकार सदुपयोग करती है वह समय बड़ा कल्याणकारी होता है। उसे सतोगुणी काल का महत्व दिया जाता है। माया एक प्रकार की शकुन्तला मानी गई है, जो राष्ट्र को उच्च बनाने वाली है। माया शकुन्तला उसी काल में होती है जब राजा के राष्ट्र में इस प्रकार के बुद्धिमान मानव व बुद्धिमती देवकन्या हों जो इसका सदुपयोग करके धर्म के अनुकूल कार्य करते हों। उस समय इसे लक्ष्मी, शकुन्तला के नामों से पुकारा जाता है। जिस काल में मानव अज्ञानता से इसका दुरुपयोग करते हैं उस काल में इसे क्लेशदायक माया भी कहते हैं। (तीसरा पुष्प ७-४-६२ ई.)

जब वैश्य संग्रह करने लगता है तभी राष्ट्र की शक्तियां सूक्ष्म होने लगती हैं। जैसे मानव शरीर के उदर में अधिक संग्रह होने लगता है तो एक समय वह आता है कि हृदय भी कार्य करना बन्द कर देता

है, फिर इन्द्रियां भी कार्य करना त्याग देती हैं तो संग्राम में वह शरीर भी समाप्त हो जाता है और उदर भी मिट्टी में मिल जाता है। इसी प्रकार राजा को प्रजा अपकीर्ति करके अलग कर देती है। जैसे शरीर की चिकित्सा वैद्य करता है उसी प्रकार राष्ट्र के उदर की चिकित्सा करते हैं त्यागी ब्राह्मण। (नौवां पुष्प २६-७-६७ ई.)

राजा को ब्राह्मणों के द्वारा नियम बनाते समय सर्वप्रथम मानव के चरित्रका विचार होना चाहिए तथा चरित्रको ऊँचा बनाने के लिए तत्पर होना चाहिए। राष्ट्र का द्वितीय अंग धर्म होना चाहिए और तृतीय अंग राष्ट्र का पालन-पोषण होना चाहिए। जिससे राष्ट्र में अजीर्ण होकर रक्तभरी क्रान्ति की उद्बुधता न आ पाए। राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होना चाहिए। जहाँ रूढ़िवाद होता है वहाँ राष्ट्रीयता का विनाश होने लगता है, वहाँ मानव एक-दूसरे के साथ सहकारिता में परिणत नहीं हो पाते। इसीलिए राजा को ब्राह्मणों की अनुमति लेकर राष्ट्र से रूढ़िवाद को नष्ट कर देना चाहिए। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

बुद्धिमानों तथा राष्ट्र का कर्तव्य है कि यदि वह रूढ़ि निपटारे में नहीं आती तो उनके आचार्यों को, प्रर्वत्तकों को अपनाना चाहिए।उन आचार्यों को ले करके उनका एक संगठित समाज बनाना चाहिये। समाज बना करके अपनी रूढ़ियों की विवेचना प्रकट करें। उनका समर्थन करने वाला सभापति वेदों का पण्डित होना चाहिए, विवेकी पुरुष होना चाहिए। वेदों का पण्डित भी हो, विवेकी भी हो, विवेक में सार्थकता होनी चाहिए। ऐसा अध्यक्ष होना चाहिए जो रूढ़ियों का निर्माण करने वाला हो, प्रत्येक आचार्य अपनी-अपनी रूढ़ियों की चर्चा

करता है तो वह जो योगी पुरुष है, उसका सर्वत्र आदर करते हैं। जब वह अपना निर्णय देता है और राजा उसको स्वीकार कर लेता है कि यह निर्णय यथार्थ है। आचार्यों से जब यह निर्णय हो जाता है तो उस नियम को, विचार को राजा अपने राष्ट्र में निर्धारित करने वाला हो तो रूढ़ि समाप्त हो जाती है। रूढ़ियों के समाप्त होने पर राष्ट्र और समाज ऊँचे बन जाते हैं।

छात्र-बल में मानवता होनी चाहिए। जब छात्र-बल में क्रान्ति छाने लगती है वह अज्ञानता की क्रान्ति होने के कारण राष्ट्र का विनाश करती है और उनकी बुद्धि का विनाश करती है। जो क्रान्ति बुद्धिमता के साथ होती है वह बुद्धि से युक्त होने के कारण राष्ट्र की स्थापना करती है, बुद्धि और सदाचार की स्थापना करती है।

राष्ट्र में अनुशासनहीनता नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र में अनुशासनहीनता उस काल में होती है जब मानव के संकुचित विचार बन जाते हैं, तथा उन विचारों से रूढ़िवाद आ जाता है, तथा विचारों में अपनी प्रतिष्ठा आ जाती है। उस समय मानव राष्ट्र और धर्म का कोई कार्य नहीं कर पाता। जब मानव को पद की लोलुपता हो जाती है तो उसके द्वार से धर्म चला जाता है। अतः मानव में, चाहे वह धार्मिक हो, राष्ट्रवादी हो या सेवा का कार्य करता हो, जब पद की लोलुपता आ जाती है तो वह मानव-धर्म की परम्परा को अपने से दूर कर देता है, क्योंकि धर्म और मानवता पद को नहीं चाहते, लोलुपता को नहीं चाहते। जब मानव में पद की लोलुपता आने लगती है तो उसमें धर्म नहीं रहता। वह हर समय पद को बनाए

रखना चाहता है। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

वह प्रजा राजा की ऋणी है जो राजा के बनाए हुए नियमों पर नहीं चलती, उसके आदेशों का पालन नहीं करती। (तीसरा पुष्प ९-१२-६२ ई.)

जिस राष्ट्र में मर्यादा है वह राष्ट्र है। जिसमें मर्यादा नहीं वह न होने के तुल्य है। मर्यादा वह पदार्थ है जिसके अनुसार चलने पर संसार में शान्ति ग्रहण की जा सकती है तथा इसके त्यागने से यह संसार अशांति को प्राप्त हो जाता है। यदि कोई मानव शुभ कार्य करना चाहता है तो उसकी मर्यादा यह है कि उसे शुभ ही करने का प्रयत्न करे, उसे हानि न पहुँचाए। हानि पहुंचाना मर्यादा से भिन्न है उसको बुद्धिपूर्वक पूर्ण करना तथा सुख पहुँचाना मर्यादा है।

हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, कि हे विधाता! हमारे में नियम और मर्यादा हो जाना, अस्त्रो -शस्त्रों के द्वारा हमारी मर्यादा पुष्ट होनी चाहिये। इससे मर्यादा में बन्धकर अशान्तिदायक व्यक्तियों को और धूतों को नष्ट करने वाले बनें। (आठवां पुष्प ६-११-६२ ई.)

राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए हमें सर्वप्रथम बुद्धिमान बनना है, दार्शनिक और वैज्ञानिक बनना है। फिर भौतिक वैज्ञानिकों, वेद के प्रकाण्ड विद्वानों, दार्शनिकों को राजा से अनुरोध करना चाहिए कि हे राजन्! तू अपने राष्ट्र में उस महान् संस्कृति को अपना, जिससे हमारा कल्याण हो; हममें पवित्रता आये। पवित्रता उसी समय आ सकती है जब तेरे राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड दिया जाएगा। जिस राजा के राष्ट्र में ऐसे आत्मिक बल वाले पुरोहित होते हैं वह राजा

इन वाक्यों को अवश्य स्वीकार करता है। (चौथा पुष्प १९-४-६४ ई.)

राजा की योग्यताएँ

सभा का सभापति सभा को अनुशासन में रखने के लिए बनाया जाता है, जिससे जो विषय चल रहा है, कोई व्यक्ति उससे दूर न चला जाए। राजा का चुनाव दुराचारियों को दण्ड देने के लिये होता है। यदि वह अपने राष्ट्र को, प्रजा को अनुशासन में नहीं ला सकता तो वह राजा कहलाने का अधिकारी नहीं। (आठवां पुष्प १९६६ ई.)

हिंसक तथा दुराचारियों को नष्ट करने के लिए राजा बनते हैं तथा वह विधान बनाते समय धर्म के दस लक्षणों का अनुसरण करता है उसके राष्ट्र में अनुशासनहीनता किसी काल में नहीं आ सकती। (नौवां पुष्प २६-७-६७ ई.)

इस संसार रूपी शिक्षालय में राजा यह शिक्षा ग्रहण करते हैं कि यदि हम प्रजा को अनुशासन में लाना चाहते हैं तो अपनी इन्द्रियों को अनुशासन में लाना अनिवार्य है। यदि राजा बन जाने के पश्चात् उसकी मनोकामनाएं, उसकी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियाँ उसके अनुशासन में नहीं रहीं तो वेद कहता है कि वह राजा बनने का अधिकारी नहीं। (आठवां पुष्प १९६६ ई.)

राष्ट्र तप से चलता है। समाज के ऊपर अपनी आभा तप से होनी चाहिए न कि द्रव्य और शासन के बल से। शासन का बल कोई बल नहीं होता। वह आज नहीं तो कल समाप्त हो जाएगा। परन्तु (१) आत्मबल (२) तपस्या का बल और (३) राष्ट्र का बल तीनों एक सूत्र में आ जाते हैं उस समय यह समाज स्वर्गमय बन जाता है।

(चौबीसवां पुष्प २-५-७५ ई.)

राजा अपनी प्रजा को तभी अनुशासन मे रख सकता है जब वह चरित्रवान हो तथा अपने को प्रजा का सेवक समझे। तभी प्रजा उसे अपना स्वामी स्वीकार करेगी। कोई यदि द्रव्य के बल पर राष्ट्र का स्वामी बनना चाहता है तो असम्भव है। मानव के (१) मानवता का बल (२) चरित्रका बल तथा (३) आध्यात्मिक बल के सामने द्रव्य-बल कुछ नहीं है। द्रव्य के बल से मनुष्य संसार में कुछ सूक्ष्म कार्य कर सकता है, बड़े कार्य नहीं। (नौवां पुष्प २६-७-६७ ई.)

राज्य तथा राष्ट्र का विनाश उस काल में हो जाता है जब राजा स्वयं अपनी मानवता पर दृष्टिपात न करके, मूर्खों के जीवन को दृष्टिपात करके राष्ट्र के नियम बनाता है। राष्ट्र का नियम बनता है उच्चता से और दृढ़ता से। राजा को विचारना चाहिए कि प्रजा का, मानव का, मानव समाज का तथा राष्ट्र का हित किसमें है। (आठवां पुष्प १९६६ ई.)

जो दूसरों को नष्ट करके राजा बनने की चेष्टा करता है वह मातृशक्ति के श्रृंगार को हनन करता है। जो मूर्खों का चुना हुआ राजा होता है उसके लिए नियम-अनियम कुछ नहीं होते। इसीलिए वह राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति को ला देता है। रक्त-भरी क्रान्ति का मूल कारण यह है कि जितनी आत्म हत्याएँ की जाएँगी, अर्थात् जितना समाज के विचारों का हनन किया जाएगा, उन्हें उनका अधिकार प्राप्त नहीं होगा, उतना ही अग्नि का प्रभाव चलता रहेगा। एक समय वह आएगा कि वे विचार जिनको दमन करने की चेष्टा की गई, वे अग्नि

बनकर रक्तभरी क्रान्ति का कारण बन जाते हैं। (पन्द्रहवां पुष्प १३-२-७१ ई.)

राजा को दो कार्य करने चाहिए

(१) उसके पास मिथ्या न हो। मिथ्या उसे कहते हैं जिसके गर्भ में मिथ्या होता है। कोई बात ऊपर से शुद्ध प्रतीत होने पर भी उसके गर्भ में मिथ्या होता है।

(२) अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए। दस इन्द्रियों का संयमी मानव राष्ट्र का नायक बन जाता है। वह राष्ट्र को पवित्र बना देता है। राजा को स्त्री समाज के श्रृंगार की रक्षा करनी है। अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां उसके लिए त्याज्य होनी चाहिएं। इन गुणों के न होने पर यदि राजा बना दिया जाए तो ब्रह्म-हत्या हो जाती है क्योंकि वहाँ बुद्धिमान ब्राह्मणों का अपमान होने लगता है। जब राजा सदाचारी नहीं होता तो बुद्धिमानों का अपमान होने लगता है। राष्ट्र में मानवता नहीं होती। उन्हें यही ज्ञान नहीं रहता कि उन्हें क्या प्रकट करना है, क्या नहीं। कितना मिथ्या उच्चारण करना है और किससे करना है। यदि ऐसा राजा चुना गया तो राष्ट्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। (पन्द्रहवां पुष्प १३-२-७१ ई.)

राजा का चुनाव करते समय उससे पूछा जाता था कि तू याज्ञिक है कि नहीं। जो मानव यज्ञ की मीमांसा तथा प्रतिभा को जानता है वह राजा बनना चाहिए। क्योंकि उसमें त्याग और तपस्या की प्रतिभा होती है। (तेरहवां पुष्प ९-११-६४ ई.)

सर्वोदय

राजा और प्रजा दोनों के समान विचार होने से ही सर्वोदय हो सकता है। यदि राजा का विचार कुछ है और प्रजा का कुछ, तथा एक समाज ऐसा है जो सबका उदय चाहता है तो ये तीन धाराएँ राष्ट्र में नहीं चल सकतीं। जब तीनों धाराओं को सुगठित करके नियमबद्ध किया जाए तथा उपनियमों का पालन हो तो उस राष्ट्र में सबका उदय हो जाता है। राष्ट्र में सर्वोदय लाने के लिये सर्व-प्रथम ऐसे महान् ब्राह्मण होने चाहिएं जो राजा से साहस पूर्वक उच्चारण कर सकें, और उनका विचार इतना बलवान हो कि राजा के विचारों को बाध्य कर सके। जो अपनी आत्म उन्नति, अपनी आत्म-निष्ठा और प्रजा की निष्ठा पर लगे रहते हैं; उसके राज्य में सदा महत्ता की तरंगें ओत-प्रोत हों तथा कोई किसी का ऋणी न हो। राष्ट्र में किसी भी प्रकार की विडम्बना आने पर भी राजा अपने कर्त्तव्य को न त्यागे। उसमें स्वार्थ तथा पद-लोलुपता नहीं होनी चाहिए। जब इस प्रकार का राजा होगा तो प्रजा स्वयं इसी प्रकार की हो जाएगी। राष्ट्रीयता वहाँ कहलाई जाती है जहाँ राष्ट्रीयता मानव के आत्मिक-बल पर निर्भर रहती है तथा उस राजा के याज्ञिक विचार होते हैं जो प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक काल में प्राणि-मात्र के आनन्द के लिए ही विचारता रहता है। (चौदहवां पुष्प ८-११-६९ ई.)

स्वायम्भुव मनु की ५००वीं पीढ़ी में जन्में राजा भृंगी ने महर्षि भारद्वाज को अपने राज्य में सर्वोदय का दर्शन कराया और वर्णन किया कि मेरे राज्य में कोई एक-दूसरे का ऋणी नहीं है। उसके राज्य में प्रत्येक मानव सुख-सम्पदा से सम्पन्न था। राजा का राज्य-

ऋण स्वतः ही राजा के यहाँ आ जाता था। राजकर्मचारी को किसी के द्वार पर जाने की आवश्यकता नहीं थी। प्रत्येक पुत्र अपने पितृ-ऋण से उऋण हो रहा था। माता अपना कार्य कर रही थी। राष्ट्र में इतनी कुशलता तथा 'अहिंसा परमो धर्मः' की तरंगें थीं कि गऊ की सेवा हो रही है। राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ताओं की यह विचारधारा व्याप्त थी कि दुग्ध देते समय यदि पशु दुःखित होता है तथा डन्डे से दूध लिया जाता है तो वह भी एक हिंसा कहलाई जाती है। गऊ दुहते समय एक नाद बजता था तो गऊएँ प्रसन्न होकर दूध दिया करती थीं। (तेरहवां पुष्प ९-१-६९ ई.)

राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होता, इसमें साम्य विचार होते हैं, इसमें सभी मानवों को उच्चारण का अधिकार होता है परन्तु जो राष्ट्र द्रोही होता है उसे एक भी वाक्य उच्चारण नहीं करने देना चाहिए। जो राष्ट्र को दूसरों को देना चाहता है वह राष्ट्र-द्रोही है। (ग्यारहवां पुष्प ३०-७-६८ ई.)

प्रजातन्त्र और साम्यवाद

साम्यवाद उसको कहते हैं जहाँ कोई अधिराज नहीं होता। सब प्रजा साम्यता में परिणत हो जाती है। इसमें मानव के समक्ष केवल अपने कर्त्तव्य का लक्ष्य होता है। जब सृष्टि का आरम्भ होता है तो उस समय यह सब समाज साम्यवाद की छत्र-छाया में रहता है। उनकी परालब्ध तथा क्रियता उनके साथ-साथ रमण करती रहती है। उनका कोई राजा नहीं होता। केवल कर्त्तव्य का पालन करते चले जाते हैं। सब कर्त्तव्यवाद में संलग्न रहते हैं। जहाँ कोई व्यक्ति निर्धन

प्राणियों को लेकर चलता है तथा स्वयं को ऐश्वर्य में ले जाना चाहता है, उनको साम्यवाद कहना मानवता के लिए बहुत बड़ा आघात है। साम्यवाद तो मानव को साम्यता देता है, सबको एक सा बनाता है। आज जो लोग अपने को साम्यवादी कहते हैं, उनको साम्यवादी कैसे स्वीकार किया जा सकता है, जब उनमें प्रजा का नेतृत्व करने वाला राजा बना हुआ है। साम्यवाद में कोई राजा नहीं होता, वहाँ तो सभी सेवक होते हैं। यह निश्चय है कि जो सेवक होता है वही संसार में प्रबल होता है। साम्वादियों को यह विचारना चाहिए कि तीन प्रकार के कर्म होते हैं (१) क्रियात्मक (२) संचित और (३) प्रारब्ध। ये कर्म तथा प्रारब्ध मानव को ऊँचा भी बनाते हैं तथा तुच्छ भी बनाते हैं। उसी प्रारब्ध के साथ-साथ यह समाज चलता रहता है। किन्तु इस प्रारब्ध पर आस्था न रहने के कारण विभिन्न प्रकार के वाद बन करके एक राष्ट्र का दूसरे के साथ संघर्ष होता है, अतः प्रारब्ध पर आस्था होना अनिवार्य है।

जब प्रजा का प्रत्येक प्राणी अपने कर्त्तव्यवाद में सलंग्न हो जाता है और वह यह समझता है कि यह मेरा राष्ट्र है। जो मानव प्रजा का नेतृत्व करने वाला है, जो प्रजातन्त्र के तन्त्र को ऊँचा ले जाना चाहता है वह अपने को प्रजा का सेवक स्वीकार कर लेता है और यह समझने लगता है कि मैं प्रजा का सेवक हूँ। मुझे प्रजा के ऐश्वर्य को अपने में संग्रह करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार की भावना आने पर प्रजातन्त्र तथा साम्यवाद एक हो जाते हैं।

साम्यवाद और प्रजातन्त्र दोनों में कर्त्तव्यवाद की आवश्यकता है।

प्रजातन्त्र तभी ऊँचा बन सकेगा जब प्रजा तथा राजा इतने महान् हों कि राजा के चरित्र का प्रभाव प्रत्येक मानव और देवकन्या पर हो। इसी प्रकार साम्यवाद तभी ऊँचा बनेगा जब साम्यवादी का चरित्र ऊँचा होगा, मानवता ऊँची होगी तथा उसके मन में सान्तवना होगी और वह केवल ऊँची धारा को लेकर चले, उसकी छत्र-छाया में यह संसार संलग्न हो जाता है। प्रत्येक राष्ट्र उसकी छाया में आ जाता है।

निष्कर्ष

दो प्रकार के राष्ट्र बतलाए-

१. साम्यवाद-जिसका विकास मानव शरीर से होता है।

२. समाजवाद-इसका विकास मन-वचन-कर्म से हुआ है।

मानव के साम्य-विचार मानवीय विज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इसका विकास इसी से है और इसी को साम्यवाद कहते है। जहाँ बुद्धिमान ब्राह्मण हों, बलवान क्षत्रिय हों, वैश्य संग्रह करने वाले हों और शूद्र अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाएं तो वह साम्यवाद है। प्रजातन्त्र ऊँचा बन सकता है जिस राजा की प्रजा मन-वचन-कर्म से राष्ट्र के हित में होती है। यदि प्रजा इसके विपरीत स्वार्थ में रहती है तो इसे प्रजातन्त्र नहीं कहते। (ग्यारहवां पुष्प ३-७-६८ ई.)

कहा जाता है कि सौनधूति (रूस) के मानव सुखी हैं क्योंकि वहाँ साम्यवाद है। वहाँ साम्यवाद नहीं कहा जा सकता। क्योंकि साम्यवाद में कोई राजा नहीं होता। उस देश में राजा ही क्यों वैज्ञानिक यन्त्रों में घूमते हैं, निर्धन को घूमना चाहिए। वहाँ भी निर्धन हैं और बाह्य

व्यक्तियों को दिखावा दिखाने के लिए बड़ी-बड़ी बातें हांकते हैं। वैदिक साम्यवाद की मीमांसा यह है कि-

क्षत्रिय राजा वैश्य समाज को उत्तम बनाए। जो द्रव्य को एकत्रित करता है उसको दण्ड दे। राष्ट्र में कोई भी मानव क्षुधा से पीड़ित न हो, यही वास्तव में साम्यवाद है। (तेरहवां पुष्प २३-८-६९ ई.)

यह ऋषियों की भूमि है। इसमें वैदिकता का साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद लाने का प्रयास करना है। त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण हों जो केवल राजा के सेवक बनकर न रह जावें। उन्हें वेद के वाक्यों को ललकार कर कहना है। उसी में उसकी प्रतिष्ठा है और उसके वाक्यों को राजा को मानना अनिवार्य होगा। जब ब्राह्मण किसी राजपुरुष का पुरोहित होने में गर्व का अनुभव करने लगता है तथा उस राजा के द्वारा अपने को उठाना चाहता है तो वह उसका पतन है। उसमें ब्राह्मणत्व तथा पौराहित्य नहीं रहता, अशुद्धवाद आ जाता है, वह पराधीन बन जाता है, उससे राष्ट्रोस्थान की आशा नहीं की जा सकती। लंगोटधारी ब्राह्मण ही राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है और राष्ट्र की परम्परा को ला सकता है।

राजा वैश्य के कार्य को हाथ में न लेकर वितरण-व्यवस्था को ठीक करे। वितरण जितना सुन्दर होगा, प्रजा उतना ही सुख का अनुभव करेगी और राजा भी अपने को सुखी अनुभव करेगा। राजा को इतना चरित्रवान होना चाहिए कि प्रजा में उसके चरित्र की तरंगें ओत-प्रोत हो जाएं। अब राजा चरित्रवान होगा तो वैश्य द्रव्य को एकत्रित नहीं कर सकेगा। ब्रह्मचारी होंगे, ब्राह्मण समाज उत्तम होगा,

शिक्षा की उत्तम पद्धति हो तथा राष्ट्र की अपनी संस्कृति हो, जो राजा अपनी संस्कृति को लाने में असमर्थ है वह राष्ट्र का पालन करने में सदैव असमर्थ रहेगा।(तेरहवां पुष्प २३-९-६९ ई.)

वर्तमान राष्ट्र पर एक विहंगम दृष्टि

आजका राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद न रहकर स्वार्थवाद है। स्वार्थवाद इसलिए कि आज मानव राष्ट्र के पदों का अधिकारी बनकर जब तक अपने गृह को तथा उदर को सुन्दर नहीं बना लेता तब तक दूसरों को दृष्टिपात नहीं करता। समाज तथा राष्ट्र में यह प्रवृत्ति हो जाने पर क्रान्ति आने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता। यह जो भाषा का विवाद, वाणी का विवाद, राष्ट्र का विवाद दिखाई देता है वह समाज का न होकर केवल द्रव्यपतियों का है, जो यह चाहते हैं कि इन विवादों के आश्रय से उनके उदर की पूर्ति होती रहे, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। (बारहवां पुष्प ६-३-६९ ई.)

कहा जाता है कि राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है। किन्तु यह तो रूढ़िवाद है। क्योंकि प्रजा का भय है कि कहीं विवाद न हो जाए। धर्मनिरपेक्ष तो तब जाने जब चक्षु से सुनने लगें तथा कानों से देखने लगें। वास्तव में राजा को रूढ़िवाद को समाप्त करना चाहिए। उसे अपने लाभ-हानि को स्वयं विचारना चाहिए। रूढ़िवाद को समाप्त करने के लिए राजा को चाहिए कि वह विभिन्न मतों के, महान् आत्माओं के मौलिक-विचारों को लें और रूढ़िवादियों से कहें कि तुम्हारे महापुरुषों ने ऐसा कहा है। तो कौन उस राजा के वाक्य को ठुकराएगा। ठुकराया तभी जायेगा जब वह बुद्धि से कार्य नहीं करेगा और स्वार्थवाद में तल्लीन

हो जाएगा। (नौवां पुष्प २८-७-६७ ई.)

आशीर्वाद

जब इन्द्रप्रस्थ में राजसूर्य सदृश यज्ञ होंगे तो यहाँ महान् आत्माओं का आगमन होगा। देश-विदेश के राजनेता यहाँ आकर नास्तिक से आस्तिक बनेंगे। प्रभु! तुम्हारे राष्ट्र की, जीवन की, संस्कृति की तथा मातृभूमि की रक्षा करेंगे। मांसाहार को त्यागकर सद्गुणों का विकास करो। संस्कृति के समाप्त होने में राष्ट्र या राजा का कोई दोष नहीं है। यह प्रजा का दोष है। यह जिसकी रक्षा करनी चाहिए उसकी रक्षा नहीं करती, जिसे महत्ता देनी चाहिए उसे महत्ता नहीं देती, महत्ता देती है तो रोगों को! प्रजा को चाहिए कि वह सदाचारी बनने वाले को महत्ता दे। जब प्रजा संस्कृति को महत्ता देगी तो राष्ट्र अवश्य सदाचारी बनेगा और आर्य बनकर तुम्हारी संस्कृति को अपनाएगा। आज वाणी से तो संस्कृति, ऋषि, यज्ञोपवीत आदि का उच्चारण करते हैं, किन्तु करते हैं रसना की पूर्ति, संस्कृति को ऊंचा बनाने के लिए सदाचार और यज्ञों को अपनाना होगा। यज्ञ ही हमारा जीवन है, यज्ञ ही राष्ट्र है, यज्ञ ही हमारी रक्षा करेगा। जब इस प्रकार विश्वास करोगे तो तुम्हारी रक्षा स्वतः होगी। यज्ञ की प्रणाली समाप्त हो जाने पर ही देश पराधीन हुआ। स्वराज का उपदेश शंकराचार्य, दयानन्द आदि ने दिया। चेतावनी यह है कि यथार्थ को यथार्थ मानो, मिथ्या को त्यागो। जो गम्भीर और योग का विषय है, उसे योगी बनकर जानो। जिसका बुद्धि और तर्क से सन्म्बन्ध है, उसे तर्कपूर्ण जानो। जो राष्ट्र का सन्म्बन्ध है उसे राष्ट्र की प्रणाली से

जानो। जो यज्ञों का प्रसारण है उसे ब्रह्म और यज्ञशाला में विराजमान होकर ऋषि परम्परा से देखो। सत्य को सत्य जानो। जब यहाँ ऐसी प्रणाली आ जाएगी तो सतोयुग और द्वापर जैसी स्थिति आ जाएगी। (आठवां पुष्प १४-११-६३ ई.)

नरसिंह अवतार

जिस मानव की, मानव नर पुरुष होते हुए अपराधी को नष्ट करने की प्रवृत्ति बन जाती है तो वह मानव नरसिंह रूप में परिवर्तित हो जाता है। मानव में जब सत्यता से मन के आधार पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है, उसे नरसिंह रूप में परिणत किया जाता है। जब जनता-जनार्दन सत्य पर चलने वाला समाज उज्ज्वल मार्ग पर चलकर श्रेष्ठ राजा को चुनती है तो वह प्रजा नरसिंह अवतार का रूप ले लेती है। हिरण्यकश्यप को मारने वाला नरसिंह अवतार वास्तव में वह जनता थी जो नरसिंह दल के नाम से प्रह्लाद के नेतृत्व में संगठित हुई थी। (पन्द्रहवां पुष्प २-६-६५ ई.)

२ द्वितीय अध्याय-भारत भूमि

यह भारत-भूमि है, जहाँ ऋषि-मुनि उस स्थिति में आते हैं, जहाँ उनके उदर-पूर्ति का भी कोई साधन प्राप्त नहीं होता, परन्तु वे अपना विकास करते हैं। यह वह पवित्र भूमि है, जिसमें अपने जीवन को बनाया जाता है। यहाँ से संसार को शिक्षा दी जाती है। यह संसार की ऊंची संस्कृति का प्रतीक है। परन्तु आज यहाँ के निवासी दूसरों को देखकर मग्न होते हैं तथा अपने को देखकर मलीन। आज का संसार वेदों को ऋषियों का काव्य कहता है। क्योंकि भारतवासियों ने अपने कर्त्तव्य को त्याग दिया है। यहाँ वेदों का गौरव था, वेदों की प्रभावशाली प्रथा थी, ऋषि-मुनि थे, माताएं थीं जो वेद के अनुकूल अपने प्यारे पुत्र को अपने गर्भ में इस प्रकार बना दिया करती थीं कि प्रत्येक वेद-मन्त्र के पवित्र भावों को बालक के हृदय से प्रविष्ट कर देती थीं। (छठा पुष्प १५-७-६४ ई.)

आर्यावर्त में इस प्रकार के आचार्य होते रहे हैं जैसे वशिष्ठ ने अपने अनुभवों का ज्ञान देकर राम को ऊंचा बनाया तथा पनपेतु ऋषि ने कृष्णा जैसे वैज्ञानिक उत्पन्न किए थे। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

राम और कृष्णा के अतिरिक्त अन्य अनेकों महान् आत्माओं का यहाँ अवतरण हुआ। ये जो महान् आत्माएँ होती हैं वे संसार का कल्याण करने के लिए आती हैं। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

आज जो जर्मनी देश है वह परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने सर्व मेघ यज्ञ कराने के पश्चात् जन्म-स्थली के नाम से बसाया था। वहीं से

आज विज्ञान का विकास हुआ है। आज जो सूक्ष्म संख्या में वेद के जानने वाले हैं उनके विचारों पर आक्रमण किया जाता है। उनको अपनी जीविकापूर्ति के लिये रूढ़िवाद में जाना अनिवार्य हो जाता है। (छठा पुष्प १५-७-६४ ई.)

आर्यावर्त की यह परम्परा रही है कि जो भी जातियाँ यहाँ आती रहीं उनको यहाँ समाविष्ट कर लिया गया। वे दूसरे राष्ट्रों से घृणा को लेकर आए। यहाँ आर्यों ने उनको अपना लिया। नाग जाति, हूण जाति, क्रुक जाति आदि नामों की अनेक जातियाँ आईं। वे सभी राष्ट्र में परिणत हो गईं।

आर्य

नारद ने आर्यों की व्याख्या इस प्रकार की है-

आर्य इतने श्रेष्ठ होते हैं कि उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। सृष्टि के आरम्भ से आर्य आते आए हैं। यहाँ परम्परा से आर्य हैं। तथा इन्होंने ही सृष्टि का निर्माण किया है, इन्हीं का यश इतना है, मनुष्य बना, मनुष्य बनाना है तो हमें आर्य बना, हमें श्रेष्ठ पुरुष बना। हम यथार्थ का पालन करने वाले बनें। आर्यों का जीवन संसार में परोपकार के लिए होता है और वास्तविकता को अपनाने के लिए होता है। वे ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करके यहाँ से चले जाते हैं। (आठवां पुष्प २८-८-६३ ई.)

आर्य उसको नहीं कहते जो अभिमानी बन जाए, जो अपनी बुद्धि से बढ़कर किसी की बुद्धि को न जाने। दूसरों की निन्दा करने वाले को आर्य नहीं कहते। आर्य उसे कहते हैं जो यथार्थता का पान करने

वाला हो और उस पर चलता हो। वह महान कहलाया गया है, संसार को ऊंचा बना सकता है। वह गम्भीर बन कर अमोघ बन जाता है। (दसवां पुष्प २६-७-६३ ई.)

ऋषियों का काल

जिस समय यहाँ सतयुग की स्थापना हो रही थी, उस समय ऋषि-मुनि यह उपदेश देते थे कि हमें अपने उस आहार को करना है जिससे हम दूसरों के हिंसक न बनें, दूसरों को कष्ट न दे सकें। वह आहार हमारे लिए सर्वोपरि है। आहार-व्यवहार पर विचार करने के साथ-साथ यह भी विचार करते थे कि हम ब्रह्मचारी कैसे बनें? उन्होंने कहा था कि हम एक पत्नी के ब्रह्मचारी बनें और पत्नियां यह विचार करें कि हम दो सन्तान करने वाली देवियां बनें। वे सदाचारिणी तथा ब्रह्मचारिणी बन कर अपने मानवत्व को ऊँचा बनाएँ। यह उस समय की परिपाटी मानी जाती थी। (दसवां पुष्प २६-७-६३ ई.)

प्राचीन ऋषि-महर्षि ऐसे थे कि कामधेनु के दुग्ध का आहार किया करते थे। आत्मा को प्रसन्न करने के लिए जो परमात्मा ने पदार्थ दिए, रसदायक हृदय को उदार बनाने वाले पदार्थों का आहार करके, अपने कर्त्तव्य का पालन करके इस संसार को ऊँचा बना गए। उन्हीं ऋषियों के काल को सतोयुग कहा जाता है, जिसमें हिंसा नहीं होती, दूसरों के गर्भ का आहार नहीं किया जाता। (छठा पुष्प १५-५-६२ ई.)

ब्रह्मचारी कई प्रकार के होते हैं, जैसे आदित्य, परजन्य। जो पति और पत्नी एक गृह में रहते हुए केवल दो पुत्रों को उत्पन्न करने के

अधिकारी होते हैं, वह ब्रह्मचारी अपनी मानवता को ऊँचा बना करके इस संसार को पार कर जाते हैं। एक समय वह आता है कि वे आर्य बनकर इस संसार से ऊँचे बन कर ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं। इस संसार में सभी कुछ नश्वर है, केवल मानव के द्वारा मानवता है जो सर्वज्ञ है। यदि ब्रह्मचर्य है तो यथार्थता है। यथार्थ को उच्चारण करने से मानव का कल्याण होता है। उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। जो वह कहता है यथार्थ होता है। उसे ज्ञान हो जाता है कि तेरी वाणी से वही वाक्य उच्चारण होगा जो इसके कर्मों के भोग में है। हमें उस परम्परा पर पहुँचना चाहिये। जब तक हम ऋषि-मुनियों की वार्ता को नहीं अपनायेंगे तथा आर्यत्व को नहीं अपनायेंगे तब तक हमारा जीवन किसी भी प्रकार ऊँचा न बन सकेगा।

सर के केश

सर पर केश रखने की आर्यों में दो प्रकार की परिपाटी थी। प्रथम जटाजूट। राजा दशरथ जटाजूट रहते थे। इस प्रकार के आर्यों का मत है कि जब परमात्मा ने हमें ऐसा बनाया है तो हमें इसी प्रकार रहना चाहिए। यह भी एक बुद्धिमानी की परिपाटी है। इसका सन्म्बन्ध युद्ध से नहीं परन्तु परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान से था।

द्वितीय प्रकार के वे हैं जो केवल शिखा का चिन्ह रखते हैं तथा यज्ञोपवीत रखते हैं। इनका मत है कि हमें नाना प्रकार की असुविधाएँ देते हैं। इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। यह भी बुद्धिमानी है। जो मानव अपने सभी केश रखते हैं उनके सारे केश ही शिखा तुल्य हैं। हमारे मस्तिष्क में सूक्ष्म-सूक्ष्म तन्तु हैं; उनकी इन केशों से रक्षा

होती है। परमात्मा ने ये केश इसी प्रयोजन से दिये हैं। (दसवां पुष्प २७-७-६३ ई.)

आर्य संस्कृति का महत्व

आज भौतिक विज्ञान की उन्नति होते हुए शान्ति नहीं मिल रही है। किन्तु हमारी संस्कृति सबको शान्ति देने वाली है, आत्मा में वह भाव उत्पन्न करने वाली है, जिससे मातृ-भूमि, राष्ट्र की वह संस्कृति बन जाती है और राष्ट्र में वास्तविक शान्ति प्राप्त हो जाती है। (पांचवां पुष्प १९-८-६२ ई.)

संस्कृति को त्यागना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि हमारी संस्कृति एक महत्ता में परिणत रहती है। यदि मानव के द्वार से संस्कृति का स्तम्भ चला गया, मानवता चली गयी तो उस मानव के द्वारा कुछ नहीं रह जाता। जैसे मानव के शरीर से प्राण के चले जाने के पश्चात् मानव के जीवन का स्तम्भ चला जाता है, इसी प्रकार वेद के विचारने वाले जो मानव होते हैं, यदि उनके द्वारा अपनी संस्कृति चली गयी, अपनी मानवता चली गयी, अपना चरित्र चला गया तो उस वेद की विचारधारा का स्तम्भ चला जाता है। स्तम्भ के चले जाने के पश्चात मानवता नष्ट हो जाती है। इसलिए मानव का जो स्तम्भ है, वह प्रकाश है। प्रकाश को लाना चाहिए, अन्धकार को नहीं लाना चाहिए। ऐसे ज्ञान को अपनाना चाहिए जिसमें ज्ञान, विज्ञान, परमाणुवाद, प्रकृतिवाद, सूर्यवाद, तारामण्डलवाद, धुरववाद, जेष्ठाय नक्षत्रवाद, संसार के लोक-लोकान्तरों का ज्ञान व विज्ञान जिस संस्कृति में है उसको अपनाने में

मानव को संकुचित नहीं होना चाहिए। (बाईसवां पुष्प २९-१०-७० ई.)

आज का जो विज्ञान दिखाई दे रहा है वह वेदों में, उपनिषदों में, नाना ऋषियों-महर्षियों के प्रकरणों में एक-एक शब्दार्थ ज्ञान और विज्ञान से भरा हुआ है। किन्तु वह सब नष्ट हो चुका है। (पांचवा पुष्प १९-८-६२ ई.)

स्त्री शिक्षा

मुझे स्मरण है वह काल रघु-परम्परा का, उससे पूर्व का काल भी स्मरण है, ऋषि-मुनि तथा प्यारी माताएं अध्ययनशील रहतीं; दर्शनों का अध्ययन करने वाली, काम वासना और वासना में परिणत न होने वाली, कर्त्तव्य का पालन करता, ब्रह्मचर्य पर बल देना, गृही माताओं का विशेषकर एक प्रमुख विचार रहता था। विचार के साथ कर्त्तव्य का पालन करना, सुन्दर सन्तान और पुत्र को जन्म देना उनका एक लक्ष्य रहता था। जब बलिष्ठ ब्रह्मचारी और ओजस्वी बालक माता के गर्भ से जन्म लेता है तो माता सौभाग्यशाली बन जाती है, माता एक महिमामयी बन जाती है तथा उसका विचार उच्चता में परिणत हो जाता है। उस समय यह राष्ट्र, यह समाज अपने-अपने अधिकार की वेदी पर रमण करता हुआ राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बन जाते हैं। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

ऋषियों ने यहाँ तभी जन्म धारण किए, जब माताएं तथा पुरुष ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते थे। गार्गी जन्म-जन्मान्तरों में स्वाध्याय करती हुई वैराग्य को प्राप्त हुई। उसने ४१ वर्ष तक वेदों का स्वाध्याय

किया था। आगे यहाँ पर ऐसे स्वार्थी आए जिन्होंने माताओं को शिक्षा देना महान् पाप बतला दिया। (पांचवां पुष्प १९-८-६२ ई.)

समाज की दुर्दशा का इतिहास

भारत की आज यह दुर्दशा है कि कहाँ तो इसका चक्रवर्ती राज्य था या आज सूक्ष्मसा राष्ट्र है और उसकी भी प्रतिष्ठा को नष्ट किया जा रहा है। यह सब स्वार्थ और बुद्धिहीनता के ही कारण है। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

पतन का आरम्भ

महाभारत काल के पश्चात् इस संसार में अज्ञानता का प्रसार हुआ। मानव ने हानि-लाभ तथा हीनता का विचार न करके केवल स्वार्थवाद के आधार पर अपने समाज को बनाना आरम्भ कर दिया। वेद के ब्रह्म वाक्य को भी अपने से दूर करने का प्रयास करते रहे। इसका मूल कारण अज्ञान ही था। इससे एक-दूसरे में विवाद हो जाता है। महाभारत का युद्ध अधिकार तथा अनाधिकार को त्यागने से हुआ था। इसके पश्चात् नई-नई रूढ़ियां बढ़ती रहीं और अज्ञान आता रहा, इसका परिणाम यह हुआ कि मानव की भौतिक भावना कहीं की कहीं चली गयी। वह केवल शब्दों में रह गई और क्रियात्मक न होने के कारण धर्म और मर्यादा का विनाश होना आरम्भ हो गया। यह विचारधारा जातीयता से हुई। जातीयता से जब मानव समाज में, विचारों में भिन्नता आती है तो उनके कारण वाद-विवाद हो जाता है। तब स्वार्थ में इस प्रजा का विभाजन हो जाता है, नानाप्रकार के विभाजनों में पड़ करके ज्ञानी और अज्ञानी को नहीं विचारा जाता।

वह केवल एक रूढ़ि बनकर समाज का नाश कर देती है।

जातिवाद

जब मानव रूढ़िवादी बन जाता है। रूढ़िवाद में ब्राह्मण समाज भी उन्हीं रूढ़ियों में परिणत हो जाता है और जन्म से ब्राह्मण बन जाता है और जातीयता का प्रसार हो जाता है। जब जातीयता और रूढ़िवाद पूर्ण उर्द्धवागति के शिखर पर चले जाते हैं उस समय इसमें धर्म और मानवता का ह्रास हो जाता है।

ब्राह्मण समाज

यहाँ राष्ट्र और समाज में ब्राह्मण समाज से नाना प्रकार की कुरीतियां आईं। इनके परिणाम स्वरूप शिवालय बने।

पतन का इतिहास

युधिष्ठिर के पश्चात् अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का राष्ट्र रहा। इसके पश्चात् उसकी प्रणाली में मामषुक या अभान्तरी राजा हुए। इसके पश्चात् विक्रम, उसके पश्चात् शांगीण या शाभिजय, उसके पश्चात् शतकामातुर हुए। यहाँ यह प्रणाली समाप्त हो गयी। इसके पश्चात् जैनियों को साम्राज्य हुआ। स्वामी महावीर के भ्रमात्मक विचारों ने यहाँ घृणा उत्पन्न कर दी। जो दुर्योधन ने घृणा आरम्भ की थी वह बलवती हो गयी, इससे अराजकता का प्रसार होने लगा। जो पुस्तकें वैज्ञानिक थीं, उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध थीं, उनको जलाने लगे। इसके पश्चात् बुद्ध महापुरुष हुए। किन्तु उन्होंने भी वेद को समक्ष नहीं आने दिया। वे केवल आदरणीय इसलिए हैं कि वे महान् थे, विचित्र थे। किन्तु आगे चलकर उनमें भी घृणा की दृष्टि आ गयी। राष्ट्र में

जब घृणा की दृष्टि आ जाती है तो शान्ति नष्ट हो जाती है। इसके पश्चात् शंकराचार्य ने अपनी यौगिकता से तथा प्रतिभा से एक संस्कृति का प्रचार करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको नष्ट कर दिया गया। आगे महात्मा ईसा ने भारत-भूमि में शिक्षा पाने के पश्चात् अपनी संस्कृति का प्रसार किया। किन्तु उसने यह नहीं विचारा कि धर्म क्या है? आयुर्वेदाचार्य होने के नाते उनका पाण्डित्य काफी ऊँचा था। इसके पश्चात् महात्मा मोहम्मद आए, उनका जीवन राष्ट्रीय रहा। उनके जन्म से पूर्व वहाँ यहूदियों का प्रभाव था। मानव अपनी प्रीति से दूर रहता था और नाना घृणित कार्य करता था। जहाँ अपने आधीन बनाने की प्रवृत्तियां आ जाती हैं वहाँ रक्त की क्रान्ति रहती है।

ईरान का नाम श्वांगिनी था, आर्यावर्त कहलाता था। वह गौतम का आश्रम था, वहाँ उन्होंने काफी प्रचार किया था। महर्षि जैमिनी ने भी वहाँ कार्य किया था। अरब पहले शौनधेतु नाम का राष्ट्र था। जैमिनी ने वहाँ भी भ्रमण किया था।

मोहम्मद के मानने वालों ने भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। उनकी मानवता तथा चरित्र उनके इतिहास से प्रकट है। उनकी अपनी अराजकता से ही उनका राष्ट्र समाप्त हुआ। माताओं के श्रृंगार का हनन करना तथा अपना प्रभुत्व स्थापित करना यही उनका कार्य था। इनमें एक भी राजा ऐसा नहीं हुआ जिसने पाण्डित्य की दृष्टि से राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया हो।

पश्चिम के प्राणियों के यहाँ आक्रमण हुए। उसी समय यहाँ आचार्य दयानन्द आए। उन्होंने कहा कि तुम्हारी जो संस्कृति है, परम्परा है,

ब्रह्म से लेकर जैमिनी पर्यन्त जो तुम्हारा सिद्धान्त रहा है, उस पर आ जाओ। इससे शान्ति उत्पन्न होगी, महजष् साम्राज्यवादी बनोगे, अन्यथा तुम्हारा जीवन यों ही नष्ट हो जाएगा। दयानन्द को विष देकर नष्ट करने का प्रयास किया। किन्तु उनके ऊपर संसार का या द्रव्य का कोई प्रभाव नहीं हुआ। कृष्ण की भांति उनके जीवन में भी कुरीतियों का प्रभाव नहीं हुआ, अच्छाइयों की परम्परा बनी रही। ऋषित्व और पाण्डित्य पर उनके जीवन का स्वतः अधिकार रहा। उनकी आत्मा के उद्गम विचार थे। वे जन्मों से पाण्डित्य पर गुथे चले आ रहे थे। उन्होंने उच्च स्वर से कहा था कि हे स्वराष्ट्र के निवासियों! कहाँ जा रहे हो? तुम अपना समाज बनाओ और अपनी उन्नति के लिए कोई साधन बनाओ। यह जो जातिवाद के आधार पर ब्राह्मणवाद है उसको तथा जातिवाद को नष्ट करो। उनमें यौगिकता होने के कारण सूर्य के प्रकाश की भाँति उनका जीवन मानव के हृदय में प्रदीप्त रहता है और रहता रहेगा। उन्होंने ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त जिन सिद्धान्तों को प्रकट किया, उनके हृदय में इनकी कुंजी थी। जो कुछ उनका हृदय पुकार कर कहता था, समाज ने उसको अपनाने का प्रयास किया और अपनाया भी, उनके कारनामों से क्रान्ति भी आई। उनके अनुयायी आगे चलकर विचलित हो गए। विचार-विनिमय के स्थान पर तर्कवाद तथा जातिवाद को नष्ट करने के स्थान पर स्वयं जातिवाद में आ गए। आज महात्मा शंकराचार्य तथा दयानन्द की आत्मा अन्तरिक्ष में व्याकुल है अपने अनुयायियों को देखकर। (बारहवां पुष्प ६-३-६९ ई.)

बौद्ध काल में अहिंसा का गलत अर्थ

बौद्ध काल में नारियों का विदुषीपन समाप्त होने लगा तथा उसमें रूढ़ियां बन गयीं। केवल एक अहिंसा को अपनाया, किन्तु उसको जाना नहीं। यदि उस समय समाज अहिंसा के रूप को जान जाता तो उसका उद्धार हो जाता। उस समय कहा गया कि यदि एक मानव उद्दण्डता करता है तो दूसरा शान्त रहे। किन्तु वेद का ऋषि कुछ और ही कहता है। नमः का उपदेश है कि जो उद्दण्डता करता है उसको शिक्षा दो, यदि शिक्षा से वह शान्त न हो तो उसे शारीरिक दण्ड देना चाहिये। यदि एक मानव समाज में नाना प्रकार के अपराध करता है तथा कन्याओं के श्रृंगार को भ्रष्ट करता है तो क्या उसके साथ अहिंसा अपनानी चाहिए। हिंसक को या तो मृत्यु दण्ड दिया जाए या उसको इस प्रकार विचारों में जकड़ दिया जाय कि नग्नता को त्याग दे। इसी का नाम 'अहिंसा परमोधर्मः' है। यदि कोई कन्या सुन्दर उपदेशों को न मानकर भ्रष्ट होती है तो उससे आगे आने वाले समाज में दुराचार की भावनाएं आती हैं। इसीलिए उसको ऊँची शिक्षा तथा उपदेश देने चाहिएं। यदि न माने तो मृत्यु दण्ड में भी कोई अपराध नहीं है। (इक्कीसवां पुष्प)

इतिहास को दूषित करना

आज से लगभग ४ हजार वर्ष पूर्व एक चेतांग नाम का ब्राह्मण हुआ और रमाशंकर नाम का ब्राह्मण हुआ। जिनको बौद्ध और जैन समाज ने द्रव्य देकर महाभारत के पात्रों को विकृत बना दिया तथा अशुद्ध बना दिया। उसी समय रेनकेतु तथा स्वाति नाम के ब्राह्मण थे।

दोनों ऊँचे विद्वान थे। परन्तु द्रव्य की लोलुपता में, रूढ़िवाद में परिणत हो करके उन्होंने राम के साहित्य को, रामायण के पात्रों को समाप्त करने के लिए अपनी प्रतिभा को प्रतिष्ठित बनाने का प्रयास किया। अब हमें उन पात्रों को शुद्ध बनाना है। पात्र उस समय शुद्ध बनेंगे जब ब्राह्मणों का एक समाज एकत्रित होगा। स्वार्थ से रहित बुद्धिमानों का समाज इस पात्र को यथार्थ बनाने का प्रयास करेगा। जहाँ हमारा विज्ञान, हमारी मानवता इतने ऊँचे शिखर पर रमण कर रही हो वहाँ का पात्र यदि नष्ट हो जाए, पात्रों में यदि अशुद्धता आ जाए तो वह नष्ट हो जाता है। जिस काल में भी विचारक पुरुष आते हैं, वैज्ञानिक पुरुष आते हैं, और तार्किक दृष्टि से दृष्टिपात करते हैं तो तर्क में आ करके वह साहित्य नष्ट हो जाता है। आधुनिक काल का जगत् उन्हीं पात्रों को लाने का प्रयास कर रहा है। तो जब उन पात्रों मे कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती तो उन्हीं पात्रों से साहित्य कलंकित हो गया। यहाँ जातिवाद में, रूढ़िवाद में, धर्म और मानवता का ह्रास करने के लिए इन पात्रों को भ्रष्ट किया।

बौद्ध और जैन समाज से पूर्व वाममार्गी समाज का एक कृत था, और उनकी पताका थी। उन्होंने, जो अठारह पुराण कहलाए जाते हैं, जो हमारा पुरातन साहित्य है, हमारी जो पुरातन ऋषि-मुनियों की सूक्ष्म प्रणालियां हैं राजाओं की परम्परा है वहाँ वाममार्गियों ने मांस भक्षण करने की, गौ मेध यज्ञों में गो मांस की आहुति देना, अजामेध यज्ञ में बकरे की आहुति देना, और अश्वमेध यज्ञ में घोड़ों की आहुति देना आदि इस प्रकार का जो प्रभाव चला। उन्होंने मांस भक्षण के

लिए, अपनी रसना के आनन्द के लिए, धर्म और मानव को नष्ट करने के लिए मिश्रण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत के काल में परीक्षित काल के पश्चात् यह अज्ञानता आई। जो वाममार्ग आया, उसमें धर्म और वैदिकता को नष्ट करने के लिए तत्पर रहे। यहाँ तक कि वेदों के भाष्यकारों में भी मांस भक्षण की त्रुटि आई। जहाँ वेद में कोई भी मत, कोई भी शब्द, इस प्रकार का नहीं है जिसमें मांस भक्षण की प्रवृति मानव की बताई जाये। आयुर्वेद का प्रसंग द्वितीय प्रसंग है।

जिन परम्पराओं में हमारे साहित्य के जो पात्र हैं, उनको अशुद्ध किया गया। उन्हीं पात्रों को ले करके आधुनिक काल में तार्किक पुरुषों ने इन साहित्यों को नष्ट करके और अपने आप में एक उपाधियुक्त बनते चले जा रहे हैं। क्योंकि जब परम अशुद्ध हो जाते हैं तो अज्ञानी पुरुष तार्किक पुरुष बन जाते हैं। वे नास्तिकवाद में परिणत होते हुए पात्रों को भ्रष्ट रूप में दृष्टिपात करते हुए अपनी उपाधियों को प्राप्त किया करते हैं। अतः हे ब्राह्मणो! आओ तुम पुनः से अपने पात्रों को शुद्ध बना लो। यदि आधुनिक काल का ब्राह्मण पात्रों को शुद्ध बना लेगा तो साहित्य जीवित रह सकेगा। जिस समाज का, जिस आर्यत्व का साहित्य पतित हो गया है तो उसके द्वारा रह क्या गया है।

जहाँ जैन, बौद्ध तथा मोहम्मद के मानने वालों के कालों में नाना प्रकार की प्रतिष्ठा रही, अध्ययन रहा। जब यहाँ मोहम्मद के मानने वालों का एक अग्रणी बन करके आया। अज्ञान तो आ ही गया था,

अज्ञान के कारण मोहम्मद के मानने वाले जो साधु थे, वे कृष्ण बन करके आये। जहाँ पांचाल राष्ट्र है उससे पूर्व अज्ञानता के कारण उन सबको मुहम्मद के मानने वाला बना दिया। क्योंकि ब्राह्मण समाज रूढ़िवाद में परिणत हो गया। ब्राह्मण जातिवाद में परिणत हो गया। वर्ण-व्यवस्था को न सुधार करके वे केवल जातीयता में आ करके समाज में अज्ञानता आ गई और हम दूसरे सम्प्रदाय को स्वीकार करने लगे। धर्म और मानवता को त्याग करके केवल उस आभा में परिणत हो गए। जहाँ समाज का ह्रस हो गया और यहाँ साहित्य और मानवता को कलंकित किया गया।

जहाँ अर्जुन का संस्कार हुआ था, अरुचि के कारण आज जब इन राष्ट्र के मानने वाले व्यक्तियों का सन्म्बन्ध टूट गया तब वे सब ईसा के मानने वाले बन गए। परन्तु कोई काल था जब वहाँ वैदिकता का प्रसार था। यज्ञों के द्वारा अस्त्रों का निर्माण होता था। आधुनिक काल में भी एक मानव पुरातत्व की दृष्टि से वहाँ यज्ञ-पात्रों का प्रादुर्भाव हुआ। राजा उत्तानपाद के समय का पात्र आज भी प्राप्त होता है। परिणाम क्या कि वहाँ की संस्कृति, विचारधारा, परम्परा से सुगठित है। परन्तु अज्ञानता के कारण, रक्त बहने के कारण वे यह कहते हैं कि मानव का जो विकास हुआ है वह केवल वानर पशु से हुआ है।

अरे मानव! तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गयी? तुम बुद्धि को कहाँ नष्ट कर गये हो? विचारो तो सही क्या मानव का विकास बन्दर से होता है? तो वानर जाति अब नहीं होनी चाहिए, वे सब मनुष्य होने चाहिए

थे। विचार-विनिमय यह है कि उनका अज्ञान परम्परा को न विचार करके वैदिक साहित्य और धर्म को कलंकित करने के पश्चात् अपने जीवन में मनमानी वार्ताओं को प्रकट करता रहता है। जिससे समाज में अशुद्धवाद आ जाता है। समाज उसी से ही पतित होने से उनका साहित्य भी नष्ट हो जाता है।

संक्षेप में समाज रूढ़ियों से नष्ट हुआ है। सबसे प्रथम रूढ़िवादी यहाँ वाममार्गी बने। वाममार्गियों का विचार संकीर्ण बन गया। देवियों के नाम से यज्ञों में मांस की आहुति प्रदान होने लगी। मांस स्वयं पान करते थे। देवी मांस को प्राप्त नहीं करती। दैवी सम्पदा वाले जो प्राणी हैं, जो यह जानते हैं कि दैवी-सम्पदा होनी चाहिए। देवी कहते हैं श्रद्धा को, देवी कहते हैं विद्या को, देवी कहते हैं जो उसको जागरूक बनाता है उसको बुद्धिमान कहते हैं। आधुनिक काल में समाज में वाममार्गी की प्रथा वर्तमान में भी प्रचलित है। आज भी वह देवियों पर, देवताओं पर मांस की आहुति दे करके अपने उदर की पूर्ति करते हैं। अरे! इस उदर की पूर्ति के लिए संसार में उनके शरीरों को नष्ट किया जाए तो बहुत ही प्रियतम हो सकता है।

अरे! वेद के ब्राह्मण, तू जागरूक हो और जागरूक हो करके तू ओ३म् की पताका को ले करके, वेद के साहित्य को ले करके और साहित्य को शुद्ध करके अपनी पताका को ऊँचा बना, धर्म को लेकर चल, जिससे राष्ट्र और समाज में शुद्धता आ जाए। यह आज के मानव का कर्त्तव्य है। जातीयता में आ करके यह समाज अग्नि के मुख में चला गया। हे ब्राह्मण समाज! आज तुम्हें जागरूक होना

चाहिए। जागरूक हो करके उषर्बुध होना चाहिए। उषर्बुध हो करके रूढ़ि को त्याग करके इन पात्रों को शुद्ध रूप से लेना चाहिए। ऋषि-मुनियों की जो परम्परा है, उनके जो जीवन हैं, उनको साकार रूप देने का प्रयास करो। जिससे यह जातिवाद नष्ट हो करके मानव धर्म और राष्ट्रवाद को अपने में परिणत कर लें। आज का राष्ट्रवाद कोई नियम नहीं बना सकता क्योंकि राष्ट्र में रूढ़िवाद चलता है।

निष्कर्ष यह है कि कामधेनु गऊओं की रक्षा होनी चाहिए। मद्य इत्यादि का जो मानव के मन को भ्रष्ट करता है, मानवत्व को भ्रष्ट करता है। द्रव्य की लोलुपता में आ गया तो यह नहीं आना चाहिए। संग्रह करने की प्रवृत्ति न राजा में हो न प्रजा में हो। वर्ण-व्यवस्था ऊंची होनी चाहिए। निर्माण विद्यालयों में हो। तब यह पुरातन का जगत् ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो सकता है। समय तो आएगा वह समय दूर नहीं जब यह समाज उसी प्रकार का बनेगा। (चौबीसबां पुष्प २८-१०-७३ ई.)

भविष्य में रक्त भरी क्रान्ति के आसार

आज के संसार को देखकर प्रतीत होता है कि यहाँ शीघ्र ही भयानक क्रान्ति आने वाली है। जिसमें व्यक्ति एक-दूसरे को नष्ट करेगा। इसके न आने का विकल्प यही है कि महान् क्रान्ति हो। किन्तु जो लक्षण हैं, वे नष्ट करने वाली क्रान्ति के ही हैं। यह क्रान्ति तभी आएगी जब स्वार्थ और इतना पहुँच जाएगा कि वैश्यजन, द्रव्यपति, संग्रह करते चले जाएंगे निर्धनों में और निर्धनता आती चली जाएगी। उस समय उनके हृदय की वेदना रक्तभरी क्रान्ति करके

विनाश का कारण बनती चली जाएगी। क्रान्ति उसी समय आती है जब माता को माता की दृष्टि से नहीं देखा जाता है, बहन को बहन की दृष्टि से, भाई को भाई की दृष्टि से, पिता को पिता की दृष्टि से न देखकर अपमानित किया जाता है। गुरु को गुरु की दृष्टि से नहीं देखा जाता। गुरु अपने शिष्य का हितैषी नहीं रहता। उस समय विडम्बनावाद होता है और विडम्बनावाद होकर इन्हीं से क्रान्ति प्रारम्भ हो जाती है। वह क्रान्ति आती है कि क्षण में राष्ट्र के राष्ट्र कहीं से कहीं चले जाते हैं, ऐसे यन्त्रों का प्रहार होता है कि भूमि के कण-कण हो जाते हैं और जल की धारा बहने लगती है। लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी क्रान्ति आएगी कि रक्त की धारा बहने लगेगी, तथा पृथ्वी से जल की धारा बहने लगेगी जिस प्रकार प्रलय में वही प्राणी कुछ समय तक जीवित रहते हैं जो दृढ़ संकल्पवादी होते हैं। इसी प्रकार आज इस क्रान्ति से वही मानव कुछ ऊँचे बन सकते हैं जो मानवता और दृंढ़ संकल्प से महान् बन चुके हैं। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

इस संसार में त्यागी और तपस्वी ही जीवित रह सकेगा। यथार्थ उच्चारण करने से मानव त्यागी और तपस्वी बन सकता है। जो यथार्थ उच्चारण करता है उस पर आपत्तियां आती ही हैं। जैसे दयानन्द और शंकराचार्य पर आईं। उनकी वेदनाओं को वही पूरी कर सकेगा, जिसमें उन जैसी त्याग और तपस्या हो, तथा उनके हृदयों में इतनी ही सांत्वना हो कि वज्रों को पुष्प बना सके। द्रव्य की लोलुपता उनमें न हो। जो मान और अपमान में संलग्न रहते हैं वे उनके वाक्यों को

पूरा न कर सकेंगे। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

वह समय निकट है जब समाज तथा यह संसार आध्यात्मिकवाद में आ जाएगा। क्योंकि आज योग की अत्याधिक आवश्यकता है। आज के समाज में भौतिकवाद में आहार और व्यवहार दोनों नष्ट होते जा रहे हैं, रसना तथा भोग की इन्द्रियों का मानव पर आधिपत्य हो गया है। माताओं की स्थिति भी विकृत होती जा रही है। उन्हें तो महान् आत्माओं को जन्म देने को तैयार रहना चाहिए। (अठारहवां पुष्प २५-२-७२ ई.)

आर्य समाज-सनातन विवाद

आर्य समाज क्या, यह समस्त संसार, जितना प्रभु का मण्डल है, वह आर्य कहलाता है। क्योंकि जो अच्छाईयों को ला देता है वह आर्य कहलाता है। आर्य वही होता है जो प्रभु का अटूट विश्वासी हो और प्रभु के आँगन में रमण करता रहता हो तथा वह यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयास करता है। (ग्यारहवां पुष्प ३१-७-६८ ई.)

यहाँ आर्य समाज और सनातन का विवाद है। किन्तु न तो वे आर्य ही हैं और न वे सनातनी। यदि दोनों में परम्पराओं की भावनाएँ हों तो दोनों ही आर्य भी हैं और सनातनी भी। जब केवल मानमानी वार्ता आरम्भ हो जाती है, ऋषित्व के सब वाक्य समाप्त हो जाते हैं तो यहाँ न आर्य ही रहता है न सनातन ही। आज इस पवित्र भूमि को महान् बनाने के लिए आर्यों तथा सनातनों दोनों को विचारशील बनना है। सनातनी अपनी जड़ पूजा को त्याग दें तथा आर्य अपने हृदय में श्रद्धा की वेदी को जागृत कर दें। यदि इसी प्रकार दोनों

अपनी त्रुटियों को सुधार लें तो वेद की वेदी पवित्र बन सकती है। (छठा पुष्प १८-७-६२ ई.)

परमात्मा हमारे कर्म-काण्ड को नहीं देखता, वह तो अन्तःकरण को देखता है। इससे उसे कोई तात्पर्य नहीं कि तुम आर्य हो या सनातनी, पावन हो; ईसा हो, मूसा हो, देव हो या कोई और हो; वह तो केवल अन्तःकरण को देखता है। अतः अपने विचारों को नष्ट न करो, जो भी करो शुद्ध और पवित्र होकर करो। रूढ़िवाद को समाप्त करो, विचारों पर आक्रमण न होने दो।

हमें वैज्ञानिक बनना चाहिए। अपनी अन्तरात्मा के भावों को परमात्मा तक पहुंचा देना चाहिए। यह संसार उस समय स्वर्ग बन जाता है, जब विचारों पर आक्रमण नहीं किया जाता परन्तु स्वागत किया जाता है। (छठा पुष्प ५-४-६४ ई.)

एक होना जानो, संसार में मिलकर कार्य करो। एक वृत्ति बनाकर कार्य करो। यदि भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों से ऊँचा बनना है तो इस प्रकार से प्रगतिशील बनना है। प्रगतिशील बन करके अपने जीवन को शिरोमणि बनाना है, सर्वोपरि पवित्र बनाना है। (चौथा पुष्प ९-७-६४ ई.)

हमारी परम्परा से जो संस्कृति है वह ऋषियों की प्रणाली है। ऋषि दयानन्द की वही प्रणाली है। उसको अपनाकर भारत को तथा संसार को ऊँचा बनाना होगा। जिस राष्ट्र में एक विचार, एक संस्कृति और उस संस्कृति के अनुकूल एक धर्म होता है, उस राष्ट्र की सीमा पर रक्त की धारा नहीं बहती। संस्कृति का अभिप्राय यह नहीं कि

एक भाषा आ गयी और हम संस्कृतज्ञ बन गए। संस्कृति का अभिप्राय यह है कि हम उसके ऊपर स्वयं चलें और उसके अनुकूल हम अपने जीवन को चलाने का प्रयास करें। जिससे आगे चलकर जीवन साहसी, विचारवादी और उच्चता को प्राप्त होता चला जाए।

विजय वहीं होती है जहाँ विजय के लक्षण होते हैं, जहाँ मानव के विचारों में शुद्ध क्रान्ति, कर्त्तव्यपरायणता और एकता होती है वहाँ विजय अवश्य हुआ करती है। अनीति में किसी की विजय नहीं होती, परमात्मा सबका रक्षक है। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

भूमि के गौरव को ऊँचा बनाएँ

मानव ऊँचा बने, महान् बने, पवित्र बने, राष्ट्र की संस्कृति को अपनाए, इस भूमि का गौरव होना ही चाहिए। (पांचवां पुष्प १९-८-६२ ई.)

सारा संसार मिलकर प्रभु से प्रार्थना करे कि भगवन् यहाँ ऐसी आत्माओं को न भेजे जो हमारी आत्माओं के उत्सव को हताश करें। यहाँ वे आत्मा आयें जो वेदों का प्रसार करें। वेदों को और संस्कृति को जानने वाले हों, हमारे शरीर से जो रश्मियाँ उत्पन्न हों, वेद से भरी हों। (पांचवा पुष्प १९-८-६१ ई.)

उन्नति का मार्ग

यदि संसार को ऊँचा बनाना है तो सर्वप्रथम विचारों के आक्रमण को शान्त कर दो। सबसे पहले यहाँ गुरुडम चलता है। उसके पश्चात विचारों का आक्रमण होता है। उन विचारों के आक्रमण ने हमारे जीवन का और सर्व-संसार का विनाश कर दिया। इन्हीं विचारों के

आक्रमण से वेद की विद्या लुप्त होती चली गई। वेद का भौतिक विज्ञान भी शान्त हो गया। यवनों ने यहाँ आकर मनुष्यों के विचारों पर आक्रमण किया। यह आक्रमण रूढ़िवाद से हुआ और यहाँ की सम्पन्न विद्या को शान्त किया। मोहम्मद, बुद्ध, महावीर अनेकों राजा अकबर आदि ने विचारों पर आक्रमण किया। घटोत्कछ, अर्जुन आदि के भौतिक विज्ञान के पुस्तकालयों को भस्म कर दिया। अब वेदों को ऋषियों का काव्य कहते हैं, क्योंकि अन्य राष्ट्रों ने भौतिक विज्ञान में कुछ उन्नति कर ली है। (छठा पुष्प १५-१-६४ ई.)

आधुनिक काल में आर्यों की इस परम्परा को विदेशियों ने अपना लिया तथा वे इसी आधार पर यवन तथा ईसाईयों की वृद्धि करते चले जा रहे हैं। वे महत्ता की विचारधारा को अपनाकर महान् बनते चले जा रहे हैं और आर्यों ने अपनी इस विचारधारा को त्याग दिया। अतः ये सायंकाल के सूर्य की भाँति अस्त होते चले जा रहे हैं। यदि यही स्थिति रही तो यह वैदिकता का सूर्य अस्त होता चला जाएगा।

दयानन्द, शंकर, नानक के अनुयायियों में रूढ़िवाद पनपता चला जा रहा है। इससे वे अवनति को चले जाएँगे तथा यवन और इसाई बन जाएँगे तथा इन महापुरुषों के विचार भी नष्ट हो जाएँगे। वास्तव में पतन का कारण यह है कि आर्यों में अज्ञानता आ गई। वे अनार्य बन गए। घृणा से उनमें एकता के स्थान पर अनेकता आ गई। एक मानव दूसरे से मिलना नहीं चाहता और न विचार देना चाहता है। एक मानव जो यवन बन गया था, वह सदा यवन बना रहेगा। किन्तु उसके मन में पुनः आर्य बनने की इच्छा है। इधर आर्यों में इतना

अजीर्ण हो गया है कि वे उसे अपनाना नहीं चाहते। वास्तव में वे आर्य नहीं अनार्य हैं। समाज में एक-दूसरे को अपनाने की शक्ति होनी चाहिए। द्रव्य से भी अपनाया जा सकता है, केवल विज्ञान की वार्ता करने तथा उसमें उन्नति कर जाने से ही आर्य नहीं बन सकेंगे। आर्य तो तभी बन सकेंगे जब अपने जीवन में दूसरों को अपनायेंगे। अतः दूसरों को अपनाने का प्रयास करो।

मानव प्रभु का बनाया हुआ है, उसकी अपनी जतीयता अथवा सम्पदा कुछ नहीं होती। मानव को मानव से प्रीति होनी चाहिए, स्नेह होना चाहिए। वह चाहे मोहम्मद को माने, ईसा को माने, दयानन्द को माने या अन्य किसी को माने किन्तु उसके विचारों में वैदिकता और आर्यता होनी चाहिए। किसी भी महापुरुष या धर्मप्रवर्तक में यदि अशुद्ध वाक्य आ गए हैं तो उनको बुद्धिमता से ईश्वरीय नियमों के अनुसार रूढ़िवाद को त्यागकर दमन कर देना चाहिए। जितनी भी पुस्तकें, पोथियां हैं उनके उत्तम विचारों को एकत्रित करके एक धर्म की परम्परा होनी चाहिए। उसी के आधार पर राष्ट्र, समाज तथा विद्वानों का समाज ऊँचा बन सकता है। वास्तव में नानक, मोहम्मद, ईसा आदि सबके विचारों को विद्वान लोग आर्यता व वैदिकता में ला करके कणाद, जैमिनी, वेदान्त दर्शन आदि सबके आधार पर राजा के राष्ट्र नियम होने चाहिएं। उसी के आधार पर राष्ट्र के धर्म का निर्माण होना चाहिए। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

३ तृतीय अध्याय- ऋषियों की परम्परा

ऋषि के लक्षण

जो ब्रह्मचर्य में रहता है वही ऋषि कहलाता है। हमारे यहाँ वेद के तथा दर्शनों के विद्वान हो सकते हैं किन्तु वे ऋषि नहीं बन सकते। ऋषि केवल वही होता है जो ब्रह्मचर्य को, ब्रह्म की आभा को चरने वाला होता है। इसलिए वह ब्रह्मचारी ऋषि कहलाता है। (सोलहवां पुष्प १७-१०-७१ ई.)

ऋषि कहते ही उसको हैं जो अनुसन्धान करने वाला हो। जो इस प्रकृति के परमाणुओं पर अपना अनुसन्धान, अपना आधिपत्य करने वाला हो, उसे ही ऋषि कहा जाता है, तपस्वी कहा जाता है। (पच्चीसवां पुष्प १७-८-७२ ई.)

ऋषि-मुनियों में विवाद नहीं होता, विचार होता है। विवाद तो उनका होता है जिनमें अधूरापन होता है तथा संकीर्णता होती है जो ऋषि होते हैं वह तपे हुए होते हैं, उनका विचार होता है। प्राचीन काल से ही भिन्नता होती रही है। मानव का जितना तपा हुआ विचार होता है तथा विचार के साथ आत्मिक विचार होता है, उतना ही उनका विचार प्रभावशाली होता है और जितना प्रभावशाली होता है उतना ही यौगिकता का प्रदर्शन करने लगता है। उसकी प्रतिभा उसके समीप आने लगती है। (अठारहवां पुष्प ११-७-७२ ई.)

ऋषियों का हृदय व्यापक होता है और उनका ज्ञान भी व्यापक होता है। ऋषि हृदय से अगम्यवत् हो जाते हैं। हृदय उस चेतना का

स्थान है जिससे यह सर्वजगत् चेतनित हो रहा है तथा जो अथाह ज्ञान का भण्डार है जो मानव-चेतना को तथा आत्मा को जानना चाहता है, वह हृदय-रूपी गुफा में ध्यानावस्थित हो जाता है। (चौदहवां पुष्प २६-३-७० ई.)

ऋषि उसी को कहते हें जो अपने जीवन का सम्ब्न्ध बाह्य-जगत् तथा आन्तरिक-जगत् दोनों का समन्वय करके दोनों की धारा को एक संगम में ला देता है। इसलिए उनके शब्दों की रचना तथा वाक्यों का विश्लेषण हमारे अनुकूल न होते हुए भी उनका विचार सार्वभौम हो जाता है। (सोलहवां पुष्प १२-२-७१ ई.)

प्राचीन काल में जब ऋषि सन्तानोत्पत्ति करते थे तो अनुसन्धान के आधार पर विचारशील सन्तान को जन्म देते थे। वह विचारशील सन्तान राष्ट्र को ऊँचा और महान् बनाने वाली होती थी। (उन्नीसवां पुष्प २६-२-७२ ई.)

कुछ ऋषियों की जीवनी

अगस्त्य

अगस्त्य ऋषि का जन्म माता सुमेनलता के गर्भ से हुआ था। वह अपने विचारों तथा विवेक में उसे तप्त करती थीं।

(बारहवां पुष्प ८-४-६१ ई.)

अगस्त्य मुनि के पिता का नाम ब्रह्मर्षि अत्री था। इनके माता-पिता आश्रम में जब दर्शनों की चर्चा करते तो ऋषि-मुनि, जिज्ञासु शान्त हो करके उनकी विवेचना को श्रवण करते।

एक समय ब्रह्मर्षि अत्री ने देवी से कहा कि हे देवी! इस संसार में मानव का उद्देश्य क्या है?

देवी ने कहा, प्रभु! इसका तो आप ही उत्तर दीजिए। हम नहीं जान पाते।

ऋषि ने कहा, हे देवी! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष के लिए मानव को सरल मार्ग चुन लेना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम यज्ञ होना चाहिए। उसके द्वारा वह आध्यात्मिक यज्ञ में रमण करें। क्योंकि इसके वैज्ञानिक स्वरूप को जान करके ही मानव परमाणुवाद में जाता है। भौतिकवाद के मार्ग से होता हुआ आध्यात्मिक मार्ग में चला जाता है। आध्यात्मिक मार्ग को जाने वाला प्राणी अमरावती को उषर्बुध बना करके परमात्मा के उस राष्ट्र में चला जाता है जहाँ कभी रात्रि नहीं होती। इन दर्शनों की विवेचना को पान करता हुआ अगस्त्य माता-पिता के शब्दों को श्रवण कर रहा है। (छब्बीसवां पुष्प)

अश्विनी कुमार

अश्विनी कुमार महान् वैद्यराज थे। ये दोनों भाई माता सोमलता तथा पिता शोगेमिक ऋषि के पुत्र थे। एक का नाम अश्विनी तथा दूसरे का नाम कुमार था। सोमलता के पिता श्रृंगी ऋषि थे। सोमलता ने अपने पिता से आयुर्वेद का अध्ययन किया था। उसने यहाँ तक अनुसन्धान किया था कि कौन-कौन से मास में कौन-कौन सी औषधियों का पान करने से बालक का कौन-कौन सा अंग बलवान

होता है। वास्तव में प्रत्येक माता को आयुर्वेद की विदूषी होना चाहिए।

जिस समय अश्विनी कुमार गर्भ में थे तो उसने अपने अनुसन्धानों के आधार पर ही चलकर इनको विकसित किया था। इन दोनों का जन्म एक साथ ही हुआ था। माता के अनुसन्धान के अनुसार प्रथम मास में परमात्मा पाक-घृत को बना देता है। प्रथम महीने से ही गर्भ में बालक का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है तथा चतुर्थ मास में जरायुज पूर्ण हो जाता है। तथा उसका कार्य समाप्त हो जाता है। इससे आगे नाना प्रकार की औषधियों, नाना कान्तियों, किरणों तथा ओज के द्वारा बालक गर्भ में बलवान होता है। छठे मास में बालक की बुद्धि का निर्माण होता है। उस समय माता ने नाना प्रकार की औषधियों का पान किया। इस प्रकार अश्विनी कुमारों का जन्म हुआ। इन्होंने पठन-पाठन का कार्य महाराजा अश्वपति के राज्य में किया था। ये ही अश्विनी कुमार राजा रावण के यहाँ विराजमान हुए थे। दोनों ने बाल्यकाल में आयुर्वेद की शिक्षा पाने के पश्चात् दधीचि के आश्रम में ब्रह्म का उपदेश पान किया। इसके पश्चात् वे यहीं कार्य करने लगे। उनको वैद्यराज की उपाधि दी गई थी। 'सुधा अमृत वैद्य' जिसको सुर्धामा भी कहते हैं इन्हीं का शिष्य था।

ये कण्ठ से ऊपरले भाग को छः मास तक औषधियों में स्थिर कर देते थे, वे नाना लेपन भी जानते थे। एक वर्ष तक मानव हृदय को औषधियों के पात्र में स्थिर कर देना तथा मानव के शव को औषधियों के द्वारा ज्यों का त्यों बना देना तथा एक वर्ष पश्चात् ज्यों

का त्यों हृदय को स्थिर करना वे जानते थे। (बीसवां पुष्प २४-९-७० ई.)

जब अश्विनी कुमार वेद-विद्या में पारंगत हो गए और नाना प्रकार की औषधियों का पान करने से वे उनके विधान से सुन्दर-सुन्दर रूपों को जानने लगे तो वे इतने प्रकाण्ड आयुर्वेदज बन गए, और उनकी बुद्धि इतनी तीव्र हो गई कि उनके समक्ष औषधि स्वयं उच्चारण करने लगी थी 'कि मैं अमुक रोग की औषधि हूँ।'

एक बार उन्होंने विचार बनाया कि हम ब्रह्मवेता बनेंगे। उन्होंने नाना ऋषियों के आश्रम में भ्रमण करना आरम्भ किया। जब वे शौनक ऋषि के आश्रम में पहुंचे तो उसी समय इन्द्र ने घोषणा कर दी कि जो अश्वनी कुमारों को ब्रह्मविद्या का उपदेश देगा, उसके कण्ठ के ऊपर के भाग को उतार लिया जाएगा। इस घोषणा को सुनकर कोई भी ऋषि उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिए सन्नद्ध न हुआ। भ्रमण करते हुए वे महर्षि दधीचि के आश्रम में पहुँचे। ये कामधेनु का दुग्धपान करते थे तथा ब्रह्मवेत्ता बन गए थे। ये वही दधीचि थे जिन्होंने अपनी अस्थियों का दान कर दिया था और देवत्व को प्राप्त हो गए थे। जब अश्विनी कुमारों ने उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करने की प्रार्थना की तो दधीचि ने भी इन्द्र की घोषणा का सन्दर्भ देकर मना कर दिया। तब अश्विनी कुमारों ने कहा कि हम ऐसा कर सकते हैं कि आपके कण्ठ के ऊपर के भाग को पृथक् करके औषधियों में सुरक्षित कर दें और आप इस अश्व के सिर से हमें उपदेश दीजिए। यह सुनकर दधीचि को आश्चर्य हुआ। अश्विनी कुमारों ने अनेक

औषधियां एकत्रित कीं, उनका पात बनाया, उसमें दधीचि के सिर को सुरक्षित रख दिया और उसके स्थान पर अश्व का सिर रख दिया। दधीचि के हृदय से ब्रह्म का उपदेश होने लगा।

यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि क्या अश्व के सिर से मानव की वाणी का उच्चारण हो सकता है। इसका समाधान यह है कि अश्विनी कुमार एक अश्वक नाम की औषधि को जानते थे, जिनको मन्थन करके चालीस दिन तक पान करने से मानव अश्व की वाणी को श्रवण करने लगता है। इस प्रकार जब अश्विनी कुमारों ने अश्व की शिक्षा से इस विद्या को पान कर लिया। इस विद्या को इन्द्र भी जानता था।

जब इन्द्र को प्रतीत हुआ कि अश्विनी कुमार दधीचि के आश्रम में ब्रह्मविद्या प्राप्त कर रहे हैं तो उसने दधीचि के कण्ठ के ऊपर के भाग को पृथक् कर दिया। उसके चले जाने के पश्चात् अश्विनी कुमारों ने उसके वास्तविक मस्तिष्क को लेकर उसके कण्ठ पर पुनः आयोजित कर दिया। १-कुक, २-त्रिगाढ़, ३-रेश्मिन, ४-कांचन, ५-सौममुनि, ६-काकाऊनी नाम की छः औषधियों को तपाकर पात बनाया जाता है। जिस मानव का कण्ठ पृथक् हो गया हो, उसको ज्यों का त्यों लगाकर इस पात का लेपन कर देना चाहिए। यह लेपन के पश्चात् एक ही दिवस में वह सुरक्षित हो जाता है जब दधीचि ज्यों के त्यों बन गए, तो ब्रह्म का उपदेश प्रवाह के साथ होने लगा। जब इन्द्र को यह प्रतीत हुआ कि अश्विनी कुमारों ने दधीचि को ज्यों का त्यों कर दिया है और वह तो अश्व का सिर था, तो इन्द्र को बड़ा पश्चाताप

हुआ। क्योंकि वह पुनः उसको नष्ट नहीं कर सकता था। यह अश्विनी कुमारों की आयुर्वेद विद्या का परिचय है। (बीसवां पुष्प १४-१-७० ई.)

अश्विनी कुमारों के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने १०१ वर्ष तक आयुर्वेद पर अनुसन्धान किया था। उन्हें इतना अभ्यास हो गया था कि निन्द्रा में, स्वप्न में उन्हें ऐसा प्रतीत होता था जैसे मन औषधियों में चरने जा रहा हो। जागरूक होने पर मन उन्हें निश्चित करा देता था कि अमुक औषधि, अमुक रोग में कार्य करती है। (पच्चीसवां पुष्प १-८-७३ ई.)

अष्टावक्र

जब महात्मा अष्टावक्र माता के गर्भ में थे, तब पिता रात्रिकाल में माता को उपदेश देते थे इसी से महात्मा अष्टावक्र की आत्मा ऋषि आत्मा बनी। पूर्व जन्म का काल भी उनका ऋषि आत्मा का था। जब अष्टावक्र के पिता ब्रह्म का उपदेश दे रहे थे और उनका यह आदेश था कि यह जो वायु है, यह अन्तःकरण में, इस महान् आकाश में, अन्तरिक्ष में लय हो जाती है और यह अन्तरिक्ष लोकों में रमण कर जाते हें। उस समय माता के अन्तःकरण से वह जो गर्भाशय में प्लावित था, वह वेदनित हो गया और उसने माता को प्रेरणा दी। माता का अन्तःकरण प्रेरित होकर कह रहा था, हे भगवन्! हे पतिदेव! आपका यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मेरी आन्तरिक भावना प्रेरणा दे रही है। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

अत्रेय

इनके पिता का नाम सुराधति था जिसका नाम आगे चलकर रेछव अम्भूत ऋषि हो गया। जो अनुसन्धान करने वाला हो और अपने जीवन को वेदज्ञ स्वरूप में रमण कराने वाला हो उसे सोमधि और रेछनी, आसीन नामों से पुकारा जाता है। इनकी माता का नाम सुरधंगनि था। उसे गायत्री भी कहते थे। क्योकि वह नित्य गायत्री का पाठ किया करती थीं, पिता ने इसको बाल्यकाल में न बोलने के कारण मूर्ख समझा तथा बीमार भी समझा। क्योंकि इसके शरीर में कभी-कभी कम्पन भी होती थी। यह बालक सात वर्ष की आयु में गृह त्याग कर तपस्या करने चला गया। पूर्व जन्म का महान् योगी होने के कारण कुछ ही समय में उनके हृदय की ग्रन्थि सुलझ गई और उसे ब्रह्मज्ञान हो गया। सोलह वर्ष की अवस्था होने पर वह माता के दर्शन करने आया तो माता ने बताया कि उसके पिता ने उसे मूर्ख पुत्र उत्पन्न करने के कारण उसे कलंकिनी कहकर दुत्कार दिया था और महापापिन, राक्षसनी आदि शब्दों का प्रयोग किया था। बालक ने उसे कृत्रिम पिता के स्थान पर वास्तविक पिता को अपनाने का उपदेश दिया और कहा था कि हे माता! व्यक्ति कहते हैं कि ये यज्ञ करते हैं और नाना सामग्रियों की आहुति देते हें। परन्तु अनुभव यह है कि यज्ञशाला में कोई सामग्री को स्थापित नहीं करता है। जो यज्ञशाला में सुगन्धिदायक पदार्थों की आहुति देते हैं वे सांसारिक न रहकर आलौकिक प्राणी बन जाते हैं और एक समय वे देवताओं और महान् आत्माओं के यज्ञ में रमण करने लगते हैं। मैं प्रतिदिन

नाना प्रकार के विचारों की आहुति आत्मा के सुख में देता रहता हूं। वह इन्हें भस्म करके मेरे हृदय को निर्मल व पवित्र बना देती है। जब पिता को यह मालूम हुआ कि उसका पुत्र इतना उज्ज्वल है कि संसार उसका पूजन करता है, तो उसने उसे अपनाना चाहा। तब बालक ने उत्तर दिया कि तुमने मेरे ही कारण मेरी माता को कलंकिनी बनाया। कल ब्रह्म-पुत्र बनकर मुझे भी ठुकरा दोगे। जो स्वार्थ में आकर पत्नी और पुत्र को ठुकरा सकता है उसका क्या भरोसा? यदि तुममें स्वार्थ भावना न आती तो अपने जीवन साथी को कलंकिनी न उच्चारण करते? यह तो दोनों का ही भाग्य है कि पुत्र या पुत्री सौभाग्यनी और विचित्र हो अथवा मूर्ख हो। बहुत कुछ कहने पर ही बालक घर में आया। (बारहवां पुष्प ३०-१०-६४ ई.)

सौमभूक

रघु प्रणाली में सौमभूक नाम के ऋषि हुए। उन्होंने भूदान-यज्ञ तथा सर्वोदय के सन्म्बन्ध में बहुत कार्य किया था। किन्तु राजा के सुगठित न होने के कारण उसमें अधूरापन रह गया था। भूदान-यज्ञ की सफलता के लिए इसमें लगे व्यक्ति को प्रारब्ध का विचार होना चाहिए। यदि वह ब्रह्मवेत्ता नहीं है, राजा को नहीं अपना सकता और विडम्बना में अपने विचारों को इतना सुगठित नहीं बना पता कि राजा को अपने वाक्य से बाध्य कर सके। तो वह इस कार्य में कदापि सफल नहीं होगा। (चौदहवां पुष्प १४-११-६९ ई.)

सुखदेव

महर्षि व्यास की पत्नी का नाम मातातुर था और उनके गर्भ से सुखदेव का जन्म हुआ था। (दसवां पुष्प २१-७-६३ ई.)

सुकेतु

सुकेतु ऋषि से स्वरित ऋषि ने पूछा कि क्या आप मंगल की यात्रा यान द्वारा कर लेते हैं। तो सुकेतु ने कहा कि उसने इस विज्ञान को प्रवाण ऋषि से जाना है। (दसवां पुष्प २८-३-७३ ई.)

सोमकेतु

एक बार प्रजापति के यहाँ सोमकेतु ऋषि आए। वह अंगिरस गौत्र में जन्मे महर्षि मुद्गल के पुत्र थे। उन्होंने २४ वर्ष अनुष्ठान किया। वे केवल एक पल की निद्रा लेते थे। नाना प्रकार की औषधियों का पान करते थे। जल इत्यादि पर निर्भर रहते थे। अनुष्ठान के मध्य एक बार प्रजापति ने उसको सुन्दर-सुन्दर फल तथा सोमलताएँ अर्पित कीं। उनसे ऋषि के मन की गति चँचल हो गयी। इसका कारण जानने के लिए उन्हांने प्रजापति से कहा। किन्तु वह इसको नहीं जान पाए। अतः ऋषि ने इस अन्न के परमाणुओं को जानने के लिए समाधिस्थ होकर यौगिक क्रियाएँ कीं। उन्होंने योगाभ्यास से जाना कि राष्ट्र में किसी पति हीन कन्या के हृदय को कष्ट दे करके द्रव्य लाया गया है। उसके द्वारा फल प्राप्त हुए। जिसके फलस्वरूप मन चँचल हो गया। प्रजापति ने राजकर्मचारियों द्वारा इस पर अनुसन्धान किया। विदित हुआ कि उस कन्या को राज कर एक वर्ष पूर्व देना था। उसके पास कुछ था नहीं, अतः उसने अपने एक स्वर्ण आभूषण को

बेचकर प्राप्त धन को राजकोष में प्रदान कर दिया था। (सोलहवां पुष्प १७-१०-७१ ई.)

एक बार सोमकेतु ने यज्ञ करने का विचार किया। उसने वन, पर्वतों से औषधियों को एकत्रित किया। उनकी सामग्री बनाई गयी। अपनी कामधेनु गऊओं के घृत को एकत्रित किया। यज्ञ करते समय न कोई ब्रह्मा था, न होता, केवल ऋषि का उद्गान चल रहा था और शाकल्य की आहुति दी जा रही थी, वेद वाणी से उच्चारण किए जाने के कारण आहुति के द्वारा यज्ञ से उत्पन्न सुगन्धि को पान करने के लिए वहाँ मृगराज तथा पक्षीगण भी आ गए। वहाँ वृष्टि यज्ञ हो रहा था। हृदय से उच्चारण किए हुए वचनों की वेदना प्रकृति में भी प्रकट होने लगी। देवता भी उसे सहन न कर सके। अतः मेघों की उत्पत्ति होकर वृष्टि होने लगी। (बीसवां पुष्प १९-७-७० ई.)

वास्तव में उद्गाता वही होता है जो हृदय से उद्गान करता है। तथा यथार्थवाद को प्रकट करता रहता है।

शाकल्य

महर्षि शाकल्य की माता ने विचारा और अपने पति से कहा कि भगवन्! मेरा हृदय कैसे प्रदीप्त हो सकता है। उस समय शाकल्य मुनि के पिता ने कहा कि हे देवी! यदि तुम अपने को प्रतिष्ठित चाहती हो तो अपनी मनोभावना को प्रतिष्ठित बनाने का प्रयास करो। ऋषि पत्नी ने तय किया। (चौबीसवा पुष्प १-५-७३ ई.)

श्वेताम्बरी

एक समय श्वेताम्बरी ऋषि महाराज अपने जीवन का अध्ययन कर रहे थे। ब्रह्मरन्ध्र में प्रकाश का अनुभव कर रहे थे जहाँ वृत्ति जागरूक हुई। दोनों को अनुदान हुआ तो उनका प्रकाश हो गया। उस प्रकाश में जगत् को दृष्टिपात करना चाहा। किन्तु यह कैसे हो सकता था? उन कृतिकाओं से आगे स्वदाना नतिक नाम का चक्र आता है। जब वह जागरूक होता है, तो ब्रह्मरन्ध्र में मन और प्राण दोनों का समावेश हो जाता है। तब योगी अपने जगत् को दृष्टिपात कर लेता है। (बाईसवां पुष्प १३-२-७४ ई.)

शाममुनि

सांख्य दर्शन के रचयिता कपिल का दूसरा नाम शाम मुनि ऋषि था। (पन्द्रहवां पुष्प २३-८-७१ ई.)

जब कपिल मुनि महाराज प्रकृति के तत्वों का चिन्तन करने लगे और प्राण के ऊपर चिन्तन हो गया, मन के ऊपर चिन्तन होने लगा तो वह अपने पूज्यपाद गुरुदेव के पास पहुँचे और उनसे कहा कि मुझे दो ही वस्तु प्रतीत होती हैं। एक विभाजन होने वाली तथा एक विभाजन करने वाली। विभाजन करने वाला मन है और विभाजित होने वाला प्राण है, जिसे आप परमात्मा स्वीकार करते हैं, वह मुझे स्वीकार नहीं हो रहा है। उसको मैं जान नहीं पा रहा हूँ कि परमात्मा की संसार में सत्ता है। मानव शरीर में मन विभाजन कर रहा है। प्राण विभाजित होता है, इसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ में रसों का आदान-प्रदान मनों के कारण हो रहा है। आज मन और प्राण दोनों

अस्त हो जाएँ तो यह विभाजनवाद सर्वज्ञ समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार नाना लोक-लोकान्तर, नाना ब्रह्माण्ड, मन और प्राण के कारण ही विभक्त हो रहे हैं। उस समय उनके गुरु को कोई उत्तर नहीं बन पाया। उन्होंने कहा कि हे बाल्य! अब तुम तपस्वी बनो। तुमने यह सर्व जाना है, अब तुम तप करो। उन्होंने कहा कि तप क्या है? ऋषि ने कहा कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। जब उन्हें एक सूत्र में लाओगे तो इसी का नाम तप है। तुम्हारी इन्द्रियाँ संयम में होंगी और संयम में हो करके मन और प्राणों के रहस्यों को जब तुम जानोगे उस समय तुम्हें जड़ और चेतन का ज्ञान होगा। तप से प्रभु का विश्वास होता है। तप से कपिल जी का नास्तिकवाद समाप्त हो गया। (अठाईसवां पुष्प १६-११-७६ ई.)

महर्षि शाण्डिल्य

शाण्डिल्य महर्षि अंगिरस के तीन हजारवें पड़पौत्र थे तथा मुंजु शाण्डिल्य की सातवीं पीढ़ी में हुए थे। (पन्द्रहवां पुष्प २८-१०-७६ ई.)

महर्षि शाण्डिल्य की मां का नाम पुष्पांजली था तथा पिता का नाम सुसिद्ध था। जब माता के गर्भ में शाण्डिलय मुनि की आत्मा प्रविष्ट हो गयी तो उसने पति से कहा कि प्रभु! मेरे गर्भ में आत्मा प्रविष्ट हो गया है। अब मुझे अपने जीवन को सुन्दरता से व्यतीत करना चाहिए। क्योंकि मैं ऋषिकन्या हूँ और ऋषि गृह में प्रविष्ट हुई, तो मैं यह चाहती हूँ कि मेरे गर्भ से ऋषि बालक का जन्म होना

चाहिए। पति ने कहा, बहुत सुन्दर। उसने ब्रह्मचर्य का संकल्प लिया। एक समय पत्नी, पति से बोली कि प्रभु! मैं अश्विनी कुमारों के द्वारा जाना चाहती हूं। जिससे अपने जीवन के सन्म्बन्ध में तथा आयु के सन्म्बन्ध में कुछ वार्ता प्रकट कर सकूं। उन्होंने कहा कि चलते हैं।

पति-पत्नी दोनों अश्विनी कुमारों के मध्य विराजमान हो गए। अश्विनी कुमारों ने ऋषि का आदर किया और उनके चरणों को स्पर्श किया और नम्र हो करके बोले, भगवन्! हमारे लिए क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा कि इनके शरीर में आत्मा प्रविष्ट हो गया। अब हमें कौन-कौनसी औषधियों का पान करना चाहिए। अश्विनी कुमारों ने कहा कि मैं अपनी औषधियों का वर्णन कर रहा हूँ, तुम अपनी लेखनीबद्ध करते रहो।

प्रथम मास में आचार्य को निमन्त्रण देकर व्रती संस्कार होना चाहिए।

द्वितीय मास प्रारम्भ हो उस समय निर्माणवेत्ता प्रभु को स्वीकार करते हुए, अपने चित्त को सान्त्वना देनी हे और कर्म को विचारना है। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को विचारना है।

इन्द्रिय विषय

हमारे इस मानव शरीर में दस इन्द्रियाँ कहलाती हैं जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना विषय भिन्न है। जैसे नेत्रों का दृष्टिपात करना, घ्राण का मन्द सुगन्ध को पान करना, श्रोत्रों का शब्द ग्रहण करना, रसना का रस पान करना, त्वचा

का स्पर्श, उपस्थ का शरीर के नाना अंगो में बहने वाले जल को बाहर निकालना, नाना औषधियाँ, विष आदि को अपान द्वारा गूदा त्याग देती है। हस्तों का कार्य संसार को क्रिया में लाना, प्राणों का कार्य शुभ मार्गों पर विचरण करना। इन भिन्न-भिन्न विषयों की भिन्न-भिन्न औषधियाँ हैं। इसी आधार पर नौ द्वारों का निर्माण किया है, नौ द्वारों के भिन्न-भिन्न स्थल हैं। एक नेत्र को हम जमदाग्नि कहते हैं और दूसरे को विश्वामित्र श्रोत्र में एक को वशिष्ठ तथा दूसरे को भारद्वाज कहते हैं। घ्राण के एक छिद्र को सूर्य तथा दूसरे को चन्द्र कहते हैं। रसना के अग्र भाग में अश्विनी विराजमान है। गुदा में ब्रह्मा तथा उपस्थ में शिव विराजमान है। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय का एक देवता है, प्रत्येक द्वार का एक देवता है। प्रत्येक देवता की प्रत्येक प्रकार की औषधि है। कश्यप का स्थान उपस्थ को माना गया है। जमदाग्नि की जो औषधि है उसमें अग्नि कुछ प्रधान हो और विषामित्र जो मित्रता की औषधि है। इस प्रकार एक-दूसरे को संगठित करने वाली औषधियों को हमें पान करना चाहिए। ब्रह्म बूटी है, ब्रह्म जड़ी है, शंख पुष्पि है। इसका संग्रह करके माता को गौ दुग्ध के साथ इसका पान करना चाहिए।

तृतीय मास में शरीर में कश्यप देवता की प्रधानता रहती है। कश्यप नक्षत्र की भी प्रधानता रहती है। उस समय माता को १-स्वाति, २-शैलखण्डा, ३-अश्विनी, ४-मानकेतु, इन चार औषधियों का चूर्ण बना लेना चाहिए और ऋतु अनुसार दुग्ध के साथ पान करना चाहिए। उससे माता का स्वास्थ्य बलशाली होता रहता है और गर्भ में

बालक पनपता रहता है, उसे देवताओं की प्राप्ति होती रहती है।

चतुर्थ मास आता है तो गर्भाशय में इन्द्रियों का निर्माण हो जाता है। उसके सर्व अंग का निर्माण हो जाता है। अपनी-अपनी स्थली में परमाणु अंकित हो जाते हैं और उनका निर्माण हो करके लेपन भी हो जाता है, अस्थियों का निर्माण हो करके उनके ऊपर त्वचा का लेपन हो जाता है। इस माह में स्वाति व पीपल के पंचाग का पान करना चाहिए।

पंचम मास में शुद्ध हृदय हो। पारा को शिव तथा गन्धक को पार्वती कहते हैं। दोनों का अग्नि में शोधन होता है। जब तक पार्वती रहती है शिव भी रहता है तथा कान्दराओं का चूर्ण बना करके और पार्वती शिव दोनों को पृथ्वी में मथ करके, पृथ्वी के परमाणुओं को उनका सम्पुट बना करके उसको अग्नि में प्रदान करना चाहिए। जब उसका शोधन हो जाता है तो वह औषधि स्वाति औषधि तथा ब्रह्मडण्डी, इन तीनों का चूर्ण बना करके गौ दुग्ध के साथ इसको तपा करके और घृत का उसमें पात बना करके ऋतु के आधार पर पान करना चाहिए।

छठे मास में बालक का निर्माण हो करके बुद्धि के तन्तुओं में, वायुमण्डल में से परमाणुओं का भरण होना आरम्भ हो जाता है, चन्द्रमा की कान्ति द्वारा। वह जो बालक की बुद्धि का मध्यम धड़ है उसको ऊँचा बनाने के लिए माता-पिता को विचारना है कि बालक को किस प्रकार का बनाना है? यदि उसे राजा बनाना है तो राष्ट्र की औषधियों का पान कराना है। यदि महापुरुष बनाना है तो महापुरुषों

की औषधि का पान कराना है। महापुरुषों की औषधि १-स्वाति, २-कुम्भ-प्रीति घ्राणा है, ३-अचनेरू है। ये ले करके और ४-वट वृक्ष का पांँचांग लेकर पान कराना है। इसको पान करते हुए माता सांख्यवाद या मीमांसा दर्शन का अध्ययन करे। वेदान्त का अन्तिम जो प्रभु का चरण है उसका अध्ययन करें। जब माता पिता के पास विराजमान हो तो ऊँचे-ऊँचे दर्शनों की चर्चा, परलौकिक चर्चाएं, ऋषि तपस्वियों की चर्चाएं होनी चाहिएं। इससे बालक की बुद्धि का माता की बुद्धि से तारतम्य हो जाता है।

सप्तम् मास में गर्भाशय पूर्ण हो जाता है, बुद्धि का निर्माण भी हो जाता है। उस समय माता को सदैव बुद्धिवर्द्धक, शरीर को पोषण करने वाली औषधियों का पान करना चाहिए। जैसे १-स्वाधि, २-घृणी, ३-अस्वातन तथा ४-हड़ बूटी है, इन चारों का चूर्ण बना करके दुग्ध के साथ में पान करना चाहिए। तो बालक का स्वास्थ्य ऊँचा बनेगा।

अष्टम मास में बुद्धि का सन्म्बन्ध जयेष्ठाय नक्षत्र, आरूणि नक्षत्र और वशिष्ठ नक्षत्र से होता है। एक वशिशा नाम की औषधि होती है उसे पान करना चाहिए। उस समय यदि माता के गर्भ से बालक का जन्म होता है तो या तो माता की मृत्यु हो जाती है या बालक की मृत्यु हो जाती है। इसलिए अष्ट मास का कोई बालक जीवित नहीं रह सकता।

सप्त मास का बालक जीवित रह जाता है उसका मूल कारण यह है कि उसका स्वानकेतु नक्षत्र से सन्म्बन्ध होता है और स्वानकेतु नक्षत्र का सन्म्बन्ध पृथ्वी से होता है। इसलिए उस बालक का जन्म

होने से उसमें कोई किसी प्रकार की हानि नहीं हो पाती।

नवें मास में शयन का कार्य करते हुए १-गुणा वचन, २-आस्वेति इन दो औषधियों का पान करते हुए माता अपने गर्भाशय को सदैव पूर्ण करके नौ माह में अपने बालक को जन्म देती है।

पुष्पांजलि माता ने तदनुसार ही कार्य किया उस समय माता के गर्भ से शांडिल्य का जन्म हुआ। महर्षि शांडिल्य मुनि महाराज हमारे यहाँ प्रथम आचार्यों में महर्षि कहलाते हैं। (चौबीसवां पुष्प २-८-७३ ई.)

महर्षि श्वेतकेतु

उद्दालक मुनि के कुल में जन्मे दालम्य मुनि का पुत्र श्वेतकेतु था। उन्हें १२ वर्ष की आयु में गुरु के पास विद्या अध्ययन के लिए भेजा गया था। २५ वर्ष की आयु होने पर यह वापिस आए। दालभ्य मुनि ने प्रश्न किए कि तुम्हें अभिमान तो नहीं है। श्वेतकेतु ने कहा कि अब मैं बुद्धिमान बन गया हूँ। प्रश्नोत्तरों में श्वेतकेतु ने बताया कि यह मानव शरीर से पहले माता के गर्भ में था। उससे पूर्व उनके रजवीर्य में था। इससे पूर्व ये कण पृथ्वी में, कृषक की कृषि में बिखरे थे। इससे आगे का प्रश्न पूछने पर श्वेतकेतु मौन हो गए। तब दालभ्य ऋषि ने तत्त्वामसि का ज्ञान कराते हुए कहा कि-

(१) जैसे वट के सूक्ष्म बीज में यह वृक्ष निहित है, इसी प्रकार परमात्मा प्रकृति के कण-कण में निहित हो रहा है।

(२) जैसे प्रकृति और ब्रह्म का मिलान होकर यह संसार

क्रियाशील हो रहा है। इसी प्रकार हमारा जीवन भी क्रियाशील होना चाहिए।

(३) जहाँ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी सुन्दर विचारों में परिणत हो जाते हैं उनमें कर्त्तव्यवाद की महत्ता होती है। वहीं धर्म की मान्यताएं और धर्म में उनकी विलक्षण गति हो जाती है।

(४) संसार में केवल पांँच प्रकार के कर्म होते हैं-ध्रुवा, व्यापक, आकुंचन और क्रिया। संसार का पूर्ण विज्ञान अणुवाद आदि इन्हीं में निहित रहता है।

(५) संसार का धर्म मानवता की व्यापकता में विद्यमान है। मानव जितना अपने विचारों को व्यापक बना लेता है, उतना ही धर्म, मानवता और कर्त्तव्य उसके समीप होता है। यदि मानव अपने विचारों को सूक्ष्म बनाकर अपने तक ही सीमित कर लेता है तो धर्म उसके द्वार से चला जाता है।

(६) जैसे लवण का जल सब ओर से लवण युक्त ही प्रतीत होता है, इसी प्रकार ब्रह्म को भी व्यापक दृष्टिपात करना चाहिए।

(७) प्रत्येक मानव, देवकन्या अपने कर्त्तव्यवाद में अपनी मानवता को ऊँचा बनाना, यह मानव के विचारों से सम्बन्धित है। (नौवां पुष्प १७-१०-६७ ई.)

(८) ऐसे ऋषि जो भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनों को जानते थे वशिष्ठ, कुकुट, सोमकेतु, गिरिव, विश्वमित्र। (नौवां पुष्प १८-७-६७ ई.)

(९) भृगु ऋषि के आश्रम में उसके वेद-मन्त्रों के गायन को सुनने

के लिए हिंसक पशु आते तथा उनके चरणों में लेटते थे। महर्षि भृगु के आश्रम पर दालम्य, रेवक तथा गर्द्दपथ एकत्रित होकर यह विचारने लगे कि जटा-पाठ में ऋत् है अथवा नहीं। भृगु जी के वेद का पठन-पाठन आरम्भ करने पर मृगराज भी वहाँ आ गए। कारण पूछने पर भृगु जी ने बताया कि हमारे जो उद्गम विचार हैं, अन्तःकरण में जितनी महत्ता होती है, उत्तमता होती है, उतनी ही वायुमण्डल में भी महत्ता होती है। ऐसे वायुमण्डल में हिंसक, हिंसक नहीं रहता है। (ग्यारहवां पुष्प ११-४-६९ ई.)

एक समय श्वेतकेतु मुनि महाराज जब व्याकरणी बन करके अपने पिता 'सामभूमि' के द्वार आए। उन्होंने कहा कि प्रभु प्रत्येक प्रत्याहार उदात, अनुदात शब्दों की जो सुगठितता है उसको अच्छी प्रकार जानता हूं। उन्होंने कहा मैं तुम्हारे वाक्य को स्वीकार करता हूँ, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें कितनी वाहक नाड़ियाँ हैं जो अपने स्वरों से गान गा रही हैं। तुम्हें यह प्रतीत है कि मानव के मस्तिष्क में कौन सी नाड़ी इस प्रकार की है जो एक-दूसरे से वर्णन, निर्वात कराती रहती है? जिसका सन्म्बन्ध उस ब्रह्मरन्ध्र से होता है, ऐसा कौन सा व्याकरण तुमने जाना है? आचार्य पुत्र बोले, प्रभु! मैं इस व्याकरण को तो नहीं जानता हूँ। उन्होंने कहा, तुम ब्रह्म-व्याकरण को जानते हो। जो प्राणी व्याकरण का शोधन करना चाहता है तो वही करता है जो मानव के मस्तिष्क में ध्वनियाँ हो रही हैं। जिस ध्वनि का योगी जन-पान करके, पण्डितपान करके योगी बनते हैं और योगी पान करके मुनि बनते हैं

और मुनि पान करके एक ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। वे ब्रह्म में ही समाधिस्थ हो जाते हैं, व्याकरणी पण्डित को ऐसा ऊँचा बनना चाहिए। (तेईसवां पुष्प २९-७-७१ ई.)

शृंगकेतु मुनि

शरणकेतु संहिता को शृंगकेतु मुनि ने रचा। जो सतयुग में अदुल मुनि के पुत्र थे, उनका जीवन आग्नेय था।

(पाँचवाँ पुष्प २१-१०-६४ ई.)

शृंगी ऋषि

वायु मुनि वंश में ही महर्षि कुकुट मुनि हुए। कुकुट मुनि के सातवें बाबा महर्षि शृंगी जी थे, महर्षि शृंगी ऋषि अग्नि गौत्र में उत्पन्न हुए थे। (तेरहवां पुष्प ११-३-७२ ई.)

शृंगी ऋषि ने महात्मा शाण्डिल्य से पूछा कि समाज में रक्तभरी क्रान्ति क्यों आ जाती है? शाण्डिल्य ने उत्तर दिया कि जब मानव समाज की वाणी भ्रष्ट हो जाती है तो उससे हृदय में भ्रष्टपन आ जाता है। जब समाज के हृदय में अशुद्धवाद आ जाता है तो वही परमाणु वायुमण्डल में परिणत हो जाते हैं तथा उन्हीं के द्वारा मानव का अन्तःकरण बन जाता है। जब अशुद्ध परमाणु प्रबल हो जाते हैं तथा सत् परमाणु सूक्ष्म रह जाते हैं तो उस समय समाज में रक्तभरी क्रान्ति का प्रहार हो जाता है। जब इन्द्रियों का स्वार्थ संसार में इतना बलवान हो जाता है कि उसके स्वाद में ही मानव रमण करने लगता है। वाणी अशुद्ध हो या पवित्र हो इसका ध्यान नहीं रहता तो उस

समय जगत् में रक्तभरी क्रान्ति आ जाती है। (पच्चीसवां पुष्प १३-४-७१ ई.)

महर्षि दद्दड़

हमारे यहां महर्षि अंगिरस गौत्र में एक 'दद्दड़' नामक ऋषि हुए। वे महर्षि स्वयम्भू अदरथ के पौत्र तथा महर्षि चड़ान्त के पुत्र कहलाते थे। महर्षि दद्दड़ ने हिमालय की कन्दराओं में विराजमान हो करके साम शाखा से साम ज्ञान लेकर उस पर बहुत मनन किया और मनन के पश्चात् उसकी रचना की। दद्दड़ अश्वात समीत शाखाएँ अब समाप्त हो गयी हैं। शाखाओं का अभिप्राय यह है कि वेद की एक अमूल्य धारा को ले करके जैसे 'चिरायत्र विपरो चरित्र नामः।' वेद का शब्द है। उसी के आधार पर वह एक गान गाता है। उस शब्द की महिमा को गाता है, और गाता है वेदवाणी में। वेदवाणी को लेखनीबद्ध करने का नाम हमारे यहाँ शाखा कहलाता है। पुरातनकाल में ११२७ शाखाएँ मानी जाती हैं परन्तु वे मूल चार वेदों की हैं।

शृंगी जी ने दद्दड़ शाखाओं का अध्ययन बहुत पुरातनकाल में किया था। इसमें विज्ञान का बड़ा सुन्दर वर्णन है। विज्ञान के ऊपर दद्दड़ की बहुत बड़ी उड़ान रही है। उन्होंने कुछ वैज्ञानिक परीक्षण भी किए थे। उनकी एक विज्ञानशाला थी। हिमालय की कन्दराओं में उनकी एक चरित्रशाला थी। उस शाला में प्रायः अग्नि के ऊपर उनका अनुसन्धान रहता था, और आपो (जल) के ऊपर उनका अनुसन्धान रहा है। दोनों प्रकार के अनुसन्धान में वे पारंगत कहलाए गए। उन्होंने

अहल्या के सन्म्बन्ध में जो 'अहल्या वृति सूक्त' कहलाया है। उस अहल्या के सन्म्बन्ध में 'अहिल्या विशारद', नामक पुस्तक को लेखनीबद्ध किया था। जिसके तीन भाग कहलाते थे। एक-एक भाग एक सहस्त्र पृष्ठ की पोथी थी। (तेईसवां पुष्प १८-११-७३ ई.)

महर्षि दालभ्य, महाराज शिलक और प्रवाण

महर्षि दालभ्य, महाराज शिलक और प्रवाण तीनों मल्दालसा माता के पुत्र थे। तीनों का जीवन संसार में अग्रणी रहता था। (उन्नीसवां पुष्प १६-३-७३ ई.)

मल्दालसा अपने पुत्रों को लोरियों का पान कराते समय तीन शब्दों का प्रयोग करती थी। शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि। यह आत्मा अखंड है। हे बालक तू बुद्धिमान है, किस काल में भी अबुद्धि नहीं है। तू शुद्ध है, किसी भी काल में अपवित्र नहीं है। तू अखण्ड है, किसी काल में भी तेरा हृस नहीं होता। किसी काल में भी तू मृत्यु को प्राप्त नहीं होता पाँच वर्ष की आयु में मन की व्यापकता से, मन के आवेशों से बालक ब्रह्मवेत्ता बन गए। (छब्बीसवां पुष्प १५-११-७४ ई.)

उनका विचार-विनिमय हो रहा था। महाराज षिलक ने महर्षि दालभ्य से कहा कि महाराज! हृदय की जो अग्नि है समिधा है वह क्या है? उस समय महर्षि दालभ्य ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि मानव शरीर की जो अग्नि है वह तो आभा को कहा गया है। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण तीनों की समिधा बना

करके घृत में लय कर देते हैं। घृत क्या है? जैसे गौ-रूपी पशु के शरीर में नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने पश्चात् प्रायः शरीर में मन्थन होता रहता है और मन्थन किया हुआ जो अमृतमय दुग्ध होता है, उस दुग्ध को जब मन्थन करते हैं, तो घृत बन जाता है। औषधियों का जो सूक्ष्म रस है उसी का नाम घृत कहा गया है। इसी प्रकार यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तत्त्व है प्रकृति की जो नाना प्रकार की औषधियां हैं उनका जो सूक्ष्म तत्त्व है उसी का नाम मन है। मन का प्राण के साथ सन्निधान होता रहता है। जब मन और प्राण दोनों का सन्निधान होता है, सामग्री एकत्रित होती है। हम तीनों गुणों की सामग्री बना लेते हैं। उस समय मन और प्राण दोनों की आहुति दे करके, इस मानव शरीर का जो हृदय है और हृदय में जो एक महान् अग्नि प्रदीप्त हो रही है वह अग्नि ऐसे प्रदीप्त हो जाती है जैसे यज्ञशाला में घृत को प्रविष्ट करते ही अग्नि की ऊर्ध्वागति हो जाती है। इसी प्रकार उसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है यह प्रकृति का सूक्ष्म रहस्य माना गया है।

महर्षि प्रवाण और अन्य का जीवन महान् था तथा वे अनुसन्धान वेत्ता थे। (उन्नीसवां पुष्प ६-३-७३ ई.)

महर्षि याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने ब्रह्मचारियों से कहा कि मैं तप करने जा रहा हूँ, मेरी अनुपस्थितियों में आश्रम का अग्नि देवता तथा आपो देवता तुम्हारे ज्ञान के प्रतीक बन करके रहेंगे। इनका अन्वेषण करना

तथा उन पर विचार करना, तुम्हारा कर्त्तव्य होगा। जैसे जावालापुत्र को यज्ञशाला की अग्नि ही ज्ञान का प्रतीक बनी थी तथा कौशल ब्रह्मचारी के लिए तीन अग्नियां-गार्हपत्य, वैश्वानर तथा अरण्य, ज्ञान का प्रतीक बनी थीं। जब अपनी प्रथम पत्नी कात्यायनी से उन्होंने अपना तपस्या करने का विचार व्यक्त किया तो उसने कहा कि वह पत्नी बड़ी सौभाग्यशालिनी होती है जिसका पति, तपस्वी, त्यागी, महापुरुष बन जाता है। ऋषि यह सुनकर प्रसन्न हो गए तथा सोचा कि पत्नी वास्तव में विदुषी है। त्यागी और तपस्वी है। दूसरी पत्नी मैत्रेयी से जब तप करने का विचार व्यक्त किया तो उसने कहा कि- पत्नी का तो पति ईश्वर तुल्य होता है। आप जा रहे हैं, तो मेरा क्या बनेगा? ऋषि ने उपदेश दिया कि यह तुम्हारा विचार उचित नहीं है। पति कदापि ईश्वर नहीं होता क्योंकि न तो वह पत्नी के रुग्ण हो जाने पर उसे स्वस्थ्य कर सकता है और न मृत्यु के समय आयु ही दे सकता है। संसार में जो भी मानव कार्य करता है वह अपने लिए ही करता है। पत्नी-पति के लिए ही पत्नी है किन्तु अपने लिए पत्नी नहीं है। पति, पत्नी के लिए ही पति है, परन्तु अपने लिए पति नहीं है। पुत्र अपने माता-पिता के लिए तो पुत्र है किन्तु स्वयं अपने लिए पुत्र नहीं है। एक मानव सुन्दर भवन बनवाता है वह भवन उसके लिए भवन है किन्तु स्वयं भवन के लिए नहीं है, कोई मानव दुराचार करता है वह अपने लिए। संसार उसकी निन्दा करता है। क्योंकि वह संसार की सम्पदा होती है। एक राजा अपने राष्ट्र को सुन्दर बनाता है, पवित्र बनाता है। उसके कारण दूसरे प्राणी कर्त्तव्य में परिणत हो

जाते हैं। परन्तु वह राजा जो भी कर्म करता है वह अपनी प्रशंसा के लिए करता है और असली मानवता स्वयं मानव के साथ जाती है। यह आत्मा न किसी का पत्नी हैं न पुत्र। यह मानव शरीर तो नाना परमाणुओं से, आकुचन शक्ति से सुगठित हुआ है। इसमें चैतन्य आत्मा है। तत्वों का गुण मोह करना है। इसलिए इस चेतना के कारण नाना कृतियों में मोह की उत्पत्ति हो जाती है।

यह सुनकर मैत्रेयी भी संतुष्ट हो गई। अब ऋषि ने दोनों पत्नियों में सम्पत्ति के बटवारे की बात कही। तो उन्होंने कहा कि अब हमें भी सम्पत्ति नहीं चाहिए। हम भी तपस्विनी बनेंगी। ऋषि चले गए। उन्होंने वन में जाकर अपने मन का शोधन करने के लिए सिला अन्न को ग्रहण किया, जिसे कृषक खेतों में छोड़ जाते हैं। क्योंकि उस अन्न से मन बनता था और उस पर किसी का अधिकार नहीं था। इस प्रकार १२ वर्ष तक तपस्या करके उन्होंने शतपथ की रचना की। (बाईसवां पुष्प ११-११-७२ ई.)

एक समय याज्ञवल्कय कजली वनों में भ्रमण करते हुए, सिन्धु की घाटी के निकट पहुंचे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता तो थे ही। सर्वत्र भूमि पर उनकी यह विशेषता थी कि उनका तप नितान्त पूर्ण था। वहाँ महर्षि स्वाति, ऋषि भूकृतियाँ, चाक्रति ऋषि विराजमान थे। अर्द्ध भागा ऋषि को यह अभिमान था कि मैं ब्रह्मवेत्ता हूँ। परन्तु राजा जनक की सभा में एक बार उनके यश का ह्रास हो गया था, तो उन्होंने निश्चय किया कि मैं एक बार उनके यज्ञ का ह्रास करूंगा। अर्द्ध भागाऋषि ने अपना एक समाज बनाया। उन्होंने नियम बनाया

कि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ होना चाहिए। जब उन्होंने यह घोषणा कराई तो याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि तुम शास्त्रर्थ किसी राष्ट्रीय सभा में करोगे। उन्होंने कहा, नहीं, हम सिन्धु के तट पर ही विचार-विनिमय करेंगे। उनका विचार-विनिमय होने लगा। जब वे किसी ऋषि से विजय न हुए तो मैत्रेयी को लाया गया।

महर्षि याज्ञवल्क्य का भौतिक विज्ञान

महर्षि याज्ञवल्क्य जहाँ ब्रह्म विचारक तथा ब्रह्मवेत्ता थे, वहाँ उनकी विज्ञानशाला में लोकों की उड़ान उड़ी जाती थी। एक बार ब्रह्मचारी कवन्धी तथा गार्गी में वाद उत्पन्न हुआ कि वह आकाश गंगा क्या है? बात का निपटारा न होने पर दोनों ने मध्यरात्रि में याज्ञवल्क्य मुनि के शयन कक्ष में प्रवेश किया और उन्हें जागरूक करके अपने वाद को प्रस्तुत करते हुए कहा कि वेदमन्त्र में आ रहा था कि यह आकाश-गंगा लोकों का क्षेत्र है, क्या यह सत्य है? याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे ब्रह्मचारी! तुम मेरे यहां अध्ययन करते हो। तुम्हें यह प्रतीत है कि विद्यालय में जहां यज्ञशाला है वहाँ वैद्यशाला है और वहीं विज्ञानशाल है। इस विज्ञानशाला में यह यन्त्र विद्यमान हैं। इन यन्त्रों से दृष्टिपात करो। वह इन दोनों को प्रत्यक्ष दृष्टिपात कराने लगे। उन यन्त्रों में आकाश गंगाएं दृष्टिपात आने लगीं। उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम्हें प्रतीत है कि जब मैं एक आकाश गंगा में पहुँचा तो उसके सूर्यों की गणना करने लगा। मैंने जब ३ खरब ५ करोड़ ५०० सूर्यों की गणना की तो उसके पश्चात् मैंने ध्रुव-मण्डलों की गणना की। जब मैंने

२ अरब के लगभग ध्रुव-मण्डालों की आकाश-गंगा में गणना कर ली तो ज्येष्ठाय नक्षत्र में पहुँच गया। जब ज्येष्ठाय नक्षत्रों की गणना करने लगा तो जब एक अरब ज्येष्ठाय नक्षत्रों की एक आकाश-गंगा में गणना कर ली तो मौन हो गया और कहा कि यह तो परम्परा का अनन्त मण्डल है। जैसे परमात्मा अनन्त है वैसे उसका ब्रह्माण्ड, उसका स्वरूप भी अनन्त है। आगे उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! एक आकाश गंगा की गणना करने के पश्चात् मैंने आगे उड़ान उड़ी तो द्वितीय आकाश गंगा दृष्टिपात आने लगी। मैंने २७२ आकाश गंगाएँ अपने यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात की।

यह सुनकर दोनों ब्रह्मचारी मौन हो गए। मौन हो करके उन्होंने आगे कहा कि यह तो अनन्त मण्डल है। परन्तु अब क्या किया जाए। तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! यह मानव की परमाणुवाद की उड़ान है। यह हमारे यहाँ परमात्मा से उड़ी जाती है। यह तो विज्ञान का विशाल क्षेत्र है, परमात्मा की कृति वाला क्षेत्र है। यदि इसमें प्राणी को अभिमान हो तो अणुवाद के ही सहारे रमण करता हुआ यह लोकों को प्राप्त हो जाता है। परन्तु इसमें अभिमान की मात्रा प्रायः आ जाती है। क्योंकि यह अणुवाद का क्षेत्र प्रकृति का क्षेत्र है। जब हम इसके ऊपर अध्ययन करने लगते हैं, तो वेद का मन्त्र कहता है कि प्रत्येक मानव को तपस्वी बनना चाहिए। अब एक स्थान में तो विज्ञानवाद है, यन्त्रवाद है, चित्रवाद है, शब्दों के साथ में चित्रों की उड़ान है और एक स्थान में वेद का ऋषि कहता है कि हृदय को तपाना चाहिए। जितना हृदय तपा हुआ होगा उतना ही

मानव के जीवन में प्रकाश होगा। आगे ऋषि कहता है कि-वास्तव में विशाल विज्ञान से गूंथा हुआ जो वैदिक विचार है, उसको मानव को अपनाना चाहिए। मानव को अपने में धारण करते हुए, इस संसार से पार हो जाना चाहिए। यह मानव का कर्त्तव्य कहलाया गया है। इसी विज्ञान को विचार-विनिमय करते हुए प्रत्येक मानव यहाँ कर्त्तव्य पालन करने के लिए आता है। तपस्या में जाना ही मानव का कर्त्तव्य है। तप यह है कि प्रत्येक वस्तु मानव की सीमा में बद्ध रहनी चाहिए। (चौबीसवां पुष्प ६-५-७६ ई.)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने बहुत सूक्ष्म सी तपस्या की तथा सदाचार का प्रसार करने इस संसार में आए। परन्तु उनका कोई प्रभाव न हुआ। याज्ञवल्क्य ने पुनः उन मुकामों में जाकर तपस्या की, जहाँ मानव का जीवन उज्ज्वल और पवित्र बन जाता है, प्रकाशवान् बन जाता है। प्रकाशवान बन करके जब द्वितीय बार संसार में आए तो राजा जनक जैसों को सदाचारी बना दिया। (छठा पुष्प १-११-६७ ई.)

माता गार्गी

गार्गी के गुण : जब माता गार्गी सामगान तथा यजुंषि गाती तो उस समय गान में इतना मधुपन, इतना रस और ''अहिंसा परमोधर्मः'' की ऊँची तरंगें होती थीं कि मृगराज उनके शब्दों को ग्रहण करते थे। माता का हृदय प्रफुल्लित रहता था तथा हर्ष ध्वनि करता रहता था। एक समय शांडिल्य गौत्रमें उत्पन्न होने वाले कुमुत ऋषि उनके द्वार पर आ पहुँचे। वह नाना शंकाएँ लेकर उनके समीप

आये। गार्गी से बोले, हे देवी! हे ऋषि! मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे हृदय में कौन सी ऐसी तरंग है जिस तरंग से तुम मृगराज से भयभीत नहीं होती और मृगराज तुम्हें अपना भोजन नहीं बनाता। उस समय चक्राणि (गार्गी) ने कहा, प्रभु! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव का जो हृदय है उसमें भय उस काल में नहीं होता जब वह वेदों के प्रकाश में स्वयं पहुँच जाता है। वैदिक प्रकाश में रमण करने वाले और उसमें निहित होने वाले प्राणी को अन्धकार नहीं छाता। जितना हिंसकवाद है वह केवल अन्धकार कहलाता है जितना भय है वह सब अन्धकार कहलाता है। रात्रि को अन्धकार नहीं कहा जाता है। रात्रि तो मानव का जीवन बढ़ाने वाली है, वसुन्धरा कहलाती है। अपने में वसा लेती है अपने हृदय से हृदय का मिलान करा देती है। उस माता रात्रि को हम अन्धकार नहीं कहते। अन्धकार वह होता है जब मानव को भय होता है मानव अन्धकारमय वहीं होता है जिसके पास ज्ञान रूपी प्रकाश वेद रूपी प्रकाश नहीं होता। वह अन्धकार में रमण करता रहता है जिस प्रकार क्षत्रिय रणक्षेत्र में कवच को धारण करके निर्भय होकर संग्राम करता है इसी प्रकार जो वेद रूपी कवच को धारण कर लेता है। वेद का कवच ज्ञान और प्रकाश है, जो इस वाक्य को धारण कर लेता है उसके द्वारा हिंसक प्राणी उन तरंगों को छू नहीं पाता और छूता है तो वह ''अहिंसा परमाधर्मः'' बन जाता है इसलिए हमें वेद रूपी कवच को अपने में धारण कर लेना चाहिए। (तेईसवां पुष्प २९-७-७१ ई.)

माता गार्गी नग्न रहती थी। एक समय सामभूमि ऋषि ने कहा कि

हे देवी! हे ऋषे! तुम नग्न क्यों रहती हो। उस समय उन्होंने कहा, प्रभु! मैं नग्न नहीं रहती। उन्होंने कहा, तुम मुझे दृष्टिपात आ रही हो, नग्न रहती हो। तुम्हारे द्वारा कोई वस्त्र नहीं है। उन्होंने कहा, हे ऋषि! तुम कैसे मूर्ख बन गए हो। जो मानव ऋषि बन गया है, मुनि बन गया है, क्या वह भी ये नाना धागों के वस्त्रों को धारण करेगा। वह धागे के वस्त्रों को धारण नहीं करता। उसका वेद-रूपी आभूषण होता है, प्रकाश रूपी आभूषण होता है, जिस प्रकार धागे में मनके पिरोए रहते हैं। उनकी माला बन जाती है, उसी प्रकाश वेद-रूपी प्रकाश में वेद-रूपी अनुपम वस्त्र में जब मानव की इन्द्रियाँ आच्छादित हो जाती हैं, उसमें वह उनको धारण कर लेती है तो इन्द्रियाँ कोई नग्न नहीं रहतीं। नग्न प्राणी वह होता है जिसकी वस्त्र धारण करके भी मन की चंचलता नहीं जाती। वह प्राणी नग्न नहीं होता जिसके द्वारा ज्ञान, विवेक होता है, मानवता होती है तथा वेद-रूपी प्रकाश होता है। जब माता गार्गी ने यह उत्तर दिया तो सामभूमि ऋषि शान्त हो गए। उसने कहा, देवी! तुम अपने विषय में महान् हो। (तेईसवां पुष्प २९-७-७१ ई.)

महर्षि लोमश

महर्षि लोमश अपने साथ एक आसन रखते थे। सहस्त्रों वर्षों की आयु होने पर भी वे उसी आसन पर रहे। (तेरहवां पुष्प २३-८-६९ ई.)

महर्षि लोमश की माता सोमकृति भुंजुक की पत्नी थी। अपनी

माता से लोमश ने कहा कि..हे मातेश्वरी! मेरे लिए क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा कि तुम क्या चाहती हो देवी! तुम्हारी इच्छा क्या है? क्योंकि पिता की इच्छा भिन्न होती है और माता की इच्छा भिन्न होती है। उस समय माता ने कहा कि भगवन् मेरी इच्छा तो यह है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक तपस्वी होना चाहिए। क्योंकि जब माता का प्रिय बालक तपस्वी होगा तो माता को धन्यवाद प्राप्त होगा। आगे आने वाला समाज माता को आदर की दृष्टि से दृष्टिपात करेगा। जब उसके प्रति श्रद्धा और निष्ठा हो जाती है तो वास्तव में वह माता ही बन जाती है। इस प्रकार की धारा मैं चाहती हूँ। भुंजुक ऋषि ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ क्योंकि हमारा ब्रह्मगृह हे। ब्रह्म को जानने की परम्परा हमारे यहाँ प्रायः रही है। जब लोमश ने माता से कहा कि क्या आज्ञा है? तो माता ने आज्ञा दी कि तुम पुत्र तपस्वी बनो, तुम महान् बनो, अपनी आत्मा का शोधन करो। मेरे गर्भ से उत्पन्न होने का केवल एक ही अभिप्राय है कि तुम अपने जीवन में कलंकित न हो जाना। जब माता का यह निर्देश, माता की यह पवित्र भावना, बालक के हृदय में ओत-प्रोत हो जाती है तो बालक का अन्तःकरण माता के विचार से इतना पवित्र बन जाता है कि माता की आज्ञा का वह पालन करने लगता है। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

महर्षि लोमश ने १२० वर्ष तक कोई मिथ्या उच्चारण नहीं किया राष्ट्र में जाते तो राष्ट्र उनके वाक्यों को स्वीकार करता। राजा पर्वतों में जाते और कहा करते कि हे भगवन्! मुझे राष्ट्र के विधान की चर्चा

प्रकट कीजिए। (छठा पुष्प)

वशिष्ठ मुनि महाराज

वशिष्ठ मुनि महाराज को ब्रह्मवेत्ता कहा जाता है, उन्होंने अपने जीवन मे दो पुत्रों को उत्पन्न कर, अपनी पत्नी अरुन्धति से यह कहा था कि हमें केवल तीन पुत्र ही उत्पन्न करने हैं। अतः जीवन मे अरुन्धति और वशिष्ठ ने केवल तीन बार सहवास किया और तीन ही पुत्र उत्पन्न किए। इसके पश्चात् वे सुप्रजन्य ब्रह्मचारी रहे। जिसको इन्द्र नाम का ब्रह्मचारी भी कहा जाता है। उसको ब्रह्मवेत्ता कहा जाता है। (इक्कीसवां पुष्प २५-२-७२ ई.)

महर्षि वशिष्ठ मुनि के द्वार पर कामधेनु गऊ थी। जिसके दुग्ध का आहार करते थे। कामधेनु का अभिप्राय यह है कि जो मानव की कामनाओं की पूर्ति कर दे। वह कैसी गऊ थी। गऊ नाम विद्या का है, गऊ नाम पशु का भी है। परन्तु वह जो गऊ है वह तो इन्द्र से प्राप्त हुई है। इन्द्र नाम परमात्मा की उपासना से जो उन्हें कामधेनु प्राप्त हुई थी वह मन की कामनाओं की पूर्ति करने वाली थी। वह विद्या योग विद्या कहलाती है। उसको कामधेनु कहते हैं। पुरातन काल में जब श्रृंगी ऋषि जी वशिष्ठ जी से कहा करते थे कि महाराज कामधेनु का भान करा दें। तो उनका उत्तर यह था कि कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई है। देवताओं की धरोहर है, देवता उसी का दुग्धपान करते हैं। देवता इन्द्र के द्वार से कामधेनु प्राप्त करते हैं। (बारहवां पुष्प १३-२-७४ ई.)

महर्षि वशिष्ठ ने ८४ वर्ष तक कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं किया था। (छठा पुष्प १९ पृष्ठ अन्तिम कथा)

महर्षि वशिष्ठ ब्रह्म का चिन्तन करते थे। जब उनको ब्रह्मवेत्ता की पदवी प्राप्त होने लगी तो उन्होंने १२ वर्ष तक श्वांस के एक भी मनके को धागे से दूर नहीं होने दिया। १२ वर्ष का अभ्यास था वे ब्रह्मवेत्ता बन गए। गायत्री छन्दों को धारण करने वाले वशिष्ठ अपने राष्ट्र को त्याग देते हैं और राष्ट्र को त्याग करके ओ३म् रूपी सूत्र को पिरोने का उन्होंने प्रयास किया। मन का प्राण में प्रवेश करा दिया, तो परिणाम यह हुआ कि वे तपस्वी बने। तपस्वी बन करके तभी तो वशिष्ठ कहता है कि हे देवी! यह जो चन्द्रमा का प्रकाश है यह कोई प्रकाश नहीं है, विश्वामित्र की तपस्या के आगे। महर्षि विश्वामित्र का इतना तप है कि सहस्रों चन्द्रमा भी उनके तप को आच्छादित नहीं कर सकते। उनमें तप तो था परन्तु उनमें नम्रता की सूक्ष्मता थी। क्योंकि नम्रता में प्रभु है। नम्रता में ही देवता है। नम्रता ही मानव का सुलक्षण कर्त्तव्य है। जब नम्रता आ गई तो वे ब्रह्मऋषि बन गए। (सत्ताईसवां पुष्प २-३-७६ ई.)

महर्षि वशिष्ठ तथा पत्नी अरुन्धति को संस्कार के पश्चात् अध्ययन करते हुए जब १२ वर्ष व्यतीत हो गए। तो एक समय रात्रिकाल में अरुन्धति बोली कि प्रभु! हमारे यहाँ पितृ यज्ञ भी तो होना चाहिए। क्योंकि पितृ यज्ञ करना अनिवार्य है। महर्षि बोले कि जैसी तुम्हारी कामना सिद्ध हो। जैसे तुम पितृ यज्ञ कर सकती हो वैसे करो। जब दोनों ने पितृ यज्ञ किया तो उसके गर्भ में जरायुज की स्थापना हो

गई। माता अरुन्धति के कुछ समय पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ। जब वशिष्ठ अरुन्धति से बोले कि देवी! हमारा यह पितृयज्ञ पूर्ण हो गया है। अब हमें देवता बनना है। इसके लिए विचार-विनिमय होना चाहिए। (सत्ताईसवां पुष्प ४-३-७६ ई.)

महर्षि बाल्मीकि

महर्षि बाल्मीकि त्रेता काल में हुए, उनका जीवन भी अग्रगण्य था। युवावस्था में उनका जीवन अग्नेय था। बाल्यावस्था से युवावस्था तक उन्होंने नाना प्रकार के प्राणियों को महाकष्ट भी दिया। नाना प्रकार के प्राणियों को नष्ट करके उनका द्रव्य ले लेना तथा उसको अपने विधाता को अर्पित कर देता था तथा स्वयं आनन्द से रहना उसका कार्य था। बाल्यावस्था में उसका नाम रत्नाकर था। एक समय देवर्षि नारद उनके द्वार पर आए और भी कुछ ऋषि थे। नारद मुनि को उसने कहा कि अरे कौन सन्यासी जाता है?

नारद बोले क्यों भाई?

बाल्मीकि..महाराज! जो कुछ आपके द्वारा (समीप) है वह सब कुछ मेरे अर्पित कर दीजिए।

नारद..भाई यह क्यों लेते हो?

बाल्मीकि..महाराज मेरे माता हैं, पिता हैं, सन्म्बन्धी हैं, परिवार है उनकी उदर पूर्ति के लिए।

नारद..तो भाई तुम मनुष्यों को क्यों कष्ट देते हो? अपने अंगों से कुछ पुरुषार्थ करो।

बाल्मीकि..नहीं, महाराज यह भी तो पुरुषार्थ है, मैं इसी पुरुषार्थ को किया करता हूँ। दूसरों को नष्ट करता हूँ, द्रव्य लेता हूँ। आनन्द करता हूं।

ऋषि ने कहा..तो अच्छा एक काम करो कि अपने सम्बन्धियों से पता करके आओ कि कोई मुझे नष्ट करने लगे तो तुम मेरी सहायता करोगे या नहीं।

वह वहाँ से बहते हुए अपनी माता के द्वार पहुंचे और बोले, माता कोई अगर मुझे नष्ट करे तो तुम मेरी सहायता करोगी?

माता ने कहा..कदापि नहीं। जो पाप-कर्म करता है उसका साथी नहीं होता संसार में। यही वाक्य पिता ने कहा, यही वाक्य सम्बन्धियों ने कहा। यह वाक्य जान वह वहाँ से बहता हुआ चलकर ऋषि के द्वारे (समक्ष) आ पहुँचा।

ऋषि ने कहा, अरे क्या रहा? उसने कहा, उन्होंने कहा कि तुम्हारा कोई साथी नहीं।

देवर्षि नारद बोले, जब माता-पिता तुम्हारे साथी नहीं तो तुम इतना पाप ही क्यों करते हो? यह पाप मत करो। उस बालक को वैराग्य की भावनाएँ आने लगीं। उसने कहा, तो प्रभु! मैं क्या करूँ?

उन्होंने कहा, तुम राम (व्यापक प्रभु) का पूजन करो, भगवान का चिन्तन करो, तुम्हारा उत्थान होता चला जाएगा।

उस बालक ने परमात्मा का चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया और यहाँ तक सुना जाता है कि राम रमेति शब्दार्थों से उनके हृदय में वह अमूल्य प्रकाश हो गया, वह अग्नि जागृत हो गई, उसे ज्ञान होने

लगा। संसार का अज्ञान क्या है, आत्मिक विज्ञान क्या है, आत्मिक विज्ञान क्या है? यह सब ज्ञान उसके द्वारा ओत-प्रोत होने लगा। अब बालक ऋषि बनने लगा और आचार्यों ने उनका नाम ऋषि बाल्मीकि चुना। जो बाल्यवस्था में कुकर्म करने वाला हो और आगे ऋषि बन जाए इसी का नाम बाल्मीकि कहलाता है। वे महान् प्रकाण्ड बुद्धिमान, ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता कहलाने लगे, ऋषि में उनकी श्रुति होने लगी।

ऋषि बाल्मीकि ने दशरथ से लेकर राम तक के जीवन का निर्माण किया। जीवन चरित्र का क्या, जो कुछ उन्होंने किया सबका उस पोथी रूप में निर्माण किया। (पांचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

बाल्मीकि जब रत्नाकर से राष्ट्रीय यज्ञ में परिणत होने लगे तो उन्होंने नारद से कहा कि महाराज! आप ही मेरे कल्याण का मार्ग दे सकते हैं। मैं इस द्रव्य को नहीं चाहता। क्योंकि यह यज्ञ का द्रव्य है। अतः इसे ब्रह्मचारियों के मध्य रहना चाहिए। नारद ने उपदेश दिया कि तुम पंचक यज्ञ (पांचों ज्ञानेन्द्रियों का संशोधन) करो। लगभग एक वर्ष तक नारद ने उसकी आत्मा को शुद्ध कराया। इसके पश्चात् कहा कि तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम्हारा हृदय शान्त हो जाए। चित्त उस समय शान्त होता है, जब मानव में क्रोध न रहे, न ममता और न मोह, न अभिमान, इन सबके समाप्त हो जाने के पश्चात् तप ही तप आ जाता है। तप का तात्पर्य यह है कि प्राण की अग्नि में इन्द्रियों का तपना। इन्द्रियों को संयम में लाने वाला पुरुष इन्द्रियों को संयम में लाकर शुद्ध कर लेता है। इस प्रकार यह पंचक यज्ञ

करने वाला पुरुष गायत्री छन्दों का विवेकी बन जाता है। जब महर्षि बाल्मीकि विराजमान होकर गायत्री आदि छन्दों वाले ऋषि बने तो ये शास्त्रीय तथा वैदिकता में सुगठित कहलाए।

बाल्मीकि ने ९४ वर्ष तक इस प्रकार तप किया। सर्वप्रथम उन्होंने विचारा कि मैंने इस वाणी का कठोरता से व्यवहार करके इसको खो दिया। उसने प्रभु से याचना की कि प्रभु मेरी वाणी को ऊँचा बना। अध्ययन करते समय नारद आते तथा उनकी परीक्षा लेते। वह परीक्षा में उत्तीर्ण होते, इस प्रकार बाल्मीकि इतनी ऊर्ध्वगति वाले बने कि जो भी अतिथि आता, वे उसका स्वागत करते। दूसरों का हनन करके द्रव्य प्राप्त करने वाला अतिथियों की सेवा करने लगे। यही तो आत्मिक यज्ञ है। उसकी वाणी में कटुता के स्थान पर महत्ता आ गई, यह तप की महिमा तथा गायत्री मां की करुणा है तथा प्रभु की महत्ता है। आगे चल कर बाल्मीकि ने रामायण का साहित्य लेखनीबद्ध किया। जो साहित्य उनके समीप आता रहा वही लेखनीबद्ध किया जाता रहा। बाल्मीकि आयुर्वेद के महान् पण्डित थे। जो त्यागी और तपस्वी अन्न का पान करके औषधियों का पान करते हैं, वे आयुर्वेद के पण्डित हो ही जाते हैं। (इक्कसीसवां पुष्प पृष्ठ-६६)

महर्षि विभाण्डक

एक समय महर्षि विभाण्डक मुनि, शिलाद मुनि महाराज के पास पहुँचे और कहा कि महाराज मैं अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को जागरूक करना चाहता हूँ तो उन्होंने बताया कि तुम अग्न्याधान

करो। उन्होंने १२ वर्ष तक यज्ञ किया। उसके पश्चात् उन्होंने एक वर्ष तक अन्न न लेकर केवल सूक्ष्म आहारों का पान किया। कुछ वृक्षों के पत्तों का रस बनाकर उनका पान किया फिर वायु के जो परमाणु होते हैं उसमें से पोषक तत्त्व प्राण और मन के द्वारा पान करना आरम्भ किया तो उनकी दोनों कृतिकाएँ जागरूक हो गईं। ब्रह्मरन्ध्र में उनकी प्रतिभा जागरूक हो गई तो उन्हें करोड़ों जन्मों के संस्कार जागरूक हो गए। (बाईसवां पुष्प १३-२-७४ ई.)

महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज श्रोत्रिय कहलाते थे। हमारे यहाँ नाना ऋषि हुए हैं एक श्रोत्रिय होता है, एक मन्त्र द्रष्टा होता है, एक वेदोक्त ज्योतिमयी होता है, एक गोत्रीय परम्परा से ही महान् विज्ञानमय होता है। परन्तु महर्षि विभाण्डक श्रोत्रिय कहलाते थे। इनकी परम्परा थी श्रवण करना, मानो श्रोत्रों से ही श्रवण करने मात्र से ही स्मरण शक्ति में एक महान् ज्योति प्रवेश हो जाती। श्रोत्रिय का अभिप्राय यह कि यहाँ जो भी महान बुद्धिमान प्रणाली में होता वह श्रोत्रिय कहलाता था। मानो मानव उच्चारण कर रहा है और उच्चारण करने मात्र से ही उसके श्रवण शक्ति के जो तन्तु हैं वे जागरूक हो जाते हैं। इतनी मेधावी बुद्धि कहलाती है और वह चिन्तन करने मात्र से वह योगश्चितवृत्तियों में रमण करने वाले बन जाते हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज श्रेत्रिय ऋषि होने के नाते नाना ऋषिवर उनके आश्रम में आ पहुंचे, नाना ऋषियों का आगमन हुआ। आगमन होने के पश्चात् उन्हें आसन दिया गया। अपने-अपने आसन पर विद्यमान हो गए। कुछ श्रोत्रिय विद्वानों के आसन भिन्न रहते थे, और

जो मन्त्र द्रष्टा थे उनकी एक पंक्ति भिन्न थी, और जो वेदोमयी ज्योति ऋषि थे, उनकी पंक्ति भिन्न थी। जो विज्ञान पर अध्ययन करने वाले उनकी पंक्ति भिन्न तो ऋषि आश्रम में चार पंक्ति लग गईं। अब उसमें अध्यक्षता का निर्वाचन किया गया। ऐसी ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में ऐसे विज्ञानभय, श्रोतिमय, ज्योतिर्मय और मन्त्रदृष्टाओं में एक निर्वाचन होता है और उसका निर्वाचन किया जाता है जो चारों विषयों को अच्छी प्रकार जानता हो।

उसी सभा में महर्षि उद्दालक मुनि महाराज विद्यमान थे। हमारे यहाँ उद्दालक गौत्रवशिष्ट माना जाता है। उद्दालक तो गौत्रकहलाता था परन्तु विरन्तकेतु उद्दालक कहलाते थे। विरन्तकेतु उद्दालक उस सभा में विद्यमान थे। तो महर्षि विरन्तकेतु उद्दालक से प्रार्थना की गई कि महाराज आप चारों विषयों को जानते हैं, आप यहाँ पधारिये और अपने आसन को ग्रहण कीजिए। तो जब वह आसन को ग्रहण करने लगे तो सबसे प्रथम श्रोत्रिय ने विरन्तकेतु से एक प्रश्न किया और श्रोत्रिय ने कहा महाराज! अपने इस आसन को ग्रहण किया है, श्रोत्रिय किसे कहते हैं? तो उद्दालक कहते हैं, हे श्रोत्रिय ऋषि! श्रोत्रिय वह कहलाते हैं जिनके श्रोत्र पवित्र होते हैं, जिनकी घ्राण शक्ति का और श्रोत्रों दोनों का एक तारतम्य होता है। दोनों का एक तारतम्य होते हुए श्रवण करता है। उसकी स्मरण शक्ति प्राण के द्वारा चित्त से जिसका समन्वय रहता है। मानों वाक्य आते रहते हैं और श्रोत्रिय बनते रहते हैं। मानो श्रात्रियता में उत्तरायण, दक्षिणायन दोनों प्रवृत्तियाँ होती हैं और प्राचीदिग् होती है चारों आभाओं को जानने

वाला वह श्रोत्रिय कहलाता है।

हे ब्रह्मचारी! हे ब्राह्मण! हे श्रोत्रिय ब्राह्मण! तुम श्रोत्रिय कहलाते हो, तुम्हारा कोई गौत्रनहीं है। श्रोत्रिय केवल वह कहलाता है जिसका मनोवल, बुद्धिबल, स्मरण शक्ति और चारों प्रकार की बुद्धियों की क्षमता केवल श्रवण करने मात्रा से ही ग्रहण कर लेता हो। यह गुरु परम्परा कहलाती है। वह गुरु परम्परा है, वह पोथी से अध्ययन नहीं कराता, वह तो केवल वाणी से श्रोत्रा तक शब्दों को पहुँचाता है और उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह शब्द बना और उसने स्वतः ग्रहण कर लिया। वह श्रात्रिय कहलाता है। श्रोत्रिय का अभिप्राय कि उसी के द्वारा योगाभ्यास करता है। उसी के द्वारा वह एक वेदमन्त्रा की गम्भीरता पर मनन करता है, चिन्तन करता है, अध्ययन करता है। अध्ययन करने की जो उसकी शैली है वह शान्त मुद्रा में चैतन्य देव से अपनी वार्ता प्रकट करता है तो वह श्रोत्रिय कहलाता है। तो तुम श्रोत्रियत्व को जानना चाहते हो। तुमने मुझे इस आसन को प्रदान किया है। मैं बड़ा सौभाग्यवाली हूँ जो मैं आज इस आसन पर आया और आसन पर विद्यमान हो करके श्रोत्रिय सभा में विद्यमान हूँ।

मेरे प्यारे! जब उन्होंने श्रोत्रिय को उत्तर दिया तो वह संतुष्ट हो गए और मौन हो गए। मौन हो जाने के पश्चात् मन्त्र दृष्टा ने कहा प्रभु! आप जो वेद के आसन पर विद्यमान हैं मन्त्र दृष्टा किसे कहते हैं? क्योंकि मैं मन्त्रा दृष्टा हूँ और मैं मन्त्रा दृष्टा के सन्म्बन्ध में जानना चाहता हूँ। उस समय विरन्तकेतु उद्दालक कहता है, हे मन्त्रा दृष्टा!

मन्त्रा द्दष्टा उसे कहते हैं जो मन्त्रा का साक्षात्कार करता है, वह उसमें ओत-प्रोत है। जैसे एक वेदमन्त्रा है उसका जो एक-एक अक्षर है उस अक्षर के ऊपर मानो जितनी भी मानव शरीर में नस-नाड़ियाँ होती हैं, मानो जितने भी तत्त्व इसमें कार्य करते हैं इन प्रत्येक तत्त्वों से उस शब्द का मिलान करता है और उसी रूप से वह व्याख्या करता है। जैसे 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियाँ कहलाती हैं। इसी प्रकार मानव के जीवन में तीन प्रकार की आभाएं होती हैं। इन आभाओं को द्दष्टिपात कराता है भूर्भवः स्वः इनका मिलान कराना जानता है, इनका साक्षात्कार जानता है, उसमें इतना व्यापक बन जाता है कि वह तीनों व्याहृतियों का द्दष्टा बन जाता है।

द्दष्टा किसे कहते हैं? जिसके एक-एक शब्द के गर्भ में जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है, उसमें जो योग विद्यमान है उसके पिछले भाग के आंगन को वह जानता है मानो वह मन्त्र द्दष्टा कहलाता है।

आज मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। यह गम्भीर क्षेत्र है परन्तु इसके ऊपर बहुत अध्ययन की आवश्यकता रहती है। आज वेद का ऋषि यह कहता था कि आज मैंने एक प्राण की विवेचना की है। वेदों में एक प्राण आता है, अपान शब्द आता है, व्यान आता है, समान आता है और उदान आता है ये पाँच प्राणों का वृत आता है। इसकी धारा आती रहती है और वह जो धारा है, जैसे अपान आया तो अपान के गर्भ में क्या है? उस गर्भ को जानना, वह जो वेदमन्त्र में अपान शब्द आया है उसका वह द्दष्टा बन गया है। जैसे प्राण है, अपान है, उदान, समान है इनके गर्भ में जो है उसका जो

साक्षात्कार जानता है वह मन्त्र दृष्टा कहलाता है। प्रत्येक वेदमन्त्र जिसको वह जानता है उसके गर्भ को जानने वाले उसको मन्त्र दृष्टा कहा जाता है। वह दिव्य ज्योतिमयी कहलाता है। वह ब्रह्मा के अन्तिम चरण में जा करके मौन हो जाता है। क्यों? वह उसकी व्याख्या करता हुआ दूर चला जाता है, विचार करने लगता है और उसमें रत हो जाता है।

वेद का ऋषि कहता है कि वह मन्त्र दृष्टा कौन है, जो मन्त्रणा करता है? जो उसके गर्भ में प्रवेश करता है वह मन्त्र दृष्टा कहलाता है। इतना कह करके ऋषि मौन हो गए और मन्त्र दृष्टा उसके सूक्ष्मतम रहस्य को जान गए।

उसके पश्चात् वेदों में ज्योति, वह वेदोमयी ज्योति को जानने वाले ऋषि एक पंक्ति मे विराजमान थे। कहते हैं कि महाराज! आप हमारे अध्यक्ष हो, हमारे सभापति हो, हम जानना चाहते हैं कि ''मन्त्रेमय ब्रह्म ज्योति'' किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! वे बोले कि वेदोमयी ज्योति दृष्टा, ज्योति वृताः वे कहलाते है जो वेदों में ज्योति है उस ज्योति को जानते हें। वास्तव में द्वितीय रूपों में वेद नाम ही ज्योति का है। क्योंकि ज्योति कहते हैं विद्या को। उसके हृदय में एक महान् कान्ति होती है, उस महान् कान्ति के ऊपर वह त्री विद्या में रमण करने वाला होता है। त्री विद्या कौन सी है? ज्ञान, कर्म और उपासना कहलाती है। इन त्री विद्याओं को जानने वाला और इनमें जो एक ज्येति है उसके उपरान्त जो मानव को ज्योति प्राप्त होती है वह वेदोमय ज्योतिमय कहलाती है। इन त्री विद्याओं को जानने वाला

और इनमें जो एक ज्योति है उसके उपरान्त जो मानव को ज्योति प्राप्त होती है वह वेदोमय ज्योतिमय कहलाता है। कहते हैं वह ब्रह्म पद को प्राप्त होता है। वह ब्रह्म के आंगन को जानता है। क्योंकि ज्ञान, कर्म और उपासना जब तीनों में मानव रत हो जाता है तो उसे एक ज्योति के सिवाय और कुछ दृष्टिपात नहीं आता, वह ज्योति में ही रत रहता है। उसका प्रत्येक अंग ज्योर्तिमय दृष्टिपात आता है। उसका प्रत्येक क्रिया-क्लाप ज्योतिमय दृष्टिपात आने लगता है। तो वह वेदोमय ज्योति कहलाता है। वेदोमय ज्योति वाला जो पुरुष है वह महान् कहलाता है, वह महत्ता में रमण करने वाला है। वह अमूल्य ज्योतियों में प्रवेश करता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में वेदोमय, ज्योतिर्मय बनना है क्योंकि ज्योतिर्मय बन करके प्रभु से वार्ता प्रकट करता है। प्रभु के अन्तिम चरण को जानने के लिए सदैव तत्पर रहता है। तो ऋषि उद्दालक यह वाक्य उच्चारण करके मौन हो गए और मौन होने के पश्चात् वैज्ञानिकों की जो पंक्ति थी वे कहते हैं कि महाराज! इन तीनों को विज्ञान में समावेश कर दीजिए क्योंकि यहाँ वैज्ञानिक विद्यमान हैं। हम जानना चाहते हैं कि विज्ञान किसे कहते हैं? महर्षि विरन्तकेतु उद्दालक मुनि महाराज कहते हैं, हे ब्रह्मचारियो! हे ब्रह्मवेत्ताओ! हे श्रोत्रियो! हे वेद दृष्टामय!

हे वेदोमय उदाति अस्ताः! विज्ञान दो प्रकार की आभा में निहित रहता है, वेदों का ब्रह्मकृत्य है। परन्तु विज्ञान दोनों प्रकार की धाराओं

में विद्यमान रहता है। एक विज्ञान तो वह जो एक सूत्र में पिरोया हुआ यह ब्रह्माण्ड जो ऋत् में दृष्टिपात आता है। कल के वाक्यों में ऋत् और सत् की मैं कुछ विवेचना कर रहा था और तुम्हारे समीप यह उच्चारण कर रहा था कि वह ऋत् और सत् क्या है? जितना भी यह ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरवाद तुम्हें दृष्टिपात आता है, जितना भी परमाणुवाद है, तरंगवाद है वह एक सूत्र में पिरोया हुआ है और उस सूत्र का नाम है ऋत्। वह ऋत् में पिरोया हुआ है और एक लोक दूसरे लोकों की परिक्रमा कर रहा है वह ऋत् कहलाता है। जितना भी प्रकृतिवाद है, प्रत्यक्षवाद है वह सर्वत्र ऋत् में पिरोया हुआ है। वह ऋत् में रहने वाला है। उस ऋत् में प्रवेश करने के पश्चात् वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है और निर्माण करता हुआ उन यन्त्रों पर विद्यमान हो करके वह लोक-लोकान्तरों की जो ऋत् से आभायित होते हुए तरंगें हैं उन तरंगों में रत हो करके लोक-लोकान्तरों में सहवास करता है, वह रमण करता है, वह उसमें अपना यातायात बना लेता है।

नाना ऋषि हुए है, जिन्होंने यातायात को बनाया है। नाना वैज्ञानिक हुए हैं जिनका लोकों से घनिष्ठ सन्म्बन्ध रहा है और घनिष्टताएँ रहते हुए उन्होंने अपने यातायात को बनाया है। उसी में वह गमन करते रहते थे। तो नाना वैज्ञानिक अपनी आभाओं में निहित रहे हैं और वैज्ञानिकता में रमण करने वाले वैज्ञानिक कहलाते हैं। द्वितीय वैज्ञानिक वे होते हैं जो इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने मानवीय ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात करने लगते हैं। वह सत् में रमण करने

वाले होते हैं। क्योंकि सत् में प्रभु है, सत् में आत्म तथ्य कहलाता है, वह सत् ही सत् कहलाता है। जहाँ वह जाता है वहाँ उसे सत् ही दृष्टिपात होता है। वह सत् ही सत् कहलाता है। वह द्वितीय विज्ञान है। वह योगेश्वर कहलाता है। जो योगियों में रमण करने वाला, योग में गति करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध कर रहा है अथवा उन्हें समेट रहा है, अपने में धारण कर रहा है तो वह जो योगेश्वर बनने जा रहा है, उस योगेश्वर की जो प्रबल गति है, अभ्यागति है, अभ्यास में रमण करने वाला है। वह योगश्चित वृत्तियों को निरोध करता हुआ लोक-लोकान्तरों के पिछले भाग में सत् ही सत् में रमण करता है। क्योंकि वह सत् में पिरोया हुआ है। इसलिए वह जो दोनों प्रकार का विज्ञान है वह ऋत् और सत् दोनों में पिरोया हुआ है। इसलिए वह वैज्ञानिक कहलाता है विज्ञान में रमण करने वाला महान् वैज्ञानिक बन जाता है। इन दोनों विषयों को समेट करके ज्ञानमय बनता हुआ विज्ञान में प्रवेश करता है।

ऋषि विराट

आदि ब्रह्मा के पुत्र का नाम विराट था। (पन्द्रहवां पुष्प कथा)

महर्षि विश्वामित्र

महाराज विषामित्र के मन में एक भाव था कि अब मैं ब्रह्मर्षि बनूं। परन्तु ब्रह्मर्षि बनने के लिए जब तक गुरु वशिष्ठ ब्रह्मर्षि की उपाधि न दे तक तक कोई भी ब्रह्मर्षि नहीं कहला सकेगा। वह गुरु वरिष्ठ के

आश्रम में आए। अस्त्र -शास्त्रों से युक्त हैं, तपस्वी जीवन है। परन्तु जब महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि न कह कर राजर्षि ही कहा तो उन्होंने गुरु वशिष्ठ के सर्वपुत्रों का विनाश कर दिया। उसके पश्चात् जब अगले दिवस आए तो उस दिन गुरु वशिष्ठ ने उन्हें राजर्षि ही कहा। जब राजर्षि कहा तो विश्वामित्र ने निश्चय कर लिया कि यह ब्राह्मण अभिमान में है, आज मैं इसे नष्ट करूँगा। रात्रिकाल में वह गुरु के आश्रम में एक स्थान पर शान्त मुद्रा में विराजमान हो गए। उस दिन पूर्णिमा का दिवस था। वशिष्ठ मुनि की पत्नी अरुन्धती बोली, भगवन्! चन्द्रमा की कैसी कान्ति है, किसी द्वितीय की नहीं होगी, बड़ा शान्तिमय प्रकाश है। वशिष्ठ मुनि ने कहा, हे देवी! यह प्रकाश तो बहुत सूक्ष्म प्रकाश है। महाराज विश्वामित्र की इतनी तपस्या है कि यदि नाना चन्द्रमा मिलकर प्रकाश दें तो उसके बराबर नहीं हो सकेगा। जब ऐसा कहा तो अरुन्धति ने कहा, प्रभु! उन्होंने आपके पुत्रों को नष्ट कर दिया और जब वे आपके समीप आते हैं तो आप उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहते, आपकी हानि करते चले जा रहे हैं। आप उनके मुख पर उनकी प्रशंसा क्यों नहीं करते। उन्होंने कहा, देवी! मैं क्या करूँ? जब वह रूप-रेखा ऐसी बनाकर आते हैं कि उन्हें राजर्षि कहना ही उपयुक्त होता है, उनके हृदय में वह नम्रता अब तक नहीं आई। प्राणी तपस्या कर लेता है और यदि तपस्या करने के पश्चात् नम्रता नहीं आई, वेशभूषा उसके अनुकूल नहीं होती तो उसे वह पद कदापि नहीं प्रदान करना चाहिए। उससे मर्यादा की हानि होती है। संसार में मेरे पुत्र नष्ट हो गए, पुत्र और उत्पन्न हो सकते हैं,

परन्तु मर्यादा भंग होने के पश्चात् उत्पन्न नहीं होती। आज मर्यादा का होना बहुत अनिवार्य है और पुत्र न हो, परन्तु जो मेरा मिथ्या का वाक्य है वह अन्तरिक्ष में मेरे विनाश का कारण बन सकता है। जब गुरु वशिष्ठ ने ऐसा कहा तो विश्वामित्र का हृदय उदार बन गया और उसी के प्रभाव से उसने कहा कितना देवता है। वह अस्त्रों-शस्त्रों को त्यागकर ऋषि के चरणों में नतमस्तक हो गए और कहा प्रभु मुझे क्षमा करो मैं बहुत पापी हूँ, मैंने आपके सब पुत्रों का विनाश कर दिया। उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं। इन सबका तो विनाश होना ही था और तुम्हें भी नम्रता में आना था परन्तु मुझे मिथ्या वाक्य उच्चारण नहीं करना था।

जब आत्मा में ज्ञान रूपी भोजन होता है, वह मानव विवेकी होता है और संसार के वाक्य को जान करके व्यापकता को स्थापित कर देता है। (आठवां पुष्प ११-५-६७ ई.)

महर्षि पिप्लाद

यह करकेदु मुनि के पुत्र तथा वायु मुनि के पौत्र थे। इनकी माता का नाम ऊषा था। इनका जीवन अग्नेय था। जिस मानव के हृदय में ज्ञान-विज्ञान और मानवत्व होता है उसका जीवन अग्नेय कहलाता है। (पांचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

महर्षि पिप्लाद की पत्नी का नाम सुरेखा था। वह शांडिल्य गौत्र में जन्मी थी। जब उनका विवाह संस्कार हुआ तो महर्षि सर्वप्रथम पत्नी से बोले, हे देवी! हम यज्ञ करने के लिए आए हैं। हमें देव यज्ञ और

पितृ यज्ञ करना है। उसके लिए सामग्री चाहिए। अतः वे भयंकर वनों में नाना प्रकार की सामग्री एकत्रित करने गए। यजमान का जो तप था उसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ होने के पश्चात् उनकी आन्तरिक स्थिति पूर्णता को प्राप्त हो गई। यजमान इतना निष्ठावान था कि केवल पति-पत्नी का सन्म्बन्ध पुत्र याग करने को ही बना। (इक्कीसवां पुष्प ४-३-७६ ई.)

ऋषि पनपेतु

पनपेतु ऋषि ने १२ वर्ष तक भयंकर वन में वनों की औषधियों को पान करके योगाभ्यास किया था।

महर्षि भारद्वाज

महर्षि भारद्वाज परमाणुवाद के वैज्ञानिक थे। उनका-अनुसन्धान दिन-रात चलता रहता था। इस प्रकार के अनुसन्धान भी करते थे कि यह रात्रि क्यों और किन कारणों से होती है? जब महापुरुष का हृदय स्वच्छ हो जाता है तो उसे रात्रि भी दिवस ही प्रतीत होती है। क्योंकि प्रभु का राष्ट्र प्रकाशमय होता है वहाँ रात्रि नहीं होती है। (चौदहवां पुष्प २६-३-७६ ई.)

महर्षि भारद्वाज भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान का समन्वय करना जानते थे। वे वाणी तथा मन के सन्म्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते रहते थे। आध्यात्मिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान का समन्वय करने की उनकी प्रबल इच्छा रहती थी। वे संसार को वह मार्ग देना चाहते थे जिससे आध्यात्मिक विज्ञान तथा

भौतिक विज्ञान का समन्वय होता चला जाए। वह जहाँ भौतिक विज्ञान के इतने प्रकाण्ड पण्डित थे कि नाना-नाना परमाणुओं का मिलान करना जानते थे। चन्द्र, मंगल, शुक्र आदि नाना-नाना लोक-लोकान्तरों में जाना जानते थे, वहीं आत्मा के दर्शन की विशालता का भी उसके यहाँ परिचय प्राप्त होता था।

एक समय महर्षि सोमकेतु ने भारद्वाज से कहा कि प्रभु आपने हमें वाणी की जितनी गणना कराई है क्या उतना ही यह जगत है। इस पर भारद्वाज ने कहा था कि यह मेरा कोई निर्णय नहीं है। आगे आने वाले महापुरुष मुझसे भी अधिक निर्णय कर सकते हैं। मैं तो जितना जानता हूँ उतना ही निर्णय दे सकता हूँ।

ऋषियों का हृदय विशाल तथा निरभिमानी होता है। उनके हृदय में कितनी महत्ता होती है कि वे प्रभु को अपने को समर्पित कर देते हैं वास्तव में प्रभु को समर्पित वही कर सकता है जो प्रभु के मण्डल को जानने के लिए जिज्ञासु बना करता है। तो प्रभु निकट रहते हैं। (पन्द्रहवां पुष्प १२-४-७१ ई.)

महर्षि भारद्वाज का आश्रम भयंकर वनों में था। वहाँ सूक्ष्म सा प्रबन्ध था तथा एक सुन्दर यज्ञशाला थी, उसमें वह नित्यप्रति यज्ञ करते तथा अपने शिष्यों को निर्माणशाला में वैज्ञानिक परमाणुओं के सन्म्बन्ध में कुछ वाक्य प्रकट करते रहते थे। वह एक महापुरुष थे अतः उनके द्वारा प्रतीत क्रियाओं का क्रियात्मक होता रहता था। एक बार सूर्यकेतु वन्दन मामकेतु राजा के आश्रम में पहुँचे और नतमस्तक होकर कहा कि मैं कुछ द्रव्य आपको अर्पित करना चाहता हूँ।

भारद्वाज ने कहा, क्यों देना चाहते हो?

राजा ने कहा आपकी उदरपूर्ति तथा साधना के लिए। भारद्वाज ने कहा जो प्रारब्ध है वह हमसे दूर नहीं जाएगा। हम यहाँ नाना प्रकार की औषधियों का पान करते ही रहते हैं। जिससे हमारे उदर की पूर्ति होती रहती है। राजा ने फिर भी बहुत सा धन उन्हें दे दिया। निष्कर्ष यह है कि भयंकर वनों में भी राजा-महाराजा अपनी आत्मिक शक्ति के लिए ऋषियों के पास चले ही जाते हैं। परन्तु आत्मिक शक्ति उन्हें तभी प्राप्त होती है जब उनका स्वयं का मस्तिष्क भी ऊँचा रहे तथा उनमें किसी प्रकार की विडम्बना न हो। अतः हमें यौगिक परम्परा को लाना ही चाहिए। (बीसवां पुष्प १९-७-७० ई.)

महर्षि भारद्वाज विज्ञान में बहुत पारंगत थे लंका में जितना विज्ञान था वह उन्हीं के द्वारा था। रावण का पुत्र नरान्तक उनका शिष्य था। (पन्द्रहवां पुष्प ३-८-७१ ई.)

महर्षि भारद्वाज जी मुनि की ५०० वीं पीढ़ी के राजा जो श्रृंगी के युग में हुए, ने बताया कि वह व्यष्टि और समष्टि को जानते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय में व्यष्टि का व्यापार होता है। इसी के आधार पर उसे ब्रह्मवेत्ता कहा जा सकता है। (चौदहवां पुष्प ८-११-६९ ई.)

भारद्वाज जैसा वैज्ञानिक उस काल में नहीं था। जिनको निष्ठा, जिनका कार्य केवल अनुसन्धान ही करना था। वह नित्यप्रति योगाभ्यास करते, उनका अपने जीवन का एक क्रम था। सर्वप्रथम प्रातःकाल में अपने आसन को त्यागते। रात्रिकाल में जब भी निद्रा से उठ जाते थे निद्रा से दूर होते ही उसी काल में गायत्रिणि छन्दों का

पठन-पाठन करते थे, चिन्तन करते थे। उनकी धातुओं को जानना उनका कर्त्तव्य था। प्रातःकाल होता, अपने कार्यों से निवृत्त हो करके उसके पश्चात् उनका ब्रह्मयज्ञ चलता था। ब्रह्मयज्ञ के पश्चात् देव यज्ञ करते थे। देव यज्ञ करने के पश्चात् भोजन इत्यादि का पान के पश्चात्, वे अपनी अनुसन्धानशाला में परमाणुवाद का निरीक्षण करते थे। यन्त्र बनाते, यन्त्रों का निर्माण चलता रहता था। वे सब यन्त्र भारद्वाज ने महाराज राम को अर्पित कर दिये थे। जब रावण से उनका संग्राम हुआ था। राजा रावण के यहाँ भी विज्ञान के यन्त्र थे क्योंकि रावण को भी महर्षि भारद्वाज ने यह शिक्षा प्रदान की थी। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

भारद्वाज का जो वंश है हरितत गौत्र से उसका निकास है और हरितत गौत्र का निकास दद्दड़ से है। दद्दड का निकास अग्नि ऋषि गौत्र से है। अग्नि ऋषि का गौत्र अथर्वा से माना जाता है। हमारे यहाँ परम्परा से ब्रह्मवेत्ता होते चले आए हैं। जहाँ आध्यात्मिक विज्ञान को मानते हैं वहाँ भौतिक विज्ञान में भी पारंगत थे। यह उनका मौलिक कर्त्तव्य रहा है। (सत्ताईसवां पुष्प ६-५-७७ ई.)

जिन भारद्वाज जी ने राम-लक्ष्मण को अस्त्र -शस्त्र दिये थे उनका नाम रेंगनी भारद्वाज था। (तेईसवां पुष्प ११-८-७० ई.)

महर्षि भुंजु

महर्षि भुंजु सदा विज्ञान में परिणत रहते थे। वह शांडिल्य गौत्र में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम सोपंग ऋषि था। ऋषि परम्परा

में, ऋषियों के विचारों तथा भूमिका में ही मानवता की प्रतिष्ठा रहती थी। ऋषि सदैव ज्ञान-विज्ञान के ऊपर बल देते रहे हैं। कहीं अणु का विज्ञान, कहीं परमाणु का ज्ञान-विज्ञान, कहीं अणु है तो कहीं विभू पर विचार हो रहा है। सोचते हैं कि आत्मा अणु है या विभू है। जब इस प्रकार विचार-विनिमय होकर हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होने लगता है तो मस्तिष्क में नवीन वार्ताएं उत्पन्न होने लगती हैं। (चौदहवां पुष्प २-११-७० ई.)

भुंजु के पुत्र अश्विनी कुमारां को उनकी मां शनेनकेतु ने स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न होने वाली मुण्डिका तथा स्वाकृति नाम की औषधियों का आसन बनाकर बाल्यकाल में उस पर विश्राम कराया था। उसे जो संस्कार बाल्यकाल में दिये गए उनमें उद्बुधता हो गई। (बीसवां पुष्प २९-३-७३ ई.)

महर्षि भुंजु जिनके पिता त्रेतकेतु ऋषि हुए हैं, त्रेतकेतु ऋषि ब्रह्मवेत्ता भी थे जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ विज्ञानवेत्ता भी थे। त्रेतकेतु एक समय अपने आसन पर विराजमान थे, एक वेदमन्त्र उसके स्मरण आ गया ''चित्रम् सनभ्कन घृष्म यस्व्रतः यथा चन्द्रही मृत लोकाः'' यह वेद का मन्त्र जब स्मरण आ गया तो इस पर अनुसन्धान करने लगा। भयंकर वन में, शान्त मुद्रा में, नाना सामग्री एकत्रित है। विचारने लगे कि यह वेदमन्त्र क्या कहता है? त्रेतकेतु ऋषि ने उड़ान उड़नी प्रारम्भ की और उड़ान उड़ते हुए उनके द्वारा भौतिक यन्त्र भी विराजमान थे। वे भौतिक विज्ञान वेत्ता भी थे। हिमालय की कन्दराओं में उनकी एक अनुसन्धानशाला थी। उस अनुसन्धानशाला में विचार-विनिमय करने

लगे। वह चित्रावलियों में चित्रों को ही दृष्टिपात करने लगे तो वे याग करने लगे। परन्तु जब वेद का मन्त्र स्मरण आया तो वे विरह में रमण करने लगे। मानो जब याग कर रहे तो समिधा उनके समीप थी। उस समिधा को ले करके जब उन्होंने उस अग्नि का स्वाहा किया तो वह समिधा का साकल्य जब ऊर्ध्वगति को रमण करने लगा तो इसमें एक विवेकी ऋषि आए, ऋषि का नाम था सौवृतकेतु। सौवृतकेतु ऋषि महाराज यज्ञशाला में विराजमान हो गए। उनका अन्तरात्मा उस समय तो दुःखित था। मूल कारण क्या था कि वे तपस्या कर रहे थे, तप करते-करते सिंहराज के प्यारे पुत्र से उन्हें मोह हो गया और इतना अतिमोह हो गया कि वे अपने कण्ठ में स्नेह युक्त रहते। उस सिंहराज के पुत्र की मृत्यु हो गयी। अब वह मृत्यु से दुःखित हो रहे थे। वे दुःखित हो करके शान्ति के क्षेत्र में जाना चाहते थे। ऋषि त्रेतकेतु जब याग कर रहे थे तो यज्ञशाला में विराजमान हो गए। जब विराजमान हो गए तो त्रेतकेतु ऋषि जहाँ याग कर रहे थे वहाँ अनुसन्धान भी कर रहे थे। अनुसन्धान करते हुए जब वैज्ञानिक चित्रों में वे जो स्वाहा उच्चारण करते थे ऋषि भी मन्त्र उच्चारण कर रहे थे, वायुमण्डल में जो परमाणु और शब्द के साथ में चित्र गति कर रहा था, उस चित्र में कुछ विरह के कण उनके यन्त्रों में दृष्टिपात होते थे। याग समाप्त कर दिया। त्रेतकेतु ऋषि, ऋषि से बोले कि हे ऋषि! तुम ऋषि हो या विरह में विराजमान हो। ऋषि कहता है कि महाराज! यह आपने मेरे विषय में कैसे जान लिया? उन्होंने कहा जहाँ मैं याग कर रहा हूँ वहाँ अनुसन्धान भी कर रहा हूँ। वहाँ मैं

अपने यन्त्रों में, चित्रावलियों में, तुम्हारे शब्द के जो कण हैं, शब्द के साथ में जो चित्र अन्तरिक्ष में जा रहे हैं, वह चित्र मेरे इस यन्त्र में गति कर रहे हैं, तुम्हारा चित्र आ रहा है, यह तुम्हारा विरह का चित्र है, मैं इसके मूल को जानना चाहता हूँ।

ऋषि बोले कि प्रभु! वास्तव मे मुझे विरह है। मुझे ममता ने मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया है। उन्होंने कहा कि ऐसा क्यों? मैं अपने नन्दरूपेन्द्र राजा के यहाँ पुत्र हूँ और मदकेतु राजा के यहाँ अपने माता-पिता से आज्ञा पा करके मैने तपस्या प्रारम्भ की। मैं श्रुरतम् प्रातककेतु महाराज को अपना पूजनीय स्वीकार करके तप करने गया। तप करते-करते मेरा तप नितान्त (पराकाष्ठा) में चला गया। मेरे तप की कोई सीमा न रही। परन्तु मुझे एक सिंहराज के पुत्र से मोह हो गया और कुछ काल के पश्चात् उससे मुझे विरह हो गया। क्योंकि वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। मैं उसके विरह में हूँ। मेरे अन्तरात्मा में शान्ति नहीं आ रही है।

जब ऋषि ऐसा उच्चारण करने लगे तो भुञ्जू के पिता त्रेतकेतु ऋषि कहते हैं 'तुम्हें मेरी यज्ञशाला में विराजमान होने का क्या अधिकार था? क्योंकि मेरी यज्ञशाला में तो प्रसन्नचित्त हो करके विराजमान होना था। यह देवताओं का पूजन है, जब मैं देवताओं का पूजन कर रहा था, देवताओं के चित्रों को चित्रण करता हुआ अपनी विज्ञानशाला में यन्त्रों को जान रहा था, तो तुमने मेरे से आज्ञा क्यों नहीं ली कि मैं तुम्हारी यज्ञशाला में विराजमान हो सकूँ? त्रेतकेतु ऋषि तू वेद का ऋषि है, वेद का मन्त्र क्या कहता है 'मन्नाम् ब्रह्मे लोकाः देवन्तम्

पूजानासी कृतो रुद्राः।'' वेद का ऋषि यह कहता है कि यज्ञशाला के समीप वह प्राणी आना चाहिए, जिसका चित्त प्रसन्न हो और जिसका चित्त प्रसन्न न हो, विरह में हो उस मानव को यज्ञशाला से दूर विराजमान हो करके वेद का मन्त्र स्मरण और याग की सु-स्वाहों से उनके शब्दों को श्रवण करना चाहिये यह तो विमान है, यह ऋषि-मुनियों का देव-पूजन करके देवता बनने का विमान है। यज्ञशाला के समीप वही मानव आता है, जो देवता बनना चाहता है और देवता वह होता है, जो मृत्यु को विजय कर लेता हे।

यजमान कौन होता है जो यज्ञ के समीप वहाँ विराजमान होने जा रहा है, जो मृत्यु के समीप नहीं है, जो जीवन के समीप होता है, जो प्रकाश के समीप होता है, अन्धकार उसके निकट नहीं है। जब ऋषि ने ऐसा कहा कि हे ऋषि! तुम्हें कोई अधिकार नहीं था। परन्तु चलो कोई बात नहीं तू भी राजा भरतकेतु का पुत्र है। मुझे बहुत प्रसन्नता है, तुम्हारे हृदय को प्रभु शान्ति तो अवश्य देगा। जब ऋषि ने यह कहा कि ''तपस्यम् ब्रह्म लोकाः'' तप में मोह का क्या कार्य? मोह करना है तो अपने तप से करो, तप से भी मोह न करो, मन्त्र कहता है, ''तपम् मोह वृत्ति कृताः'' एक वेद का मन्त्र कहता है ''तपम् मृत्यु अस्तो न पन्थव वृही वृत्ताः'', इससे भी प्रीति न करो, तप से भी प्रीति न करो। जब वेद का ऋषि यह कहता है तो मानव मौन हो जाता है और विचारता है कि तपस्या क्या है? ''मानव ब्रही वृत्ताः'' जब ऋषि त्रेतकेतु ने इस प्रकार के वाक्य ऋषि को प्रकट कराए तो ऋषि का हृदय जिसमें दबे हुए निचले स्थल में संस्कार थे,

वह मोह के कारण दमन हो गए थे उसमें वह ज्ञान की अग्नि प्रदीप्त हो गयी। वे जो तप के संस्कार थे वे उद्बुध हो गए और उद्बुध हो करके "ऋषि मौनाः ब्रह्मवेत्ता गृहे।" हे भगवन् मेरा मोह का आवरण समाप्त हो गया। मुझमें प्रकाश हो गया है। (तीसवां पुष्प २०-५-७६ ई.)

भृगु ऋषि

भृगु ऋषि के आश्रम में उसके वेदमन्त्रों के गायन को सुनने के लिए हिंसक पशु आते तथा उनके चरणों में लेटते थे। (ग्यारहवां पुष्प १८-७-६७ ई.)

महर्षि भृगु ने ८५ वर्ष तक तो वाणी पर तप किया और वाणी को तब तक नहीं त्यागा, जब तक वाणी का अग्नि स्वरूप न हो गया। वाणी का अग्नि स्वरूप सत्य का उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं है। एक वह सत्य है जो सत्य है। परन्तु उसमें कठोरता है। योगाभ्यासी कठोर सत्य को भी अपने में निगल जाते हैं। एक वह सत्य होता है जिसमें मधु है, आनन्द है, जिस सत्य के आधार पर इस ब्रह्माण्ड की क्रिया चल रही है। वह सत्य महान् चेतना है, जिससे मानव में एक महान चेतना प्राप्त होती है। वह जो यथार्थ सत्य है उसमें नम्रता है, उसमें आनन्द है, आनन्द का जो स्रोत है वह परमपिता परमात्मा है, क्योंकि आनन्द की उत्पत्ति वहीं से होती है। परमात्मा स्वयं आनन्द है। उसमें विडम्बना नहीं होती, वह सदैव एक रस रहने वाला आनन्द है जब मानव यह जानने लगता है कि

एक रस रहने वाला चैतन्य स्वरूप है तो उसकी निष्ठा हो जाना मानव के लिए अनिवार्य है। निष्ठा होने पर मानव का उद्धार होना आरम्भ हो जाता है। वाणी को शोधन करने के सन्म्बन्ध में महात्मा भृगु ने कहा है कि मैंने नाना औषधियों का पान किया है। उन औषधियों का पान करके मेरा जो हृदय है मेरा जो मनस्तत्त्व है वह महान् तरंगों वाला बन गया है। (सताईसवां पुष्प २-३-७६ ई.)

भोगद्व ऋषि

भोगद्व ऋषि अश्वपति के पुरोहित थे, वह वायु गौत्र में जन्मे थे। इनको वृष्टि यज्ञ में पुरोहित बनाया गया था। (तेरहवां पुष्प १-११-६९ ई.)

महाराज मनु

मनु अब से ९०,४८,००,५६७ वर्ष पूर्व हुए थे। उनकी माता का नाम लक्ष्मी तथा पिता का नाम सोमभान केतु ऋषि था। माता पिता ने विचार करके निर्णय किया कि रोहिणी नक्षत्र हो; पुष्प नक्षत्र का उसमें योग हो और चन्द्रमा का उसमें मिलान हो, प्रकृति में शुद्धता हो और रजोगुण का योग हो और उस समय के गर्भस्थापना से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह अवश्य राजा बनेगा, वही हुआ। (नौवां पुष्प २९-७-६७ ई.)

महाराजा अश्वपति मनु की एक सहस्रवीं पीढ़ी में थे। (तेरहवां पुष्प १-११-६९ ई.)

एक समय लक्ष्मी अपने पति से बोली कि हे प्रभु! यह संसार में

क्या हो रहा है। मुझे तो संसार कुछ अग्नि के मुखारबिन्दु में जाता प्रतीत हो रहा है।

ऋषि ने कहा..हे देवी! प्रजा में अनुशासनहीनता होती चली जा रही है। तब क्या होना चाहिए?

लक्ष्मी ने कहा..प्रभु! वेद में ऐसा आया है कि राष्ट्र में जब प्रजा में अनुशासनहीनता हो जाए तो राजा का चुनाव होना चाहिए। उस समय ऋषि ने कहा कि देवी! राजा कहाँ से आएगा।

माता लक्ष्मी ने कहा..भगवन मेरे हृदय की ऐसी इच्छा है। मैं प्रभु से ऐसी याचना करने जा रही हूँ। आज ऐसे नक्षत्र में ऐसे गर्भ की स्थापना करनी चाहिए, उसमें रोहिणी नक्षत्र हो, पुष्प नक्षत्र का उसमें योग हो और चन्द्रमा का उसमें मिलान हो, प्रकृति में शुद्धता हो और रजोगुण का योग हो। ऐसे समय में यदि गर्भ की स्थापना होगी तो हम निश्चित ही एक राष्ट्रीय पुरुष को जन्म दे सकेंगे। जब माता लक्ष्मी ने यह विचारा तो मनोनीतता हुई, विचार करती हुई, प्रभु का चिन्तन करती हुई "राष्ट्र दा राष्ट्र मम देही", शब्दों का पठन-पाठन करती हुए गर्भ की स्थापना हुई। माता ने अपने प्यारे पुत्र का जो चुनाव किया वह ऋषिता ले करके, पार्थिवता ले करके, रजोगुण के अंकुर ले करके, वेद के विचारों से द्रव्य दिया और उस द्रव्य से प्रभु ने माता के गर्भ स्थल में बालक की स्थापना की उसके पश्चात् माता लक्ष्मी के गर्भ से महाराजा मनु का जन्म हुआ। जिस समय इस बालक का जन्म हुआ तो माता जान गयी और अपने पति देव से कहा कि प्रभु यह आपका बालक है, और यह मेरा हृदय उच्चारण कर

रहा है कि यह निश्चित ही राजा बनेगा और प्रजा को कोई न कोई नियमावली देगा। जिससे प्रजा में किसी प्रकार की अनुशासनहीनता न हो।

भगवान मनु का जीवन कितना उज्ज्वल था। वे पक्षियों पर भी दया करने वाले थे। वे मार्ग में विचरण करने वाले और जलचरों पर भी दया करने वाले थे। वे आध्यात्मिकवेत्ता, राष्ट्रीय निर्माणवेत्ता और मनोनीतवेत्ता थे। राष्ट्र का निर्माण करने वाले सबसे पहले भगवान मनु हुए हैं। भगवान मनु के काल को लगभग ९० करोड़, ४८ लाख, ५ सौ, ६७ वर्ष हो गए हैं। जिस समय इस पृथ्वी का राष्ट्र निर्माण हुआ था। (नौवां पुष्प २९-७-६७ ई.) महाराजा मनु एक कमण्डल लेकर नित्यप्रति स्नान पान करने जाया करते थे, एक समय समुद्र तट पर नित्यकर्म करने के पश्चात् जब समुद्र से कमण्डल में जल लेने लगे तो उनके कमण्डल में एक सुन्दर सी मछली आ गई और मनु महाराज से कहा..महाराज मेरी रक्षा करो, मैं रक्षा चाहती हूँ। महाराज मनु मछली को अपने कमण्डल में ले आए। कुछ समय वह कमण्डल में रही, उसके पश्चात् उन्होंने सुन्दर सा गड्ढा बनवाया उसमें जल अर्पित कर दिया और फिर उसमें मछली को अर्पित कर दिया। मछली वहाँ प्रबल होने लगी। जब उग्रता को प्राप्त हो गई तो एक समय मछली ने कहा कि प्रभु मैं समुद्र को जा रही हूँ। अपने राष्ट्र में जा रही हूँ, जहाँ हमारी जातियाँ रहती हैं, और यह कहा..एक समय जब प्लावन आएगा, उस समय तुम नौका बनवाना और मैं तुम्हें हिमालय की कन्दराओं में प्राप्त होऊँगी। मेरे मुख पर एक सूक्ष्म सा

सींग होगा, उस सींग से अर्पित कर देना। प्रभु तुम्हारी रक्षा अवश्य कर पाएँगे। मछली अपने समुद्र में चली गई। महाराज मनु तपस्या आदि करते रहे, कुछ समय पश्चात् जल प्लावन आ गया। जल प्लावन के आते ही संसार में अग्रित होने लगी। महाराज मनु ने मछली के कथनानुसार एक सुन्दर नौका बनवाई। उस नौका पर कुछ ऋषि समाज सहित विराजमान हो गए। जल प्लावन इतना प्रबल था कि वह नौका हिमालय की कन्दराओं के निकट पहुँची, उन्होंने देखा मछली वहाँ विराजमान है, नौका को उस मछली से स्थिर किया। सुना जाता है, महाराजा मनु और उनके सन्म्बन्धी जो उस नौका पर थे उनके प्राणों की रक्षा हो गयी। जल प्लावन समाप्त हो गया, शुष्कता आ गयी, और महाराज अपने अग्रिम स्थान पर आ पहुँचे। जो मानव जिसकी रक्षा करता है वह प्राणी उसकी रक्षा करता है। जब मनु महाराज को प्रतीत हो गया कि अब धर्म पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर आक्रमण होने लगा है, दैत्यों का प्रभाव अधिक होता चला जा रहा है, देवता शून्यता को प्राप्त होते चले जा रहे हैं। उन्होंने इसी काल में आदि ऋषियों को एकत्रित किया। जिसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि पारा आदि-आदि ऋषि विराजमान थे। महाराज मनु ने उनसे कहा कि आज मैं वेदों का स्वाध्याय कर रहा था, तो वहाँ राष्ट्र का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था, राष्ट्र नाम का भी कोई नियम है। ऋषियों को निर्णयात्मक करते हुए महर्षि तत्ववेत्ता ने कहा-हे भगवन्! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों में राष्ट्र का विधान है और यह उस समय में है जब मनुष्य अपने कर्त्तव्यों से विहीन हो जाता है, धर्म से

पतित हो जाता है। धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है। आदिब्रह्मा का भी यही कथन है। आज वास्तव में राष्ट्र का निर्माण करना चाहिए। उस समय मनु जी ने कहा कि मुझे कुछ सहायता प्राप्त होगी तो मैं अवश्य राष्ट्र का निर्माण करूँगा। मेरी इच्छा है दैत्यों को नष्ट करने के लिए, दुराचारियों का दुराचार नष्ट करने के लिए, राष्ट्र का सुगठित हो जाना बहुत ही अनिवार्य है। ऋषि-मुनियों ने कहा कि आप राष्ट्र का निर्माण अवश्य कीजिए, हम आपकी सेवा अवश्य कर पाएँगे, जो हमसे बनेगी।

भगवान् मनु ने ऋषियों की सहायता प्राप्त कर सबसे पूर्व वर्ण व्यवस्था स्थापित की, शिक्षालयों में शिक्षा पाने के लिए ब्रह्मचारी जाता तो आचार्य निदान करता कि जो भी ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी है, वह किस वर्ण का है जैसे कोई पुत्र बुद्धिमान है, ब्रह्मणत्व पर उसकी बुद्धिमता चलती है, तो आचार्यगण उसे ब्राह्मण की उपाधि प्रदान करते। जिसमें बुद्धि वणिज आदि के थे तो उसे वैश्य और दूसरों की रक्षा करने वाले की क्षत्रिय जाति थी और जो इन तीनों प्रकार की शिक्षा को प्राप्त न कर सके उसे शूद्र की उपाधि प्रदान की जाती थी। भगवान मनु ने यह सोचा कि मेरे राष्ट्र के अब नियम तो बन गए। ऋषि-मुनियों ने राष्ट्र के नियम के वर्ग तो कर दिए परन्तु यह नियम बनाना है कि राष्ट्र के लिए राजा की आवश्यकता होती है और राजा के लिए किसी नगरी की आवश्यकता होती है। हमें संसार का इतिहास प्राप्त होता है तो स्मरण आता है कि भगवान मनु ने सबसे पूर्व अयोध्या नगरी का निर्माण किया, उसी प्रकार निर्माण

किया जैसे परमपिता परमात्मा ने मानव शरीर का निर्माण किया है। इसी नगरी में नौ द्वार थे, जेसे मानव शरीर में नौ द्वार माने जाते हैं। उस नगरी का निर्माण करके स्वयं उसमें राजा बने। राजा बन करके राष्ट्र के नियम चलाने लगे। राष्ट्र का जो निर्माण होता है और उसके जो नियम होते हैं वे केवल धर्म की रक्षा के होते हैं। (नौवां पुष्प ७-७-६५ ई.)

महर्षि मानकेतु

भारद्वाज से पहले सतयुग में महर्षि मानकेतु राजा भान्धाता के पुरोहित थे, उनके यहाँ नित्य यज्ञ होता था उसके ऊपर विचार-विनिमय होता था। उन्होंने कहा था कि हमें आत्मिक यज्ञ करना चाहिए। इस मानव शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार हैं। इनके नाना विषयों को एकत्रित करके, उसका साकल्य बना करके उस हृदय रूपी यज्ञशाला में आहुति देनी चाहिए। यह दैवी यज्ञ या आध्यात्मिक यज्ञ कहा जाता है, वह सर्वोपरि यज्ञ है। जिस पर विचार करके मानव सदैव महत्ता की ज्योति को प्राप्त हो जाता है। (उन्नीसवां पुष्प १८-६-७२ ई.)

महामुनि नारद

महामुनि नारद ने अपने जीवन का पूर्ण विकास कर लिया था। उसकी विशेषता यह थी कि वह तपस्या तथा पुरुषार्थ के बल से सूर्यमण्डल में पहुँचे तथा वहाँ के राजा विष्णु को पृथ्वी पर खींच लिया तथा विष्णु का अभिमान नष्ट कर दिया। जो भी मानव

अभिमान करता है उसका पतन एक न एक दिन अवश्य हो जाता है।

धुन्धरत ऋषि

धुन्धरत ऋषि से ब्रह्मचारियों ने प्रश्न किया कि महाराज! यह जो यज्ञ है इससे उत्तम कोई द्वितीय वस्तु संसार में है?

ऋषि बोले, हे ब्रह्मचारियों! इससे ऊर्ध्वगति में जाने वाला अन्य कोई कर्म नहीं है। यह ऐसा कर्म है जो मानव को ऊर्ध्वागति में ले जाता है। जो मानव यज्ञ करता है उसका संसार में कोई शत्रु नहीं होता? (सत्ताईसवां पुष्प ३-३-७६ ई.)

महर्षि कुकुट

वायु मुनि वंश में ही महर्षि कुकुट मुनि हुए। कुकुट मुनि के सातवें बाबा श्रृंगी जी थे। (तेईसवां पुष्प ११-३-७२ ई)

वायु मुनि के इक्कीसवें प्रपौत्र कुकुट मुनि थे। (अठारहवां पुष्प १३-४-७२ ई.)

करकेतु मुनि

करकेतु मुनि की पत्नी का नाम ऊषा था, जिसने पिप्लाद मुनि को जन्म दिया। (पाँचवां पुष्प २१-१०-६४ ई.)

जब पिप्लाद मुनि को करकेतु महाराज गुरु बनाने चले तो वे अपनी जन्मभूमि को त्यागकर महर्षि पिप्लाद के चरणों में ओत-प्रोत हुए। महर्षि पिप्लाद ने उनको योगबल से देखा, उनमें अभिमान छाया हुआ था। महर्षि पिप्लाद ने कहा कि हे करकेतु! आज तुम शिष्य बनना चाहते हो, परन्तु तुम शिष्य के योग्य नहीं हो, करकेतु ने कहा,

क्यों महाराज?

पिप्लाद..इसलिए कि तुम्हारे अन्तःकरण में कपट है, स्वार्थ भावनाएँ हैं, पदों की बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं। जब तक यह सब हैं तब तक तुम इस आश्रम में रहने योग्य नहीं।

करकेतु ऋषि ने कहा, यह विचार पान करके मन में विचारा कि वास्तव में यह मेरे में सूक्ष्मता है। उन्होंने १२ वर्ष तक सत्य का उच्चारण करने का अभ्यास किया। निद्रा पर विजय करने का अभ्यास किया और ऋषि के चरणों में ओत-प्रोत हो गए, वेद का स्वाध्याय किया। वे रावण के गुरु भी बने और रावण को ज्ञान-विज्ञान का साहित्य दिया।

शिष्य या सेवक वही बन सकता है जो किसी के विचारों को धारण करता है, सत्यता को धारण करता है। विचारों को कुचलता नहीं परन्तु स्वागत करता है। (छठा पुष्प ५-७-६४ ई.)

गरुड़

सतोयुग में महाराजा विष्णु बहुत महान् और पवित्र कहलाए जाते थे। वैसे विष्णु नाम परमात्मा का है। किन्तु सतयुग में विष्णु की एक उपाधि होती थी तथा गरुड़ उसका वाहन रहता था। गरुड़ की माता का नाम उदीचि प्रधाकृतम माना जाता है, गरुड़ विष्णु के यहाँ बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। गरुड़ की उड़ान का ध्रुव-मण्डल से लेकर ज्येष्ठाय नक्षत्र तथा आकाश-गंगा का विचरण रहता था। (पन्द्रहवां पुष्प २५-१०-७० ई.)

महर्षि सुकेता

एक समय सुकेता मुनि महाराज भ्रमण करते हुए हिमालय की कन्दराओं में एक आसन बिछाकर विराजमान हो गए। विराजमान होते ही ऋषि के मस्तिष्क में सुन्दर-सुन्दर विचारों की उपलब्धि होने लगी। क्योंकि वे स्वयं भी जिज्ञासु थे। जिज्ञासु होने के साथ-साथ उनके द्वारा दर्शनों की आशाओं का जन्म होने लगा। जब जन्म होने लगा तो इतने में अगस्त्य मुनि आ गए। उनसे उन्होंने कहा, प्रभु! मैं स्वयं तो जिज्ञासु था। परन्तु इस आसन पर अन्तरात्मा में सुन्दर-सुन्दर भावनाएँ क्यों उत्पन्न हो गईं, क्या मेरे किन्हीं जन्मों के संस्कारों की उद्बुधता हो गई है? अगस्त्य ने कहा, नहीं ऋषिवर। हे जिज्ञासु! तुम जिज्ञासु हो, ब्रह्मचारी हो। ब्रह्म की तुम्हें पिपासा है, दर्शनों की तुम्हें जिज्ञासा है। यहाँ किसी काल में महर्षि अंगिरा ने तप किया था, तप करने के पश्चात् उन्होंने दर्शनों पर विचारा। मानवीय दर्शन उनके समीप रहता था। लगभग ८२ वर्ष तक कोई मिथ्या वाक्य उन्होंने उच्चारण नहीं किया। यह सुनकर ऋषि आश्चर्यचकित हो गए और पूछा, महाराज! कितना समय हो गया। उन्होंने कहा, अंगिरा ऋषि को करोड़ों वर्ष हो गए जब उन्होंने यहाँ यज्ञ किया था। उन्होंने पूछा, महाराज! इसके पश्चात् क्या कोई तपस्या नहीं कर पाया, इन शिलाओं पर? तब अगस्त्य ने कहा कि उनके पश्चात् और भी ऋषि आए, उन्होंने भी तप किया। जिन्होंने भी तप किया है उन्हीं के विचार इस वातावरण में रमण कर रहे हैं। उन्हीं के विचारों से तुम्हारे मस्तिष्क में एक आभा का जन्म हो गया है। तुम्हारे जीवन में एक

आभा की उपलब्धि हो करके तुम उन्हीं परमाणुवाद में रमण कर गए हो जहाँ तुम्हारा, दर्शन तुम्हारे समीप आ जाएगा। (छब्बीसवां पुष्प पृष्ठ ७२)

शकुन्तला

महर्षि सोमभानकेतु की कन्या का नाम शकुन्तला था। शकुन्तला के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। जन्म होते ही वे कन्या को आश्रम में त्यागकर चले गए। विवेक ऋषि ने उस कन्या का अपने आश्रम में पालन-पोषण किया। वे नाना वनस्पतियों का पान करते थे। ऋतिकेतु नाम की औषधि का आसन बनाया जाता था। सर्पकेतु नाम की औषधि होती है, उसमें यह विशेषता होती है कि सर्प उसके निकट नहीं आता। उस औषधि में अग्नि प्रधान है, उसके आसन पर विराजमान होकर जो साधना करता है तो यदि मृगराज भी आ जाए तो वह भी उसकी रक्षा करता है। यह कन्या उस आसन पर विराजमान होती। बाल्यकाल में ही उसे वेदों का अध्ययन कराया जाने लगा। ब्रह्म की आभा का वर्णन कराया जाने लगा। पाँच वर्ष की आयु में वह कन्या पूर्ण ब्रह्मवेत्ता बन गयी। (सत्ताईसवां पुष्प १७-५-७५ ई.)

एक समय माता शकुन्तला और उसके पति विरेहजात ऋषि महाराज दोनों वेदों का अध्ययन करते थे। उनके हृदय में पिपासा जागृत हो गई कि हमें अपने वंश और गृह को ऊंचा बनाने के लिए एक पुत्र की उत्पत्ति करनी चाहिए। दोनों के हृदय में जब यह

आकांक्षा हुई, उनका समावेश हुआ। वेदों का पठन-पाठन आरम्भ करने लगे। उनके हृदय की यह आकांक्षा रहती कि हमारा जीवन ऊँचा बने। शकुन्तला के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ, उस पुत्र का नाम महर्षि सुकेता था। सुकेता को माता लोरियों का पान करा रही है और माता यह कह रही है कि पुत्र! तेरा हृदय ऊँचा होना चाहिए। हे बालक! तूने सत्यता के आधार से जन्म लिया है और सत् ही तेरा जीवन होना चाहिए। माता सुकेता को अपनी लोरियों में ब्रह्मचर्य का उपदेश दे रही है। हे बालक! तू संसार का वैज्ञानिक बन। इस प्रकार माता की प्रेरणा कार्य कर रही है। वह उसके समक्ष द्वितीय शब्द नहीं आने देती। वह मन और प्राण को एकाग्र करती हुई बालक को सुशिक्षित बना रही है। जब वह ४ वर्ष का ब्रह्मचारी हुआ, उस समय माता शकुन्तला कहती है कि हे बालक! मानव का आभूषण क्या है? चार वर्ष का ब्रह्मचारी उत्तर देता है कि मां! मानव का आभूषण ज्ञान है, मानव का ब्रह्मचर्य है।

हे बालक! इस शरीर में ओढ़ना क्या है और बिछौना क्या है? सोम है, और इस अन्न का ओढ़ना भी सोम और जल ही माना जाता है।

जब माता यज्ञ कर रही है तो वह बालक भी विराजमान है। उस समय वह बालक से कहती है, हे बालक! इस यज्ञ का देवता कौन है? बालक ने कहा कि यज्ञ का देवता सत्य है। पुनः प्रश्न यज्ञ का देवता कौन है?

उत्तर..माता! यज्ञ का देवता सूर्य है जो सामगान गा रहा है।

प्रश्न..यज्ञ का देवता कौन है?

उत्तर..यज्ञ का देवता यह अग्नि है, क्योंकि अग्नि ही वृष्टि करने वाला यह सूर्यवत् कहलाता है।

प्रश्न..हे बालक! यह समिधा क्या है?

उत्तर..समिधा अपने को भस्म करती हुई संसार को आभा प्रदान करती है।

प्रश्न..अग्नि का देवता कौन है?

उत्तर..अग्नि का देवता ब्राह्मण है। ब्रह्मा है जो उद्गान गा रहा है, उद्गान गाता हुआ वातावरण शोधन कर रहा है, यज्ञशाला के वातावरण को पवित्र बना रहा है। (अट्ठाईसवां पुष्प १७-११-७५ ई.)

जैमिनी ऋषि

वेदान्तवाद में जैमिनी ऋषि ने दर्शन में उच्चश्रेणी के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

चक्रायण ऋषि

चक्रायण ऋषि अत्रि-गौत्र मे जन्मे थे, जो अश्वपति के वृष्टि-यज्ञ में उद्गाता बनाए गए। (तेरहवां पुष्प १-४-६९ ई.)

त्रेता ब्रह्मचारी

महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में एक त्रेता नाम के ब्रह्मचारी रहते थे। उनकी विज्ञान में बहुत गति थी। अग्नि, जल और पृथ्वी के परमाणुओं पर उनका बड़ा आधिपत्य रहता था। एक समय में विज्ञान में उड़ते हुए गुरुपान का निर्माण कर रहे थे, निर्माण करते हुए उसके

चित्त की प्रतिभा मस्तिष्क में आने लगी। उन्होंने कहा कि हम इन परमाणुओं का मिलान कर रहे हैं। हमने इसमें अग्नि के परमाणुओं की पुट अधिक लगाई है। वायु के परमाणुओं की पुट इससे भी ऊर्ध्वागति में है। पार्थिव परमाणुओं की पुट न्यूनतम है। इस प्रकार जल के परमाणु हैं परन्तु इन परमाणुओं का निर्माणवेत्ता कौन है, जिन परमाणुओं का हम मिलान कर रहे हैं। हम मान लेते हैं कि यह स्वाभाविक है। जैसे सन्निधान हुआ, वह स्वभाव जागृत हो गया। यदि किसी चेतना का सन्निधान न होता तो यह कैसे चेतनित हो सकते थे। जब उस पर निर्णय करना आरम्भ किया कि इसका मूल निर्माणवेत्ता कौन है? तो ऋषि बालक इस विचार से मौन हो गया और अपने अन्तरात्मा से यह आग्रह करने लगा कि हे मेरे शरीर में रहने वाले अन्तर्चेतन्य! जो मुझे प्रेरणा दे रहा है। हे देव! तू मुझे यह निर्णय करा कि इसका मूल क्या है? अब वह कार्य को त्याग कर शान्त मुद्रा में विराजमान हो गए। जब चित्त शान्त होता गया तो अहंकार की मात्र भी समाप्त हो गई। यह मन जब चित्त में परिणत हुआ तो चित्त का आत्मा से सन्निधान होता है। जब आत्मा का सन्निधान होता है तो चित्त की प्रेरणा मन के द्वार पर आती है। अब चित्त से प्रेरणा है कि हे देव! यह जो परमाणुओं का निर्माणवेत्ता है वह चेतना है। उस चेतना का नाम ही ईश्वर कहा जाता है। उस परमात्मा का नाम सर्वशक्तिमान् कहा जाता है। इस प्रेरणा के आने पर उस ब्रह्मचारी को यह निश्चय हो गया कि हम प्रकृति के तन-मन और चित्त से प्रेरित होकर सेवक बने हैं। यदि हम परमपिता परमात्मा के, जो

निर्माणवेत्ता है, सेवक बन जाते हैं और अपने को समर्पित कर देते तो यह विज्ञान हमारे लिए कितना सहज हो जाता।

इस विश्वास के साथ वह अपने कार्य को त्याग कर यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए। वहाँ महर्षि भारद्वाज विराजमान थे। भारद्वाज ने कहा, बोलो ब्रह्मचारी, तुम्हें कितना कार्य निर्णीत किया एवं निर्मित किया। ब्रह्मचारी बोला, प्रभु मैंने किया तो है। परन्तु मेरा तो अन्तरात्मा कह रहा है कि मुझे अपने को समर्पित कर देना चाहिए। महर्षि भारद्वाज ने कहा हे ब्रह्मचारी! यह जो तुम प्रकृति विज्ञान का कार्य कर रहे हो इसको भौतिकवाद तो कहते हैं परन्तु इसकी जानकारी तुम्हारे मस्तिस्क में होनी चाहिए और क्रियात्मक भी तुम्हारे मस्तिष्क में होना चाहिए। इसके पश्चात् तुम प्रभु का विज्ञान भी जानने का प्रयास करो। ब्रह्मचारी ने आचार्य के इन शब्दों को ग्रहण किया और यानों में परिणत हो गया और यानों का निर्माण होने लगा। तब उस ऋषि बालक ने नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की रचना की। इसलिए वह निर्माण करने वाला है, नियन्ता हे। उसे हमें अपने मनस्तत्त्व को समर्पित कर देना है। क्योंकि इस भौतिकवाद, इसके विज्ञान की अपेक्षा यदि हम परमात्मा को जानेंगे तो यह विज्ञान हमारे लिए न होने के तुल्य हो जाएगा। इस विज्ञान में कोई वास्तविकता नहीं है। आज हमने एक निर्माण किया है। भौतिकवाद में हमारा मस्तिष्क है। उसमें हमें अभिमान की मात्रा जागरूक हो गई। अभिमान, अहंकार और क्रोध का आना ही मृत्यु है। ऐसा ऋषि-मुनियों ने कहा है। शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है। क्योंकि उसका जो निर्माण हुआ

है। परमाणुओं का संघात हुआ है, परमाणुओं का जो मिलान होता है, तो उसका विच्छेद होता है। यह प्रकृति का स्वभाव है। वह जो परमाणु सुगठित हुए हैं उनका बिखरना बहुत अनिवार्य है। (पच्चीसवां पुष्प १-८-७६ ई.)

ऋषि विश्वश्रवा

ऋषि विश्व ने यह विचारा कि यह जो मानव का मन है, इसको संयम में कैसे बनाया जाए। क्योंकि यह जो मन है यह विभाजन करता रहता है। यह प्राण शक्ति का विभाजन करता रहता है, जिससे मानव क्रियाशील बना रहता है। उसका विभाजन करता रहता है और उसको विभाजन करने वाला यह मन कहता है, इस मन को कैसे पवित्र बनाया जाए। क्योंकि यह जो शरीर रूपी रथ है इस रथ को नियन्त्रण में लाने वाला यह मन कहलाता है। इस मन सारथी को हम कैसे उज्ज्वल बनाएँ, इसको आभा में युक्त बनाने वाले बनें? क्योंकि यह वेग से इन्द्रियों को स्थिर किए रहता है। ऋषि-मुनियों ने यह विचारा। इसके ऊपर किसी ने कहा..इसके ऊपर चिन्तन होना चाहिए। किसी ने कहा चिन्तन नहीं मनन होना चाहिए, किन्हीं ने कहा मनन नहीं याग होने चाहिएं। एक ने कहा इस मन को स्थिर करने के लिए स्वाध्याय होना चाहिए। दूसरे ने कहा मन को पवित्र बनाने के लिए ब्रह्मचार्य होना चाहिए, अपना-अपना मन्तव्य प्रकट किया इतने में ब्रह्मचारी नचिकेता उपस्थित हुए। क्योंकि उनके पिता विश्वश्रवा वहाँ सभा में विद्यमान थे। नचिकेता ने उपस्थित हो करके

कहा कि ब्रह्मवेत्ताओं यह ब्रह्मवेत्ताओं का समुद्र है। मेरे विचार में यहाँ मैं भी कुछ अपनी टिप्पणी देना चाहता हूँ? ऋषियों ने कहा, हे नचिकेता! तुम टिप्पणियां क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! जो यह मन है यह उस काल में वश में आता है जब आन्तरिक चित्त को बाह्य चित्त में प्रवेश करा दिया जाता है। यह वाक्य कह कर वे शान्त हो गए।

अपना मन्तव्य प्रकट करने के लिए वहाँ माता गार्गी भी उपस्थित थीं। वे कहती हैं कि मैं भी अपना कुछ मन्तव्य देना चाहती हूँ। उन्होंने कहा, बोलो देवी! तुम ब्रह्मवादी भी हो, तुम क्या चाहती हो मन को ऊँचा बनाने के लिए। उन्होंने कहा कि मेरे विचार में आता है कि इसका उपाय यदि जानना तो यहाँ महर्षि श्रुतिकेतु ऋषि महाराज विद्यमान हैं। जिनका नीरस गौत्र में जन्म हुआ है। वे उसका निर्णय दे सकेंगे। वे इतना कह कर शान्त हो गयी।

महर्षि श्रुतिकेतु ऋषि महाराज उपस्थित हो गए और उपस्थित हो करके उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मवेत्ताओं! मैं इतना ब्रह्मवेत्ता तो नहीं हूँ जितना गार्गी ने मुझे ऊर्ध्व बनाया है। मैंने जो सूक्ष्म सा जाना है वह निर्णय मैं अवश्य दे सकता हूँ। इस मन को यदि पवित्र बनाना है तो मन को पवित्र बनाने के लिए मानव को आहार की आवश्यकता है, आहार पवित्र होना चाहिए। क्योंकि मन की जो तरंगें उत्पन्न होती हैं वह आहार से होती हैं। आहार से व्यवहार बनता है और व्यवहार से चिन्तन बनता है। चिन्तन से मनन होता है। मनन से ब्रह्मचारी रहता है। ब्रह्मचर्य से वह ब्राह्मण बनता है ब्राह्मण बनने के पश्चात् यह

ब्रह्मवेत्ता बन करके और परमात्मा के प्रकाश रूपी राष्ट्र में चला जाता है। जब उन्होंने यह निर्णय दिया तो ब्रह्मवेत्ता इस बात को स्वीकार कर गए।

उन्होंने कहा कि अन्न अब कैसा होना चाहिए? पुत्रों! मुझे स्मरण है कुछ ऋषि ऐसे होते हैं, ऐसे मननशील होते हैं जिनके मनन करने की धाराएँ बड़ी विचित्र होती हैं। ऋषियों ने इस मन को उज्ज्वल बनाने के लिए उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं था। क्योंकि वह अन्नाद कहलाता है। अन्न की जितनी वस्तु पान की जाती हैं, उस सर्वत्र का नाम अन्नाद कहलाता है। हमारे ऋषियों ने शिल अन्न को ग्रहण किया और अन्न को ग्रहण करके एकान्त स्थली में चिन्तन करते रहे। चिन्तन करने के पश्चात् उन्होंने मन को पवित्र किया। जब मन पवित्र होने लगा तो जो मानव की मानसिक दशा थी जिससे यह मानव व्याकुल हो रहा था, मानों यह तृष्णा के कारण व्याकुल हो रहा था तो सबसे प्रथम मान-अपमान पर संयम होने लगा। जब मान-अपमान पर संयम होने लगा तो जो तृष्णा बलवती हो रही थी मान-अपमान के कारण, उसमें सूक्ष्मता आने लगी, काम की उत्तेजना समाप्त होने लगी, ब्रह्म की चरी उसे दृष्टिपात आने लगी।

रेवक ऋषि

रेवक की माँ का नाम रेदभानु था। मां ने शिक्षा देते हुए अपने पुत्र से कहा था कि हे पुत्र! तुम बड़े पवित्र हो, तुम ऐसे नक्षत्र में जन्मे

हो कि तुम्हें देखकर मेरा हृदय प्रसन्न होता है। जो बालक घर से बाहर जाकर अप्रिय कार्य करता है वह माता के गृह को तथा अन्तः-करण को दूषित करता है। जब माता का हृदय दुःखित होता है तो वह बालक उस माता के दुःखित अंकुर को स्वतः ही भोगा करता है। इसलिए हे बालक! मेरी तो अनुपम एक ही शिक्षा रहती है कि संसार में तुम्हें अपने जीवन में मेरे गर्भाशय को ऊँचा बनाना है। रेवक प्रातःकाल उठकर अपनी माता के चरण छुआ करता तथा माता सुन्दर आशीर्वाद देती थी। वे माता-पिता तथा ऋषिजनों की सेवा में संलग्न रहते थे। एक समय रात्रि में उसने अपनी माता से पूछा कि अन्तरिक्ष में जो तारामण्डल हैं वह क्या हैं? माता ने कहा कि तुम्हारे पिता कहा करते हैं कि जितने भी तारामण्डल हैं वे लोक और उपग्रह माने जाते हैं। रेवक ने कहा कि मैं उस विद्या को जानना चाहता हूँ जिससे मैं इन तारामण्डलों का जानकार बन सकूँ। माता ने कहा कि इसमें बड़े परिश्रम की आवश्यकता है। महर्षि लोमश के अनुसार तुम्हें अपने विचारों को, अपनी मानसिकता को तथा अपने आन्तरिक विचारों पर एक अनुशासन करके चलना होगा। जब तुम इसे जान सकोगे। रेवक ने माता के उपदेश को अपने जीवन में ग्रहण कर योग को जानने का संकल्प किया। उन्होंने ऋषि बनकर भृगु आश्रम में यह निर्णय दिया था कि सूर्य मण्डल में अग्नि शरीर वाले प्राणी रहते हैं और वहाँ वेद-रूपी प्रकाश भी है। (नौवां पुष्प १-४-६५ ई.)

महाराजा रेवक अपना जीवन गाड़ी के नीचे व्यतीत करते थे।

महाराज श्रुति के मन्त्री ने यह स्थिति देखकर उनसे पूछा था कि क्या आप रेवक हैं?

रेवक गाड़ीवान थे तथा ९१ वर्ष तक मौन रहकर निद्रा का पान नहीं किया था। उन्होंने भारद्वाज के इस प्रश्न पर कि जो आत्मा का ज्ञान है उसको जानने के लिए उस मूल कारण को बताइए जिससे अन्तःकरण में वे संस्कार उत्पन्न न हो सकें जिससे यह आवागमन न हो सके, उत्तर देते हुए कहा था कि इस पर मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। वे कितने सत्यवादी थे। सत्यवादी होने पर ही हृदय निर्मल और स्वच्छ बनता है। छलों से रहित हो जाता है। तब वे संस्कार स्वतः ही हृदय में नहीं पनपते जिससे मानव का आवागमन होता है। (चौदहवां पुष्प २६-३-७६ ई.)

रेवक ऋषि का सहस्रों वर्षों का अनुभव था, वे सदैव चिन्तन करते रहते थे। विज्ञान के युग में उनका स्थान सर्वोपरि था तथा आध्यात्मिक विज्ञान उनके संग रहता था। वे अपनी अनुभूतियों को प्रकट करते रहते थे। उनसे महाराजा ज्ञानश्रुति ने मृत्यु के विषय में जानना चाहा था। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

महर्षि रेवक ने जब महर्षि पिप्लाद को साधक बनाया तो पहले बारह वर्ष तक केवल वट वृक्ष का पांचांग पान कराया था। इससे उनका जीवन सुन्दर बन गया तथा मस्तिष्क दार्शनिक बन गया था। (बीसवां पुष्प २८-३-६३ ई.)

महर्षि रेवक १०१ वर्ष गाड़ी के नीचे विराजमान होकर औषधियों का पान करके योगाभ्यास किया करते थे और पूरे दार्शनिक थे।

(इक्कीसवां पुष्प १३-२-७४ ई.)

वेद रचियता ऋषियों का परिचय

आदि ऋषि अंगिरा, वायु, आदित्य और अग्नि इनकी उत्पत्ति के सन्म्बन्ध में दो मत हैं। एक मत के अनुसार वे माताओं से उत्पन्न हुए थे। अंगिरा की मां का नाम रोहिणी था, वायु की मां का नाम रेणु था, आदित्य की मां का नाम सौमभाम था तथा अग्नि ऋषि की मां का नाम करुचि था। ये ऋषि सृष्टि के आरम्भ में १,८०,०७,००,५६७ वर्ष पहले हुए थे। दूसरा मत है कि ये माता के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए थे। ये स्वतः ही परमात्मा और पृथ्वी के योग से प्रकट हो गए थे। वास्तव में सृष्टि के आरम्भ में जो आत्माएं आती हैं उनमें इतनी शक्ति होती है कि वे प्रकृति के कुछ परमाणुओं को ग्रहण करके स्वतः ही मानव जाति में आ जाते हैं। (नौवां पुष्प २९-७-६७ ई.)

प्रकृति की पाँच प्रकार की गति मानी जाती है। आत्मवेत्ता महर्षि अथर्वा तथा शौनक एकान्त स्थान पर विराजमान होकर वेद मन्त्र का अध्ययन कर रहे थे। जब एक मन्त्र को अध्ययन करके उसपर उड़ान उड़नी आरम्भ की तो शौनक ने कहा कि क्या विचार रहे हो। अथर्वा ने कहा मैं इस वेद मन्त्र को विचार रहा हूँ। इसमें आया कि संसार को आकुंचन करो। इतने विस्तृत संसार का आकुंचन कैसे हो?

शौनक ने कहा यह तो सहज है। आगे वेद मन्त्र में यह भी है कि जब तुम बाह्य जगत् में और अन्तरिक जगत् दोनों का मिलान मिलाना जानते हो तो कैसे नहीं मिला सकते। जब दोनों समन्वय करने लगे तो एक वाक्य आया कि जब इस संसार का प्रसारणवाद

समाप्त होने लगता है तो उसके पश्चात् हम इस संसार को आकुंचन कर लेते हैं। एक स्थली पर समेट लेते हैं।

आगे वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव तू इस संसार को आकुंचन क्यों नहीं कर सकता? जबकि जितना यह संसार तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है यह मन और प्राण का ही तो है। ये लोक-लोकान्तर एक-दूसरे से पृथक् दृष्टिपात आते हैं और एक लोक दूसरे में गुंथा हुआ एक-दूसरे की आकर्षण शक्ति से स्थिर हो रहा है, इन आकर्षण शक्तियों का मूल कारण वह सत् है। ऋत् और सत् है, ऋत् और सत् में यह संसार समाहित हो रहा है। ऋत् ही सत् से गुंथा हुआ है। सत् को हमारे यहाँ प्राणतत्व कहा है। ऋत् का नाम मन और सत् का नाम प्राण है। वेद का ऋषि कहता है कि यह जो मन है यह प्रकृति की सबसे सूक्ष्म धारा है जिसको आदि ऋषियों ने महतत्त्व भी कहा है इसके आँगन में प्राण है। इसको क्रेत वृतचित् तत्त्व कहा है।

हमारे इस मानव शरीर में आन्तरिक जगत् में तथा बाह्य जगत् में मन और प्राण अपना कार्य कर रहे हैं। मन विभाजन करने वाला है तथा प्राण विभाजित होता है। गति का कारण बनता है। मानव के शरीर मे जब मन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं तो वही मानव की साधना बनकर रहती है। उसी से मानव अनुशासित होता रहता है और अनुशासन ही मानव का जीवन है। अब ब्रह्मचारी अथर्वा विचारता है कि हम संसार का कैसे आकुंचन कर सकते हैं। जब मन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं, आत्मा की प्रतिभा, आत्म चेतना,

इसी में कार्य करने लगती है और वह अपने में अनुभव करने लगता है कि सर्वब्रह्माण्ड मेरे में समाहित हो रहा है।

अथर्वा और शौनक दोनों विचार रहे हैं कि हम आत्मवेत्ता बनना चाहते हैं। आत्मा को वही जान सकता है जो अपने में ही इस संसार को दृष्टिपात करता है। इस संसार को आकुंचन बना लेता है। (सत्ताईसवां पुष्प ४-५-७६ ई.)

महाभारत के उपरान्त महापुरुष

महर्षि दयानन्द अटूटी के रूप में

महर्षि अटूटी देवयान में रमण करते थे। जिनके जीवन की कुछ घटनाएं प्राप्त होती हैं। महर्षि अटूटी की माता का नाम सोमवती था जो महर्षि कोलसती की पत्नी थी। उसने अपने जीवन में सोचा कि मेरा पुत्र देवयान में विचरने वाला हो। पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् माता ने सोचा कि मैं तो अपने बालक को अटूटी नाम से उच्चारण करूंगी। जिसकी आत्मा में अटूट धारणा हो। देवताओं के लिए अपने पुत्र को अर्पण करती हूँ। उस समय उस बालक ने माता के महान् आदेशों का पालन करके, ब्रह्मचारी बन करके देवयान का प्रयत्न किया। धारणा, ध्यान, समाधियों में संलग्न होकर उस अन्तरिक्ष को और तीनों प्रकार की वायु (१) सोमहिती (२) मध्यान और (३) इन्द्र वायु में विचरने वाले बनें। माता ने उसको आदेश दिया था कि यह देव की अमूल्य निधि है। हे पुत्र! जब-जब यह प्राप्त हो जाए तू इसको ऊँचा बनाना। उसने इस अमूल्य निधि को जान कर देवयान

में रमण किया। उसी ने इस कलियुग में आकर माता के गर्भ में जन्म लिया और जन्म पा करके संसार को ऊँचा बनाने का प्रयत्न किया। (चौथा पुष्प २८-७-६३ ई.)

शमीक से दयानन्द

शमीक ऋषि की आत्मा ने यहाँ पुनः आकर जन्म लिया। यह वह महान् विभूति आत्मा थी जिसे प्यार और स्नेह में आकर उसकी माता अटूटी नाम से उच्चारण किया करती थी। उसी शमीक ऋषि की पवित्र आत्मा ने पुनः से जन्म लेकर लोककल्याणार्थ अपने जीवन को न्यौछावर किया और "दयानन्द" कहलाया। इस संसार में जन्म लेकर ही उनका नाम मूल रूप में रखा गया 'मूलशंकर'। इस मूल ने सबसे पूर्व मूल वेद को ही लिया उनके हृदय की वेदना यही थी कि मानव को मानवता के क्षेत्र में आ करके मानववाद को लाने में संलग्न हो जाना चाहिए।

राष्ट्र के प्रति उनमें यह वेदना थी कि जब वह पाश्चात्य शासकों से वार्ता करते तो स्पष्ट घोषणा करते थे कि मुझे दूसरे देश का शासक सुन्दर प्रतीत नहीं होता।

दूसरी वेदना उनके हृदय में थी कि राष्ट्र में चरित्रवाद को लाना है। इसके लिए ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों के लिए भिन्न-भिन्न विद्यालय होने चाहिएं। जिससे दोनों पवित्रता में ओत-प्रोत हो जावें।

उनकी शिक्षा पद्धति अरण्य, उपनिषद, शतपथ आदि की होगी जिससे हमारी प्राचीन ऋषि-मुनियों की पद्धति पुनः से आकर ऊँचा

संसार बन सके। जहाँ कन्याओं का आदर न होकर उन्हें कुदृष्टि से देखा जाता है। उनके दूषित विचार गृह को दूषित किया करते हैं। राष्ट्र में वे ही भ्रष्टाचार के अंकुर बन जाते हैं।

यह संसार स्वार्थियों और दुराचारियों का नहीं रहना चाहिए। जब राष्ट्र में स्वार्थवादियों का साम्राज्य हो जाता है तो वह विनाश के मार्ग की ओर भ्रष्टाचार की धारा में परिणत हो जाता है।

आज जो विज्ञान पाश्चात्य देशों से आया है वह सब हमारे दर्शन शास्त्रों में है। जैसे पतंजली के सिद्धान्तों में पूर्णतया मौलिकता है। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

निर्लिप्त दयानन्द

महात्मा दयानन्द की महत्ता इतनी विचित्र थी कि उन्हें अनेकों द्रव्य की लोलुपता दी जाती, किन्तु वे कहा करते कि ये मुझे नहीं चाहिए। मुझे इनकी इच्छा नहीं, मुझे इच्छा है अपने राष्ट्र की, अपने समाज की। मेरी पवित्र माताएं अपने कर्त्तव्य का पालन करें, वेद के अनुयायी बनें, वेद के प्रकाश को जानें, वेद की मर्मज्ञानी बनें। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

दयानन्द जी ने कहा कि मैं ऐसे राष्ट्रपिता के राष्ट्र में हूँ जहाँ मुझे कोई प्रलोभन नहीं व्याप सकता। प्रलोभन उसको व्यापता है जो प्रभु को अपने से दूर कर देता है। उनका जीवन, विचारधारा, ब्रह्मचर्य तथा तप बड़ा विचित्र था।

दयानन्द जी ने यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयत्न किया। उस

यथार्थ क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि इस राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र वाले छोड़कर चले गए। (ग्यारहवां पुष्प ३१-२-६८ ई.)

राष्ट्र सुधारक दयानन्द

महर्षि दयानन्द ने एक विचार दिया था कि राष्ट्र में अराजकता नहीं होनी चाहिए।

सब प्रजा को सुगठित विचार बनाने चाहिएं। आर्यों का एक समाज होना चाहिए तथा उनके सुगठित विचार होने चाहिएं, उन्हें वाद-विवाद से रहित होना चाहिए। दयानन्द के पुजारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि वह घृणा न करें, क्योंकि घृणा से मानव जीवन का विनाश होता है। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

विद्या प्रसारक दयानन्द

महर्षि दयानन्द ने कहा था कि बुद्धि के अनुसार संसार की प्रत्येक विद्या को अपमाने का प्रयास करो। उसी को अपनाना हमारा धर्म और मानवता कहलाती है। वह वेद की प्रतिभा, जो अन्तःकरण की प्रेरणा है, उसी के आधार पर अपने कार्य को करते चले जाओ। (बाईसवां पुष्प २९-१०-७० ई.)

महात्मा दयानन्द ने केवल वेद की प्रतिभा के लिए अपने जीवन की आहुति प्रदान कर दी। ईश्वर की प्रेरणा के आधार पर जिनका हृदय और मस्तिष्क मानसिक वेदना से परिणत होते हैं, उसका मरण हो जाता है, वे संसार के प्रलोभन में नहीं आते। सदैव संसार के द्रव्यवाद से उनका जीवन ऊँचा होता है, विशाल होता है, महत्ता

वाला होता है। इसलिए हमें उनके पदचिन्हों पर चलना चाहिए, उनकी धाराओं को अपनाना चाहिए।

महात्मा दयानन्द ने अपने विचार यथार्थ दिए हें। परन्तु उनके मानने वाले तो ऐसे अबुध मार्ग तथा ऐसे स्वार्थ में परिणत हो गए कि उनमें न द्रव्य का त्याग है, न जीवन का त्याग है। जिस बात के लिए उन्होंने अपना बलिदान किया, अपने जीवन की धारा को त्याग दिया। अरे! केवल वाणी से उच्चारण करने से संसार ऊँचा नहीं बनता या धर्म और वेद ऊँचा नहीं बनता। वेद उस कर्म से ऊँचा बनता है, जब मानव अपने जीवन को क्रियात्मक बनाता है, महान् बनाता है। (बाईसवां पुष्प २९-१०-७० ई.)

आहार के सम्बन्ध में दयानन्द

यहाँ जो भी पुरुष आया उसने मानव के आहार को मानव का आहार कहा। ऋषि दयानन्द ने कहा कि जहाँ प्राणी को अन्न प्राप्त नहीं होता, जहाँ केवल मांस ही मांस है वहाँ प्राणियों को नहीं रहना चाहिए। उनका कितना ऊँचा आदेश था। आज उनका जो अनुयायी समाज है, यह यज्ञवेदी पर विराजमान होता है। परन्तु संकल्प में बद्ध रहता है पर गृहों में नाना प्रकार के गर्भों (अण्डों) को पान करता है। कहाँ है वह ऋषि का विचार? (चौबीसवां पुष्प १८-५-७२ ई.)

महर्षि दयानन्द का पिछले जन्मों का इतिहास

दयानन्द के तेरह जन्मों की तपस्या के परिणाम से आज समाज कुछ उत्थान की ओर चला है। इस आत्मा का इससे पूर्व का जन्म

शमीक ऋषि का था। उससे पूर्व कोकोतु ऋषि, उससे पूर्व सोमपान, उससे पूर्व कुर्केतु था। (छठा पुष्प १-९-६६ ई.)

दयानन्द की महत्ता

महाभारत के पश्चात् जितनी महान् आत्माएँ संसार में उत्पन्न हुई उनमें दयानन्द तथा शंकराचार्य की महानता जैसी कोई और हों इसका कोई प्रमाण नहीं। किन्तु शंकर के अनुयायी तो ब्रह्म बनकर यह समझ बैठे हैं कि अब उनको करने को कुछ शेष नहीं। वास्तव में संसार में कार्य करने के लिए तो तब तक रहता है जब तक मानव संसार में अन्न ग्रहण करता है, जब तक कार्य करता रहता है जब तक ब्रह्म की स्थिति नहीं आती। दयानन्द के मानने वाले इतने लालायिता हो गए हैं कि ऋषि के आदर्शों को त्यागकर केवल कटुता में रह गए हैं, उदारता को उन्होंने त्याग दिया है। (छठा पुष्प ११-९-६१ ई.)

दयानन्द के विचारों को पूर्ण करने वाले आर्य होते हैं। आर्य श्रेष्ठ होते हैं, उनका कार्य है प्रकाश देना। जहाँ प्रकाश होता है वहाँ अन्धकार नहीं होता, वहाँ विवेक होता है, यथार्थता होती है। उस यथार्थता को लेकर वह भ्रमण करता है और संसार को सुगन्धि देता है।(नौवां पुष्प २९-७-६६ ई.)

दयानन्द कैसे तपस्वी तथा दृढ़संकल्पवादी थे कि जहाँ जाते थे उन पर वज्रों की वर्षा होती थी। उनके अनुयायी आज जहाँ जाते हैं उन पर पुष्पों की वर्षा होती है। किन्तु उनके वज्र तो पुष्प बन गए

और इनके पुष्प वज्र बनते जा रहे हैं। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

एकवाद और त्रैतवाद में से दयानन्द ने जो शमीक के रूप में त्रैतवाद का प्रसार किया। (ग्यारहवां पुष्प १३-४-६९ ई.)

ऋषि ने मरते समय अपने शिष्य से कहा था कि हे शिष्य! यदि तुम संसार में मेरे पथ को ऊँचा बनाना चाहते हो, यह पथ मेरा नहीं है, यह आदि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी तक का यह उद्देश्य है कि यथार्थता और वेद को अपनाते चले जाओ। मैं तो चला हूँ, जैसी प्रभु की इच्छा है उतना ही कार्य प्रभु ने मुझसे लिया है। अब मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ। परन्तु मेरी जो भूमिका है, मेरा जो विचार है वह सार्वभौम विचार होना चाहिए, वह विचार संकीर्णता में नहीं रहना चाहिए। आज स्वार्थी प्राणियों ने उनके विचारों को संकीर्ण बना दिया है, उनके विचार में अब इतना बल नहीं रहा है कि वे याज्ञिक बन सकें। क्योंकि धर्म शब्द तो व्यापक है, वह कदापि नष्ट नहीं होगा, ऋषि का वाक्य ज्यों का त्यों रहेगा। वह सदैव वायुमण्डल में रमण करता रहेगा, उनके विचार वायुमण्डल में क्रान्ति करते रहेंगे परन्तु तुम अक्रान्ति, रूढ़िवादी बन करके अपने मानवत्व और उस पथ को त्याग चुके हो, जो पथ वास्तव में आज के दिवस शरीर को त्यागकर जाने वाले का था, वह तो यहाँ से चला गया। (बाईसवां पुष्प प्रथम कथा)

दयानन्द ने मरते समय कहा था, 'परमात्मा की इतनी अनुपम कृपा थी जो इतने समय तक जीवित रह सका। अब मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। मेरी एक इच्छा थी कि शिक्षालयों में, ब्रह्मचारियों में,

ब्रह्मचारिरिणियों में और राष्ट्र में अरण्यकों और ब्राह्मणों का प्रसार हो।' (छठा पुष्प १०-१०-६५ ई.)

स्वामी शंकराचार्य

महर्षि की शोषण आत्मा ने भी संसार के कल्याणार्थ यहाँ जन्म लिया जो शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। शंकर के वेदान्त दर्शन को लेकर बढ़ें तो भी कल्याण हो जाए। क्येंकि इसके अनुसार जहाँ सबमें ब्रह्म प्रतीत होता है वहाँ न किसी से घृणा होती है और न किसी से द्वेष। वहाँ तो केवल मानवता के अंकुर होते हैं तथा एक विचित्रवाद होता है। हमें उस विचित्रवाद को अपनाना चाहिए, जिससे हम संसार में वैज्ञानिक बन सकें।

महाराजा शंकराचार्य वहाँ जाते थे जहाँ बौद्धों और जैनियों के आक्रमण होते थे। जहाँ उन्हें मृत्यु दण्ड देने तक की योजना बनाई जाती थी, उनको मानने वाले आज जो गुरु बने बैठे हैं वे जहाँ जाते हैं जहाँ पुष्प होते हैं, उनके ऊपर छत्र होते हैं। धिक्कार है उनके जीवन को। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

महात्मा शंकर से बौद्ध मत वालों ने कहा था कि आप हमारा खंडन न कीजिए। हमारा जो द्रव्य हे उसे अपनाइए। उस समय शंकर ने कहा था, मैं इस द्रव्य को क्यों अपनाऊँ? मुझे परमात्मा ने इतना ऊँचा द्रव्य दिया है जो मुझसे जाना नहीं जा रहा है, इस द्रव्य का मैं क्या करूंगा। (छठा पुष्प २८-११-६६ ई.)

शंकराचार्य तथा दयानन्द में अन्तर

शंकराचार्य लगभग २२०० वर्ष पहले हुए थे जबकि दयानन्द अभी अट्ठारहवीं शती में हुए थे।

शंकर के समय में नास्तिकवाद और बौद्धमत छाया हुआ था। दयानन्द के समय में कहीं विदेशी यवन थे, कहीं वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों द्वारा अनेकों त्रुटियाँ भरी हुई थीं।

शंकर ने राष्ट्र में धर्म के प्रसार के लिए, वैदिकता का उत्थान करने के लिए और घृणा को दूर करने के लिए राष्ट्र के चार भाग बनाए थे। चार आश्रम बना करके यह कहा कि इन आश्रमों से समाज की त्रुटि, प्रमाद तथा अज्ञानता को नष्ट करो। जो नाना प्रकार के घृणात्मक मत हैं उन्हें तपस्या तथा प्रचार द्वारा नष्ट करो, यह उसका मत था। कुछ सूक्ष्म समय में ही उन्होंने इतना कार्य किया। किन्तु वे मौलिक-विचारों को समाज के सम्मुख निर्मित न कर सके, क्योंकि वे अल्प आयु में ईश्वर को प्यारे हो गए। ठीक यही स्थिति दयानन्द के साथ रही।

दोनों ने मत-मतान्तरों का खण्डन करके वैदिक विचारधारा के प्रति आस्था उत्पन्न की और वेदों के विपरीत कार्यों को नष्ट करने का प्रयास किया।

शंकर के अनुयायी तो ब्रह्म बन गए और मूलशंकर के मानने वाले, दोनों ने ही उन पवित्र आत्माओं की बातों तथा विचारों को भुला दिया।

यथार्थ क्रान्तिकारी शंकराचार्य

महाराज शंकराचार्य के हृदय में एक विचारधारा आई कि मैं वैदिकता को ऊँचा बनाऊँ, वेदान्त को लेकर चलूँ और प्रभु की छत्र-छाया में रहूँ। ऐसा निश्चय करने के पश्चात् उनके समक्ष नाना प्रलोभन आए किन्तु वह सबको नष्ट करता रहा। अनेकों जैनियों तथा गृहस्थियों ने उन्हें प्रलोभन दिए परन्तु उस महान् क्रान्तिकारी ने कहा कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ, मैं अपने उस कार्य को करने आया हूँ जिसको करने के पश्चात् मुझे महान् राष्ट्र की प्राप्ति हो। लोलुपता को नहीं बल्कि यथार्थता को लाना चाहता हूँ।

महात्मा ईसा

महात्मा ईसा सदाचारी व ब्रह्मचारी थे। तथापि वे दार्शनिकता में अधिक पहुँचे हुए नहीं थे। उन्होंने सदैव एक आदेश दिया कि विचारों से, नम्रता से तुम किसी को धार्मिक बना सकते हो। उनके अनुयायियों ने आज तक ऐसे कार्य नहीं किए कि मुहम्मद के अनुयायियों की भाँति संग्राम करके कन्याओं को भ्रष्ट किया हो, राजनीति की बात दूसरी है। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

महात्मा ईसा ने एक वाक्य बहुत ऊँचा कहा है कि संसार में मानव को ब्रह्मचर्य व्रत से रहना चाहिए तथा ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बना लेनी चाहिए। उन्होंने अपने सदाचार के ऊपर अटल रहने के लिए तथा सेवक बनने के लिए बड़ा बल दिया है। (इक्कीसवां पुष्प २०-२-७० ई.)

महात्मा ईसा ने इस भारत भूमि पर आकर नाना प्रकार की

विद्याओं का अध्ययन किया था। आयुर्वेद की विद्या का पठन-पाठन उसके अध्ययन का मौलिक विषय था, वे ही मौलिक विचार समुद्र पार जाकर अपना कार्य करते रहे किन्तु उनके मौलिक विचारों का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र में उनके धर्म सम्प्रदाय की परम्परा का प्रसारण हुआ और वह भी रुढ़ि बन गया।

यथार्थ क्रान्तिकारी ईसा

महात्मा ईसा को यहूदी नष्ट करने लगे परन्तु उन्होंने कहा कि मुझको नष्ट कर सकते हो किन्तु मेरी जो यथार्थ क्रान्ति, आत्मविश्वास है उसे छेदन नहीं कर सकते। (ग्यारहवां पुष्प ३१-७-६८ ई.)

महात्मा ईसा, जहाँ महाराजा हरिश्चन्द्र अपने राष्ट्र को त्याग करके गंगा के तट पर रहे थे उस नगर में, उस काशी में दस वर्ष तक विद्याध्ययन करके यहाँ से गए। उन हूण जाति के व्यक्तियों ने उन्हें अपनाने का प्रयास किया। (बाईसवां पुष्प २९-१०-७० ई.)

महात्मा मोहम्मद

महात्मा मोहम्मद को महात्मा कहते हैं परन्तु वे ज्ञान में अधूरे थे और भोग-विलास में सदैव परिणत रहते थे। राष्ट्रवाद की परम्परा को तो वास्तव में ऊँचा बनाते थे परन्तु वहाँ धर्म और मर्यादा उनसे बहुत दूर थे, इतने दूर थे जितना पृथ्वी से सूर्य रहता है। (बाईसवां पुष्प २९-१०-७० ई.)

महात्मा मोहम्मद की राष्ट्रीय विचारधारा बड़ी प्रिय है, उन्होंने कहा था कि दूसरे के रक्त का पान न करो। दूसरों की बलि देना हमारे

लिए अनिवार्य है। यदि कोई मानव अपने प्यारे पुत्र को सर्वाधिक प्यारा कहकर उसकी बलि देना चाहता है तो यह उसकी अनाधिकार चेष्टा है। क्योंकि पुत्र को नष्ट करने का उसे कोई अधिकार नहीं। वह तो राष्ट्र की सम्पत्ति है तथा प्रभु की सम्पत्ति है। मोहम्मद के मानने वालों ने इस रहस्य को जाना नहीं, आत्मा का पुत्र तो मन है, इसको नष्ट करना चाहिए। बिना मन को नष्ट किए संसार मे कोई साधक नहीं बन सकता। मानव तब तक साधक नहीं बन सकता जब तक कि मन के ऊपर संयम नहीं कर लेता।

महात्मा मोहम्मद ने कहा था कि संसार में प्रेम-प्रीति से रहना चाहिए। रूढ़ियों और कुरीतियों को त्याग देना चाहिए। किन्तु उनके अनुयायियों में यह गुण कहां तक हैं? उनमें कितनी प्रीति, कितना स्नेह है तथा कितना मानवता को लाने का प्रयास करते हैं और कितना अपनत्व को ऊँचा बनाने का प्रयास करते हैं, तो निराशा ही हाथ आती है। इनका तो केवल एक ही नाद रहता है कि संसार सब यवन हो जाए और यवन के अतिरिक्त कोई प्राणी न रहे। यह विचार कोई सुन्दर नहीं है क्योंकि यह उनके स्वयं के सुकृतों को नष्ट कर देता है तथा उनकी उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है। (इक्कीसवां पुष्प २०-२-७० ई.)

मोहम्मद चाहता था कि यहाँ अच्छाइयों का साम्राज्य हो, राष्ट्र में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। राष्ट्र में वह कार्य नहीं होने चाहिएं जो मानव को क्षीण बनायें। दूसरों के चरित्र पर आक्रमण नहीं करना चाहिए। आज मोहम्मद के अनुयायी भी सुगन्धि चाहते हैं, दुर्गन्धि

नहीं। उन्हें सुगन्धि देने का प्रयास करना चाहिए, उन्हें शिक्षा देकर सुगन्धि के क्षेत्र में लाने का प्रयास करना चाहिए और उनसे कहना चाहिए कि यह यज्ञ तो सुगन्धि है, इससे वायुमण्डल पवित्र होता है। (नौवां पुष्प २८-७-६६ ई.)

यहाँ मोहम्मद के मानने वालों ने उसके विचारों को न मानकर चरित्र को महत्व दिया। उन्होंने नाना प्रकार के अपराध किए। दूसरे धर्म के मानने वालों की कन्याओं को मृत्युदण्ड देकर अपना प्रभुत्व लाने का प्रयास किया।

यह यवन समाज का सम्प्रदाय ४० वर्ष में समाप्त होने वाला है। इसका कारण यह है कि विज्ञान की धारा के आगे इसका कोई मूल्य नहीं। यह एक ऐसा समाज एकत्रित हो गया जो दूसरों के चरित्र को भ्रष्ट करते हैं तथा अपने जीवन को सुन्दर नहीं बनाते। इसलिए ४० वर्ष पश्चात् इसका केवल पोथियों में ही उच्चारण होगा। इसका मानने वाला कोई न होगा।

आज जब मानव चन्द्रमा पर पहुँच गया है तो वे कहते हैं कि चन्द्रमा पर मानव पहुँचा ही नहीं। क्योंकि उनकी पोथियों में यह विद्या नहीं है। जब विज्ञान के विचार वायुमण्डल में वायु को छूने वाले बनेंगे तो ये परमाणुवाद के आगे स्वतः परिवर्तित हो जाएँगे। आज जितनी कुरीतियां तथा दुराचार हैं इन्हें मोहम्मद के मानने वालों ने फैलाए तथा राष्ट्र के राष्ट्रों को भ्रष्ट किया। आज जब इनका कोई ब्रह्मचारी विज्ञान में जाता है तो वहाँ इनकी वह पोथी नहीं रहती। वह विज्ञान का अध्ययन करके उससे दूर हो जाता है। यवनों में ईश्वर का

एक भी वास्तविक प्रकार न रहा। यदि वह भी होता तो दूसरों की कन्याओं का भ्रष्ट करने का इनका साहस न होता। यह दुःसाहस केवल ईश्वर के न मानने वालों में ही होता है। जिस गृह को यवन खुदा का घर उच्चारण करते हैं उनमें दूसरों को नष्ट करने की योजनायें बनती हैं, राष्ट्र के विद्रोह की वार्ता प्रकट की जाती है। जो दूसरों की पुत्रियों व पत्नियों को नष्ट करने वाला गृह हो वह प्रभु का घर नहीं है, कायरों और अपराधियों का गृह है। अतः राजकर्मचारियों को तथा राष्ट्र को चाहिए कि इन पर आधिपत्य करके उनमें शिक्षालय बना दें क्योंकि इनसे राष्ट्र और समाज की हानि हुआ करती है। (इक्कीसवां पुष्प)

मोहम्मद ने अनेकों अच्छाईयाँ करने के बाबजूद एक आदेश दिया कि जो मुझे और मेरी बनाई पुस्तक को न माने उसको किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचा कर नष्ट कर दो। यह विचारों में तथा धर्म में अधूरा होने का प्रतीक है। जहाँ धर्म में अधूरापन रहता है वहाँ विचार नहीं मिलते, जहाँ विचार नहीं मिलते वहाँ स्वार्थ समाप्त नहीं होता, वहाँ मानवता कभी नहीं पनप सकती। मोहम्मद ने धर्म को व्यापक न मानकर राष्ट्र को व्यापक माना और राष्ट्रीय बनने का ही उपदेश दिया। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

बहुत सी अच्छाईयाँ मोहम्मद के द्वारा भी हैं। बहुत सी अच्छाईयाँ ईसा के द्वारा भी हैं। जितनी अच्छाईयाँ हैं वे सब वेदों में हैं। उन अच्छाइयों को एकत्रित करके अपने संस्कृति और मर्यादा को नहीं त्यागना चाहिये। (बराहवां पुष्प २९-१०-६५ ई.)

महात्मा नानक

दयानन्द से पूर्व यहाँ महात्मा नानक हुए। जिन्होंने अपना जीवन राष्ट्र के लिए न्यौछावर किया। यवनों से संग्राम करने के लिए उन्होंने एक धारा निर्धारित की। आज उसके अनुयायी हिंसा में लग गए हैं। उनको केवल त्वचा का आनन्द चाहिए। मांस भक्षण पूर्ति में ही उनका जीवन सलंग्न रहता है। वे स्वार्थी बनकर राष्ट्र का विनाश करने वाले बन बैठे हैं। जो विनाश को प्राप्त हो रहे हों वे नानक की पूजा क्यों करें। महात्मा नानक की वहीं वेदना थी जो महर्षि पातंजलि, प्रह्मणो, अगस्त्य आदि की थी। स्वार्थ के कारण अब आर्यों की पद्धति नष्ट हो रही है। अब महात्मा नानक की इच्छा पूर्ति भी दयानन्द के अनुयायियों को ही करनी है। (छठा पुष्प २-७-६६ ई.)

महर्षि नानक वह महान् आत्मा थी। जिन्होंने संसार का उत्थान किया, धर्म की रक्षा की। परन्तु उनके अनुयायी उनके मार्ग से इतने दूर चले गए हैं कि वे दूसरों का अपमान करना जानते हैं। परन्तु अपने को ऊँचा बनाना नहीं चाहते। उन्हें अपने क्षत्रियपन को अपनाना चाहिए तथा ऊँचा बनकर चलाना चाहिए। अपनी रसना के आनन्द में नहीं आना चाहिए बल्कि अपने बल की रक्षा करनी चाहिए। नानक के अनुयायियों का पाँच चिन्हों का अपनाना वह रूढ़िवाद है। जब क्षत्रियपन की आवश्यकता थी उस समय इसका महत्व था। आगे तो विज्ञान की दृष्टि से ही इस पर विचार करना चाहिए। (दसवां पुष्प २६-७-६३ ई.)

महात्मा नानक ने कहा था कि रक्त का वस्त्र पर चिन्ह लग जाने

से वह जल से धोने पर भी नहीं जाता, तो मानव के हृदय तथा अन्तःकरण में जब रक्त जाता है तो क्या वह किसी समय नष्ट हो सकता है। महात्मा नानक ने मानव बल को ऊँचा बनाया। अपने प्यारे शिष्यों को उपदेश दिया कि धर्म की रक्षा करो। उसके अनुयायियों ने वास्तव में धर्म की रक्षा की। वन्दा वैरागी ने अपने शरीर को यवनों द्वारा नोचे जाने पर भी यही कहकर मग्नता व्यक्त की कि यह शरीर धर्म की रक्षा के लिए जा रहा है। (छठा पुष्प १९-१०-६८ ई.)

महात्मा नानक ने कहा था कि रक्त की एक बूंद वस्त्र को नष्ट कर देती है। अरे मानव! तू नाना प्रकार के प्राणियों का रक्त पान करता है तो तेरा अन्तःकरण कितना दूषित हो गया है। उनमें कितने रक्त भरे हिंसा के चिन्ह हो गए हैं। तू कितना दूषित हो गया है कि रक्त के चिन्हों को नष्ट नहीं कर पाता। आज नानक के पुजारी क्या कर रहे हैं यह सर्व-विदित है। (इक्कीसवां पुष्प २०-२-७० ई.)

नारद की पाप संचालन कथा का सारांश

नारद ने गंगा स्नान को जाती हुई प्रजा से पूछा कि वे गंगा स्नान को क्यों जा रहे हैं? उत्तर मिला, पापों को छोड़ने। गंगा ने बताया कि वे सब पापों को एकत्रित करके समुद्रों को दे देती है। समुद्र ने कहा कि वे इन्हें मेघों को दे देते हैं, मेघों ने कहा कि वे पुनः वृष्टि द्वारा प्रजा तक पहुँचा देते हैं। अतः जिसके पाप कर्म हैं उन्हीं के पास लौट जाते हैं। (आठवां पुष्प ६-११-६२ ई.)

ऋषियों के संवाद

महर्षि याज्ञावल्क्य व मैत्रयी का शास्त्रार्थ

प्रश्न-(मैत्रेयी)-प्रभु आप ब्रह्मवेत्ता हैं। मैं यह जानना चाहती हूँ कि गृह का वंश कैसे समाप्त हो जाता है।

उत्तर-(याज्ञवल्क्य)-हे देवी! मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि जिस गृह में पति-पत्नी के विचारों में सुगठितता नहीं रहती, विचारों में भ्रष्टता आ जाती है और वह अनेक वंशों तक चली जाती है। एक वंश से दूसरे वंश में इस प्रकार १५ वंश जिनके चरित्रहीन रह जाते हैं उनका वंश समाप्त हो जाता है।

व्याख्या-गृह का नरक उस काल में बना करता है जब पुरुष अथवा गृहपति अपनी गृहणी को त्याग करके अपने संस्कार के जो वचन हैं उनको त्याग देना है। जैसे संस्कार का ब्राह्मण उपदेश देता है कि यह पत्नी है। परन्तु इन वचनों को समाप्त करके गृहपति दूसरों की कन्या अथवा पुत्रियों अथवा पत्नियों को कुदृष्टिपात करता रहता है तो उस वीर्य-रस से नेत्रों के द्वारा कुदृष्टि होते ही सुकृत होना आरम्भ हो जाता है। यह दर्शन है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार होती है कि किसी कन्या को कुदृष्टिपात करते ही उस मानव के हृदय में एक कम्पन्नता होने लगती है। हृदय में एक श्वेति नाम की नाड़ी होती है। उस नाड़ी का सन्म्बन्ध पुरीतत से होता है और पुरीतत नाड़ी का सन्म्बन्ध इडा पिंगला से होता है। जिस समय वह कुदृष्टि होने लगता है तो उन सब नाड़ियों का सन्म्बन्ध नेत्रों से होता है। उन नाड़ियों के द्वारा तथा नेत्रों के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य अन्तःकरण से समाप्त होने लगते हैं क्योंकि कुदृष्टि करना ही मानव के द्वारा एक

अपराध है, पाप है। वह पाप इसलिए है, क्योंकि उसमें शंका, लज्जा है। वह शंका, लज्जा का मूल केन्द्र बन जाता है। लज्जा शंका के मूल केन्द्र बन जाने से मानव के पुण्य समाप्त हो जाते हैं। जो मानव अपनी इन्द्रियों को वश में न रखकर अपने पुण्य समाप्त करने लगता है, उसे जन्म-जन्मान्तरों में न जाने क्या-क्या बनना पड़ेगा, यह कोई नहीं जान पाता। विचार यह है कि परस्त्रीगामी बनना जो है वह राष्ट्र के लिए, समाज के लिए, गृह के लिए, सामाजिक और आत्मिक पुण्य दोनों समाप्त हो जाने से वंश का नाश करने वाला बन जाता है। इसलिए वह जो वीर्य रस है। जो अन्न का रस है, वनस्पतियों का रस है उसका वह रस दूषित हो जाता है उस रस के दूषित होने पर शरीर में जो चेतना होती है, उस चेतना में जैसे अन्तरिक्ष की विद्युत सुकृत का हनन कर लेती है। इसी प्रकार वह जो रस है और वह जो कामना की अग्नि जागरूक होती है वह कामना यदि पूर्ण नहीं होती तो उसके हृदय में एक ऐसी वेदना होती है। वह वेदना वीर्य रस में जा करके वीर्य कणों को समाप्त करने लगती है। जब उसके कण समाप्त हो जाते हैं, उसके कणों में जब अप्रियता आ जाती है। तो वह गृह नारकीय बन जाते हैं। इसी प्रकार एक परमाणु, दूसरा परमाणु, तीसरा परमाणु आदि पन्द्रह वंश के पश्चात् उसका शरीर ऐसा निर्जीव बन जाता है कि उस मानव के ब्रह्मचर्य में वे सुकृत नहीं रहते, जिससे संसार में पुत्र की उत्पत्ति हो।

प्रश्न-इसमें प्रभु की क्या विचित्रता है?

उत्तर-वह जो प्रभु है उसका रचाया हुआ जो नियम है, उसकी जो

वेद रूपी पतित पावनी विद्या है, गायत्रणी है जो गाई जाती है उसके आधार पर अपने जीवन को बनाना, तप करना, एक-एक कार्य हमारे उद्देश्य से नहीं केवल परोपकार से पिरोया हुआ है। ऋण से उऋण होने का प्रयास हो। इससे हमारा जीवन एक महत्ता में परिणत होता रहता है। वही एक महत्ता वाला जीवन है। हे मैत्रेयी! संसार में ऊँचा बनना है तो आज मेरा यह विचार है।

प्रश्न-प्रभु जिस मानव का कोई सन्म्बन्धी हो, क्या वह सन्म्बन्ध पूर्व जन्म का नहीं हो सकता?

उत्तर-नहीं, यह जो चरित्र की आभा है यह पूर्व संस्कारों से सम्बन्धित नहीं है। यह रज से सम्बन्धित रहता है और माँ के गर्भ में जब बालक पनपता है तो माता-पिता दोनों के ही रज-वीर्य से ही उसका निर्माण होता है। वह संस्कार जो रक्त में है जो संस्कार माता ने बनाए हैं और जो गृह के वातावरण से बनते हैं, जो गृह में परमाणुवाद हैं उसके आधार पर नवीन संस्कार बनते रहते हैं और उन संस्कारों से मानव का जीवन चरित्र बनता है। कुछ संस्कार होते हैं, कुछ संस्कार गृह में, वातावरण में बनते हैं। अतः हमें विचारना चाहिए कि गृह में कैसा परमाणु है। हमारे यहाँ जब ऋषि-मुनि सन्तान को जन्म देना चाहते थे, तो उस समय पर्वतों के ऐसे सुन्दर वातावरण में चले जाते थे जहाँ प्राण वायु अधिक प्रदान की जाए। जहाँ सुगन्धि हो, औषधि हो। माता के शरीर को छूने वाला परमाणुमात्र हो। उन परमाणुओं में से परमाणु अन्तरिक्ष से आते हों, कुछ वातावरण वनस्पतियों के हैं, कुछ विचारों के हैं। उन परमाणुओं

से माता के शरीर से गर्भाशय की स्थापना होती है। उसका उन्हीं विचारों से निर्माण चलता है। कुछ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार भी उसके साथ होते हैं।

प्रश्नों के इन उत्तरों का जानकर मैत्रेयी ने यह जान लिया और कहा कि हे ऋषियों! हे दिग्ध! हे अर्द्धभाग! ये ब्रह्मवेत्ता हैं, ये हर विषय पर अनुसन्धान करने वाले हैं। अन्त में मैत्रेयी ने यह कहा कि प्रभु मैं आपको वरना चाहती हूँ। ऋषि बोले, हे देवी! यह तुम क्या उच्चारण कर रही हो? ऐसा कैसे होगा?

मैत्रेयीः भगवन् मेरा तो यह विषय बन गया है। मैं आपके बिना इस संसार में नहीं रह सकती। क्योंकि जो ब्रह्मवेत्ता के चरणों में नहीं रह सकता वह अभागा है।

याज्ञवल्क्य-हे देवी! ऐसा कैसे हो सकता है कि मेरा तुम्हारा पति-पत्नी का सन्म्बन्ध बने यह मैं कैसे स्वीकार करूँ?

मैत्रेयी-प्रभु! यह तो हो गया। मैंने संकल्प कर लिया है, मैं संकल्पबद्ध हूँ, परन्तु मेरा उद्देश्य यह नहीं कि मैं आपके गृह में प्रविष्ट होकर केवल वासना के अधीन हो जाऊँ, मेरा उद्देश्य है कि मेरी वासना आपके ब्रह्म-ज्ञान से समाप्त हो जाए।

यह सुनकर ऋषि का हृदय गद्गद् हो गया। उन्होंने कहा कि हे देवी! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। परन्तु यदि जीवन में कामना का उद्देश्य है, यह उद्देश्य है कि ब्रह्मवेत्ता है। क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि बहुधा प्रकृति का वातावरण ब्रह्म के विचारों को प्रकृति में लीन होने के लिए बाध्य कर देता है। जहाँ साधक साधना करता है, ब्रह्म

में जाने का प्रयास करता है तो प्रकृति के ऐसे-ऐसे आवेश उनके समीप आते हैं। उन भावावेशों में यदि वह आ गया तो साधना समाप्त हो गयी। प्रभु की आभा में आभायित नहीं होता। वह प्रकृति के आँगन में रमण कर जाता है। हे देवी! क्या तुम्हारा यह उद्देश्य है, तो मैं तुम्हें स्वीकार नहीं करूँगा। क्योंकि मैं साधक हूँ, मैं प्रभु की साधना करता हूँ।

मैत्रेयी-प्रभु! ऐसा नहीं होगा, क्योंकि मुझे संसार की कोई कामना नहीं है।

याज्ञवल्क्य-हे देवी! वेद कहता है, ऋषि कहता है कि द्वितीय पत्नी के आ जाने पर मानव के, पुरुष के पुण्य का क्षय हो जाता है। परन्तु मेरी पत्नी एक है कात्यायनी।

मैत्रेयी-प्रभु! मुझे इससे कोई सरोकार नहीं। मैं तो ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए, ब्रह्मवादिनी बनने के लिए आपके चरणों में आना चाहती हूँ। जब इस प्रकार कहा तो ऋषि-मुनियों की सभा ने एक स्वर में कहा कि जब यह उच्चारण कर रही है तो आप इसे स्वीकार करो। ऋषि-मुनियों की वार्ता को याज्ञवल्क्य ने समाप्त नहीं करना चाहा। तब उनका संस्कार हुआ, संस्कार के पश्चात् विजय घोष हुआ, वहीं महत्ता है। (पच्चीसवां पुष्प १२-३-७३ ई.)

शाण्डिल्य गौत्र की कन्या के साथ शास्त्रार्थ

एक समय शदस मुनि महाराज के यहाँ एक सभा हुई। शदस मुनि के आश्रम के निकट ही भुंजु मुनि तथा श्वेतकेतु मुनि का एक आश्रम था, उनके आश्रम में एक कन्या रहती थी। महर्षि शाण्डिल्य

गौत्र में उस कन्या का जन्म हुआ था। महर्षि शाण्डिल्य ने ऋषियों द्वारा पुनीत विद्या का पठन-पाठन कराया। भुंजु मुनि ने उसे ब्रह्म-विद्या तथा दार्शनिक-विद्या का अध्ययन कराया। उसमें आयुर्वेद की विद्या भी थी। सब विद्याओं का अध्ययन कराते हुए उस ब्रह्मचारिणी को ब्रह्मवेत्ता बनाया। उसकी आयु १५ वर्ष की थी किन्तु जितनी विद्या ३१ वर्ष की आयु में प्राप्त की जाती है, वह प्राप्त कर चुकी थी। ३१ वर्ष का ब्रह्मचारी उसकी तुलना नहीं कर सकता था। शदस मुनि के यहाँ सभा इस उपलक्ष में थी कि कोई ब्रह्मवेत्ता उस कन्या से शास्त्रार्थ करे।

शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले ऋषि-मुनियों में, ब्रह्मवेत्ताओं में केवल याज्ञवल्क्य ब्रह्म-निष्ठ कहलाते थे। उनका जो ब्रह्म-वाक्य, उनकी जो ब्रह्म-वेदना थी वह विचित्रत्व में परिणत रहती थी। सभा में भुंजु मुनि ने महर्षि याज्ञवल्क्य से कहा कि महाराज! आज की सभा का विषय यह है कि संसार के तीन पदार्थ अनादि हैं-प्रकृति, आत्मा, परमात्मा इन तीनों के स्वरूप का वर्णन करने के लिए, अपनी-अपनी मीमांसा करने के लिए इस सभा में एकत्रित हुए हैं। यदि ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में बुद्धिमानों में विचार-विनिमय नहीं होगा तो यह ब्रह्म-विद्या लुप्त हो सकती है। आत्मा का विषय, प्रकृति का विषय लुप्त हो सकता है। परन्तु इनके पृथक्-पृथक् स्वरूप को जानना हमारा कर्त्तव्य है। वह कर्त्तव्य हमारी बालिकाओं में होना चाहिए, जिससे समाज को उन्नत बना सकें और अपने गृह को प्रबल बना सकें।

सभा में शाण्डिल्य गौत्र में जन्मी कन्या को याज्ञवल्क्य के समक्ष

शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत किया गया और भुंजु ऋषि ने उसकी विद्वता का परिचय दिया कि यह कन्या १५ वर्ष की अबोध है परन्तु शिक्षा में यह बड़ी पारायण है। जब वह ऋषि-मुनियों के मध्य में होती है तो इसमें ऐसी विद्या इसके समीप आ आती है जैसे वर्षाकाल के समय में इन्द्र नाम की वायु के समीप मेघमण्डल आ जाते हैं। सूर्य की तीखी किरणों होते ही विद्युत के प्रकाश का समय आ जाता है। इसी प्रकार इस कन्या के समीप वह विद्या ऐसे शब्द, ऐसे खण्ड, ऐसे गायत्री उत्पन्न होने लगती है, जैसे वर्षाकाल में अगवार वनस्पति का जन्म होता है।

कन्या-हे ऋषिवर! आपको ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। मैं जानना चाहती हूं कि ब्रह्मवेत्ता कौन होता है?

याज्ञवल्क्य-हे देवी! ब्रह्मवेत्ता वह होता है जो ब्रह्म की विद्या को जानता है।

कन्या-ब्रह्मवेत्ता और कौन है?

याज्ञवल्क्य-ब्रह्मवेत्ता वह होता है जो ब्रह्म की विद्या को चर लेता है, तथा जो ब्रह्म को अपने में तथा अपने को ब्रह्म में स्वीकार कर लेता है।

कन्या-क्या आप जानते हैं कि संसार मेरे में है और मैं संसार में हूँ?

याज्ञवल्क्य-ऋषि आश्चर्यचकित होकर बोले, हे देवी! तुम यह क्यों जानना चाहती हो।

कन्या-आप जो यहाँ शास्त्रार्थ करने के लिए उपस्थित हुए हैं, मैं

यह नहीं जान पाई हूँ कि जब आप संसार को अपने में स्वीकार करते हैं और अपने को संसार में और संसार अपने में स्थित हो रहा है तो आप शास्त्रार्थ किससे कर रहे हैं?

याज्ञवल्क्य-हे देवी! वाक्य तो बड़ा प्रियत्तम है। परन्तु मैं तुम्हारे मन्तव्य को नहीं जान पाया हूँ।

कन्या-हे ऋषिवर! आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं। जब आप मेरे मन्तव्य को नहीं जान पाए तो भगवन्! मैं आपको अपना मन्तव्य नहीं जनाना चाहती। मैं इस विद्या को क्यों जताऊँ। क्योंकि मैं भी आत्मा हूँ, आप भी आत्मा हैं। आत्मा का कोई लिंग नहीं होता, यह आत्मस्वरूप चेतना है। जब चेतना, चेतना से मिलान करता है, चेतना-चेतना का समागम होता है तो उस समय प्रभु! यह प्रसंग समाप्त हो जाता है।

याज्ञवल्क्य इस पर मौन हो गए और कहा कि यह शास्त्रार्थ आज नहीं हो पाएगा। क्योंकि इन वाक्यों के लिए मैं अध्ययनशील बनूँगा और मैं तप में परिणत होना चाहता हूँ।

कन्या-बहुत सुन्दर, मैं ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में आपका अपमान नहीं चाहती। मेरे पाँच प्रश्न हैं, मेरे पाँचों प्रश्नों का उत्तर देना हो तो मेरे सम्मुख आइये अन्यथा आपका मेरे सम्मुख आने का कोई मन्तव्य नहीं है। मेरा आचार्यों से यह प्रश्न है, मैं जब वेद का अध्ययन करती थी। उस समय गायत्री माँ का पठन-पाठन करते हुए मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे इन पाँचों प्रश्नों का उत्तर दे दे, उसी से मेरा संस्कार होगा, वही मेरा पति बन सकता है। मैंने शाण्डिल्य गौत्रमें जन्म लिया है। शाण्डिल्य गौत्रब्रह्मवेत्ताओं का समाज रहा है

जिसमें प्रायः ब्रह्मवेद की ही विवेचना होती रहती है।

याज्ञवल्क्य-मैं तुमसे कल ही शास्त्रार्थ कर पाऊँगा। शास्त्रार्थ क्या है, विचार-विनिमय करना है? उत्तर प्रश्नावली चलनी है। मुझे तुम्हारे से यह मन्तव्य नहीं है कि मैं संस्कार कराऊँ। मेरा तो एक ही मन्तव्य है कि तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर भली-भाँति दे सकूँ। इस पर दोनों मौन हो गए तथा प्रसंग द्वितीय दिवस के लिए हो गया।

अगले दिन पुनः ऋषियों का समाज एकत्रित हो गया। वह कन्या पुनः याज्ञवल्क्य मुनि के समीप आ गई। याज्ञवल्क्य बोले कि हे देवी! मैं रात्रि में गायत्री माता की गोद में जा पहँचा। मैंने ऋचाओं से पूछा कि विदुषी कन्या के प्रश्नों का उत्तर दिया जाए। तो हे देवी! मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आया हूँ। शास्त्रार्थ आरम्भ-

याज्ञवल्क्य-यह जो आत्मा प्रकृति के आंँगन में शुद्ध हो रहा है परन्तु यहाँ एकता का उपराम हमारे समीप शुद्ध नहीं हो रहा है। इस शुद्धता को तुम्हारे समीप लाना चाहता हूँ।

कन्या-यह तो मेरा प्रश्न है। यह तो मैं जान रही हूँ कि जो शब्द में उच्चारण कर रही हूँ यह शब्द प्रकृति की सहकारिता से हो रहा है। यदि प्रकृति का मन और बुद्धि दोनों का समावेश नहीं होगा तो शब्दों की उपलब्धि नहीं हो सकेगी। यह जो शब्दों की उत्पत्ति है, यह मन के विभाजनवाद से हो रही है। आत्मा का गुण विभाजनवाद है नहीं, इसलिए भगवन्! मैं आपके वाक्यों को स्वीकार करती हूँ। जब त्रैतवाद की पुष्टि हो गयी तो उन्होंने तृतीय प्रश्न किया।

प्रश्न-मानव के द्वारा कौन सी आभा है जिससे यह प्रकृति पर

विजय पा सकता है?

याज्ञवल्क्य-हे देवी! वह जो आभा है वह अन्तःकरण को विजय करना है। मन, बुद्धि और अन्तःकरण तीनों एक में समावेश हो करके अहø ार में परिणत हो जाते हैं तो इस प्रकृति पर मानव विश्राम करने लगता है और प्रकृति की आभा को त्याग करके अन्तःकरण इतना स्वच्छ बन जाता है कि वह केवल क्षेत्र रह करके धर्म द्वारा मोक्ष को पा जाता है और प्रकृति से उपरामता को प्राप्त होता है। तो प्रकृति का जो क्षेत्र है वह इससे छूट जाता है, इससे पृथक् होने पर हम परमात्मा के आँगन में स्वेच्छा पूर्वक विचरण करने लगते हैं, यह उत्तर उसकी समझ में आ गया और कहा कि धन्य हो।

कन्या-मानव के द्वारा जो दो नुकीले बाण हैं वे कौन से हैं जिनसे यह संसार के क्षेत्र में भी और परमात्मा के क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त कर सकता है?

याजवल्क्य-हे देवी! धर्म कहता है कि वे दो नुकीले बाण ऋत् और सत् हैं। जिनको धारण करने से दोनों में सफलता प्राप्त कर सकता है। ऋत् कहते हैं प्रकृति को और सत् कहते हैं ब्रह्म को। जो ब्रह्म और ऋत् दोनों का मिलान करना जानता है दोनों को एक सूत्र में लाता है और ला करके अपनेपन में परमात्मा को एक-एक कण में दृष्टिपात करके अपराध से रहित हो जाता है। जो मानव इस संसार में दोनों को धारण करता है इस संसार क्षेत्र से वह पार हो जाता है।

इस पर कन्या मौन हो गई और आगे कहा कि भगवन् अब आप मुझे अपने में अपना लीजिए। मेरे ये प्रश्न थे। अब मैं गृह में प्रविष्ट

होना चाहती हूं। आप वास्तव में ब्रह्मवेत्ता हैं। आगे का प्रश्न मैं इसलिए नहीं जानना चाहती, क्योंकि मैं अपना और आपका अपमान इस ब्रह्मवेत्ता समाज में नहीं चाहती। अब भगवन मेरे साथ संस्कार कीजिए। ब्रह्मवेत्ताओं ने इस वाक्य को स्वीकार किया। शांडिल्य मुनि उस सभा में उपस्थित थे, उन्होंने कहा, कन्या का जन्म मेरे गौत्रमें हुआ है। महात्मा भुंजु गौत्रमें इनकी शिक्षा हुई है। त्रयी विद्या का इन्होंने अध्ययन किया है। उनका संस्कार हुआ। संस्कार हो करके गृह मुजिया पुरी में उनका प्रवेश हुआ। मुजिया पुरी में जब वे प्रविष्ट हुए तो मुजिया पुरी में उनका एक स्थान पृथक् था उस आश्रम में प्रविष्ट हो गए। (चौबीसवां पुष्प ३-१२-७३ ई.)

महर्षि याज्ञावल्क्य व गार्गी का शास्त्रार्थ

गार्गी आचार्य कुल में-जिस समय चक्राणि गार्गी यौगिक प्रक्रियाओं को जानने के लिए आचार्य कुल में पहुँची तो आचार्य से प्रश्नोत्तर हुए।

आचार्य : तुम क्या जानना चाहती हो?

गार्गी : यह संसार किसमें ओत-प्रोत है?

आचार्य : यह संसार पृथ्वी में ओत-प्रोत है।

गार्गी : यह पृथ्वी किसमें ओत-प्रोत है?

आचार्य : पृथ्वी जल में ओत-प्रोत है।

गार्गी : यह जल किसमें ओत-प्रोत है?

आचार्य : जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष महत् में, महत्त्व इन्द्र लोकों में, इन्द्रलोक प्रजापति में, प्रजापति हृदय

में ओत-प्रोत हो जाता है। जब हृदय और श्रद्धा दोनों की एक समता हो जाती है तो योगी ध्यानावस्थित हो जाता है। जब उसकी योग में प्रवृत्ति हो जाती है तो हृदय की प्रवृति उज्ज्वल हो जाती है। जब हृदय तथा ब्रह्म के जगत् रूपी हृदय का मिलान होता है तो दोनों की एक प्रतिष्ठा हो जाती है। उस समय महापुरुषों को ऋषि की उपाधि प्रदान की जाती है। यह हृदय ही मानव की प्रतिष्ठा है तथा हृदय ही जगत् का कृत्य है। जिसको ऋत् कहा जाता है तथा जो सदैव सत्यता में परिणत रहता है। यह जगत् बाह्य-हृदय है, जो प्रकृति का हृदय है तथा ब्रह्म की चेतना का हृदय है और आत्मा का हृदय मानव का हृदय है। जब इन दोनों की प्रतिष्ठा एक में हो जाती है तथा एक ही सा निदान हो जाता है तो उस समय व महान् पुरुष एक ही आसन पर विराजमान होकर तथा ध्यानावस्थित होकर अपने हृदय में ही इस संसार को अनुभव करने लगता है। यह स्थिति उस समय आती है जब सर्वप्रथम जनता-जनार्दन को जाना जाता है। जनता-जनार्दन को तभी जाना जा सकता है जब मानव की प्रवृत्तियों में अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता। जब इन्द्रियों के विषय की सामग्री बनाकर हृदय-रूपी यज्ञशाला में उसकी आहुति दी जाती है। हवि देने के पश्चात् मानव सब इन्द्रियों को अपने में समेटकर हृदय में ध्यानावस्थित हो जाता है। (बीसवां पुष्प १८-२-७० ई.)

जनक की सभा में याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद

ब्राह्मण सभा के प्रश्न-यह प्रकृति क्या है?

याज्ञवल्क्य का उत्तर-प्रकृति शून्य तथा निष्क्रय है।

प्रश्न-इसमें क्रिया क्या है?

उत्तर-यह क्रिया प्राण है।

प्रश्न-यह प्राण का मूल क्या है?

उत्तर-यह मूल परमात्मा है।

प्रश्न-प्राणियों में विभाजन करने की सत्ता क्या है?

उत्तर-प्रकृति की जा तन्मात्राएँ हैं और पंचतन्मात्राओं का मंथन किया हुआ जो एक मन होता है। यह मन इन महान् प्राणों का मन्थन करता चला जा रहा है।

प्रश्न-आत्मा क्या पदार्थ है?

उत्तर-आत्मा एक चैतन्य पदार्थ है, वह परमपिता परमात्मा के आँगन में जाने के पश्चात् महान् बन जाता है।

प्रश्न-यह आत्मा शरीर में क्यों रहता है?

उत्तर-शरीर में आने का आत्मा का उद्देश्य यह है कि यह संसार में प्रयत्नशील रहे। क्योंकि आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की धाराएँ होती हैं। जहाँ ज्ञान और प्रयत्न होते हैं, वहाँ इच्छाएँ होती हैं। जहाँ इच्छाएं होती हैं वहाँ मन इत्यादि परिवार होता है। जब यह आत्मा शरीर में आता है तो इच्छाएँ प्रबल होती हैं। इच्छाओं के अनुकूल प्राणी कर्म करता है। आत्मा के शरीर में आने का उद्देश्य केवल यह है कि हम कर्मशील बनें, कर्म के उपासक बनें, क्योंकि कर्म हमारे यहाँ मुख्य प्रधान माना गया है।

प्रश्न-हम कर्म क्यों करें?

उत्तर-कर्म इसलिए किया जाता है क्योंकि उससे मूल संस्कार

बनते हैं। यह शरीर होगा तो मूल संस्कार बनेंगे। कर्म नहीं करोगे तो भी संस्कार बनेंगे, कर्म करोगे तो भी संस्कार बनेंगे। इसलिए ऊंचे कर्म करो, ऊँचे कर्मों से चित्त में सुन्दर अंकुर विराजमान होंगे। जिससे तुम्हारा जीवन महान् प्रफुल्लित और विचारशील बन सकता है। अन्तःकरण में ऊँचे संस्कार विराजमान होकर इस संसार सागर से पार हो जाएंगे।

गार्गी के प्रश्न-तारामण्डल में जो प्रकाश की ज्योति है वह क्या है?

याज्ञवल्क्य का उत्तर-तारामंडलों में जो प्रकाश है वह परमपिता परमात्मा का महत् है। सृष्टि के आरम्भ में जब अन्धकार होता है तो उस समय परमात्मा से एक महत् चलता है और उस महत् का मिलान प्रकृति के परमाणुओं से होता है। प्रकृति के परमाणुओं में कम्पन्नता आ जाती है। जब प्रकृति में कम्पन्नता आई तो उसकी कम्पन्नता से अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले जो परमाणु थे उनमें कम्पन्नता आई। उसमें कम्पन्नता आने के पश्चात् पृथ्वी के परमाणुओं में कम्पन्नता आई और यह प्रकृति का एक महान् पिण्ड बन गया। पिण्ड बन जाने पर परमात्मा का जो महत् था, वह और भी प्रभावित हुआ तो उस पिण्ड में नाना प्रकाश के कण हो गए। पिण्ड में जो प्रकृति थी और पिण्ड का जो मन के सहित विभाजन हुआ, उससे सूर्य-मण्डल बन गया और कोई चन्द्र-मण्डल इस प्रकार की ब्रह्माण्ड में अरबों-खरबों और खरबों से भी कई खरब मण्डल बन गए, वह परमात्मा का ही महत् था। उसी महत् से प्राण-शक्ति नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों को क्रियाशील बना रही है। इस प्रकार तारामण्डल

में जो प्रकाश है वह केवल प्राण का है। इस प्राण के सन्म्बन्ध से विद्युत उत्पन्न होती है। यह उस विद्युत का ही चमत्कार है।

प्रश्न-हमारा बुद्धि का केन्द्र, मन का केन्द्र तथा तन्मात्राओं का जो केन्द्र है, वह क्या है?

उत्तर-हमारे जो विचार-विनिमय का केन्द्र है, उसी को बुद्धि का केन्द्र कहा जाता है। मन, बुद्धि के कणों तथा तन्तुओं को बिखेरने का कार्य करता है या किसी वस्तु को बाह्य रूपों से लाता है और बुद्धि के केन्द्र को पहुँचा देता है। बुद्धि इसको निर्णात्यामक करती है, उस पर निर्णय लेती है। प्रकृति की पाँच तन्मात्राएँ होती हैं, जो हमारे मन के पिछले भाग मन और बुद्धि के मध्य रहती है। इससे मन और बुद्धि दोनों को सहायता प्राप्त होती है।

प्रश्न-क्या हमें बुद्धि से कार्य हर समय करना चाहिए?

उत्तर-हमें बुद्धि से ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिए। बुद्धि से यथार्थ वाक्य को विचारना चाहिए। जब बुद्धि सामूहिक और साम्य होती है तब निद्रा की अवस्था में मन, बुद्धि और आत्मा के सहित हम परमपिता परमात्मा से मिलान करते हैं।

प्रश्न-हमारे शरीर में ओज क्या है?

उत्तर-हमारे शरीर में ओज ब्रह्मचर्य है।

प्रश्न-क्या यह ब्रह्मचर्य पृथ्वी है, ग्रह है?

उत्तर-यह पृथ्वी का ग्रह नहीं, प्रकृति का ओज है। पृथ्वी को तो हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा है, क्योंकि यह संसार को बसाने वाली है।

प्रश्न-परमपिता परमात्मा को क्या स्वीकार करें?

उत्तर-जो पाप-पुण्य से रहित हो, वह हमारा परमपिता परमात्मा है।

प्रश्न-जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है, पाप ही पाप प्रतीत होता है, यह क्या है?

उत्तर-ऐसा नहीं है, जो भी प्रतीत होता है वह वास्तव में ज्ञान नहीं। विद्या न होने के कारण संसार हमें अन्धकारमय प्रतीत होता है। (सातवां पुष्प ७-१०-६६ ई.)

निष्कर्ष-माता गार्गी के अनेकों प्रश्नों से याज्ञवल्क्य अन्त में मौन हो गए। किन्तु गार्गी ने उन्हें ब्राह्मणों द्वारा अपमानित होने से बचाने के लिए उन्हें सबसे अधिक बुद्धिमान घोषित किया।

गार्गी तथा ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य के प्रश्नोत्तर

गार्गी का प्रश्न-यह जगत् जिसमें ब्रह्म-समाज है, मानव राष्ट्र है। राष्ट्र के भेदन हैं, नाना प्रकार के प्राणी हैं, नाना प्रकार की वनस्पतियाँ-स्थावर, जंगम, अण्डज, उद्भिज चारों प्रकार की सृष्टियाँ हैं। वसुन्धरा के गर्भ में खनिज तथा खाद्य हैं, किसमें प्रतिष्ठित हो रहा है।

उत्तर-हे ऋषिकन्या! इस जगत् की प्रतिष्ठा पृथ्वी में है, इस पृथ्वी को वसुन्धरा कहते हैं। क्यों इसमें हम सब वशीभूत हैं। जब बालक माता के गर्भ में वशीभूत रहता है तो माता को भी वसुन्धरा कहा जाता है। पृथ्वी के नाना पर्यायवाची शब्द हैं जैसे-वसुन्धरा, गौ, अहल्या, रेवनी आदि। यहाँ वसुन्धरा का अभिप्राय केवल यह है कि

जिसमें हम वशीभूत रहते हैं। इसी वसुन्धरा के गर्भ में यह दृष्टिपात आने वाला जगत् प्रतिष्ठित है।

प्रश्न-पृथ्वी की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर-पृथ्वी अनेक रूपों में प्रतिष्ठित है तथा भ्रमण करती रहती है और संसार को स्थिर किए रहती है। जैसे माता अपने गर्भ में बालक को स्थिर किए हुए भ्रमण करती रहती है। इस पृथ्वी की प्रतिष्ठा आपो-ज्योति में ओत-प्रोत हो जाती है।

प्रश्न-यह आपो-ज्योति क्या है?

उत्तर-यह आपो-ज्योति अमृत है, यही सोम कहलाता है। जब यह समुद्र में रहता है तो इसकी तरंगें चन्द्रमा तक जाती हैं, यह अमृत है। जब जरायुज बालक गर्भ में रहता है तो यही वह अमृत है जो चन्द्रमा की कान्ति को माता की नस-नाड़ियों के द्वारा उस शिशु को प्रदान करता है, यही सर्वज्ञ विज्ञान है। प्राण इसी के आश्रित रहता है, यह आपो-ज्योति है। आपो नाम जल का है, इस जल में विद्युत है, वह ज्योति है जो रमण कर रही है। इसी के कारण जल को सोम कहा जाता है, यदि जल में ज्योति न होती तो यह सोम नहीं बन सकता था, यह आपो-ज्योति अभूतपूर्ण कहलाई जाती है। इसी में पृथ्वी ओत-प्रोत रहती है तथा इसी में पृथ्वी की प्रतिष्ठा है।

प्रश्न-यह आपो-ज्योति किसमें प्रतिष्ठित रहती है?

उत्तर-यह आपोज्योति अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह अग्नि ही है जो लोक-लोकान्तर में रमण करती है तथा पृथ्वी से लेकर द्यु-लोक तक अपना प्रकाश करती रहती है तथा द्यु-लोक में भी रमण

करती रहती है। अग्नि की नाना प्रकार की धाराएँ होती हैं। इसके नाना स्वरूपों में रहने वाला प्राणी अग्नि की पूजा करता है। वेद ने अग्नि को अग्निकेतु कहा है तथा देवताओं का दूत कहा है। दैवीयज्ञ में सप्तकोण की शाला में यही प्रदीप्त है तथा यही शाकल्य को लेकर तथा शाकल्य के साथ विचार को लेकर और विचार के साथ मानव के चरित्र को लेकर उसे संसार में प्रसारित कर लेते हैं। मानव का चित्रण द्यु-लोक तक किया जाता है। एक विज्ञानवेत्ता इस अग्नि की धाराओं पर सवार होकर चित्रण करता है, इस अग्नि की धाराओं को विद्युत कहते हैं। इस अग्नि का नाम विद्युत है अमादकेतु है, द्युवर्धन भी है तथा द्यु भी है। शब्द इसके ऊपर विराजमान होकर व्यापक बन जाता है और मानव का चित्र इस अग्नि के ऊपर विश्राम करता है तो उसकी चित्रवाली संसार में ओत-प्रोत हो जाती है। मानव श्वास लेता है। एक श्वास में, जितना यह मानव का शरीर है उसी के आकार का उन परमाणुओं में सूक्ष्म शरीर का निर्माण हो जाता है, इस प्रकार निर्मित चित्र विद्युत रूपी अग्नि पर सवार होकर एक क्षण समय में अरबों-खरबों तरंगों में वितरित हो जाता है। इसकी गति इतनी महान् होती है। विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार की धाराओं को एकत्रित करके इसकी चित्रावली बना लेता है। एक क्षण में, कण-कण में, इस अग्नि की धाराओं में इस संसार का सूक्ष्म चित्रण रहता है तथा सूक्ष्म रूपों से परमाणु विचरण करता रहता है वही परमाणुवाद आयु और अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत रहता है। इसलिए इन परमाणुओं से इस यन्त्र का निर्माण होता है तथा उन्हीं परमाणुओं से यह भरण हो रहा है।

इस अग्नि की स्थूल रूप से लगभग २८४ धाराएँ होती हैं। २८४ वीं धारा से ९९ प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। ९९ वीं धारा का १०१ धारा में जन्म होता है इस प्रकार यह अग्नि इस संसार रूपी चक्र को चला रही है, शब्द को चला रही है तथा परमाणुवाद गति कर रहा है।

(२८४ × ९९ × ९९ × १०१ त्र २०,४४,५९,५५२ धारा अग्नि की)

प्रश्न..अग्नि की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..अग्नि की प्रतिष्ठा वायु है। वायु की भी इतनी ही प्रकार की तरंगे होती हैं जो इतने सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर उड़ान उड़ती रहती हैं। अग्नि भी इसमें ओत-प्रोत हो जाती है। जहाँ वायु नहीं होती है वहाँ अग्नि भी नहीं होती है। इससे प्रतीत होता है कि अग्नि इस वायु में प्रतिष्ठित होती रहती है। अग्नि की माँ यह वायु मानी गई है। यही इसका गर्भाशय है। वायु में नाना प्रकार की तरंगें होती हैं। वायु और अग्नि की सहकारिता से ही शब्द ही गति ऊर्ध्व हो जाती है तथा तीव्र बन जाती है। इससे सिद्ध होता है कि वायु की तरंगों में वह अग्नि तथा विद्युत ओत-प्रोत रहती है वायु को वेद में विद्युत् आभा, सोमभामकेतु आदि नामों से पुकारा है।

प्रश्न..वायु की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..वायु की प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्ष में ही शब्द ओत..प्रोत हो जाते हैं। अन्तरिक्ष में ही ये पंचमहाभूत सूक्ष्म रूप धारण करके ओत-प्रोत रहते हैं। अन्तरिक्ष में वायु का कोई महत्व

नहीं होता। क्योंकि अग्नि का, पृथ्वी का तथा संसार का अपना कोई महत्व नहीं होता। वह तो रूपान्तर किया हुआ जगत् इसमें ओत-प्रोत रहता है। उस रूपान्तर का तथा जगत् का दिग्दर्शन करने का नाम ही अन्तरिक्ष है। जिस वस्तु का रूपान्तर होकर स्थूल से सूक्ष्म बन जाता है उसकी प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष मानी जाती है। यह प्राणी तथा लोक-लोकान्तर अन्तरिक्ष में ही रमण करते रहते हैं।

प्रश्न..अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..यह अन्तरिक्ष महतत्त्व में ओत-प्रोत हो जाता है। इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता है। अनुसन्धानवेत्ता वैज्ञानिकों ने कहा है कि यह महतत्त्व ही इस प्रकृति के चक्र को चला रहा है तथा गति दे रहा है हमें इस प्रकृति के गतिशील महतत्त्व को जानना चाहिए। जो शून्य से चेतन बना रहा है तथा लगातार गति दे रहा है।

प्रश्न..यह महतत्त्व किसमें प्रतिष्ठित है?

उत्तर..महतत्त्व सूर्य लोकों में ओत-प्रोत हो जाता है। सूर्य-लोक ही ऐसे लोक हैं जिनमें महतत्त्व भी ओत-प्रोत हो जाते हैं। उसी की आभा में यह जगत् कार्य कर रहा है। उसी की गति से यह जगत् गति कर रहा है।

प्रश्न..सूर्य लोक की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..सूर्य लोक की प्रतिष्ठा यह चन्द्र मण्डल है। क्योंकि चन्द्रमा इसके प्रकाश से प्रकाशित होता है। चन्द्र-मण्डल ग्रह कहलाए जाते हैं। जिन लोकों में यह उपग्रह हैं, वे ग्रह कहलाए जाते हैं। ग्रह का अभिप्राय यह है कि जहाँ ग्रह बनाए जा सकते हैं। जैसे चन्द्र-ग्रह,

मँगल-ग्रह आदि। चन्द्र-मण्डल पर पार्थिव तत्व वाला प्राणी भ्रमण कर सकता है, इसी प्रकार मंगल तथा अरुणी मण्डल पर भी प्राणी निवास करता है। चन्द्र मण्डल में जल और वायु प्रधान प्राणी, विचरण कर सकते हैं, उनके सुन्दर गृह होते हैं।

प्रश्न..चन्द्र लोकों की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..चन्द्र लोकों की प्रतिष्ठा गन्धर्व लोकों में है, गन्धर्व एक आभा है। गन्धर्व एक लोक भी है। किन्तु आभा का नाम ही गन्धर्व लोक कहा गया है। जिस आभा में, जिस प्रतिभा में निरन्तर गति से यह लोक-लोकान्तर गतिशील हैं, गतिशील होकर गतिवान हो रहे हैं। वह गन्धर्व ही हैं तथा उसी में यह लोक-लोकान्तर प्रतिष्ठित हो रहे हैं। गन्धर्व मण्डल में ही, गन्धर्व तरंग में ही लोकों की गणना की जाती है जैसे..१-मंगल, २-शनि, ३-सूर्य, ४-चन्द्र, ५-बृहस्पति, ६-अरुणी, ७-सप्तर्षि मण्डल, ८-वशिष्ठ, ९-अरुन्धति, १०-सोमभानु, ११-सुरीचि, १२-श्रणकेतु, १३-ज्येष्ठाय, १४-ध्रुव, १५-अचंग, १६-मचंग, १७-स्वामकेतु, १८-श्रेणी, १९-आभ्याम, २०-स्वारित, २१-कृति, २२-पुष्पाया, २३-जेठकेतु, २४-सहानकेतु आदि ये सब गन्धर्व की आभा में ही रमण कर रहे हैं।

प्रश्न..गन्धर्व लोकों की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..गन्धर्व लोकों की प्रतिष्ठा इन्द्र है। इन्द्र लोक उसको कहते है जिसमें गन्धर्व आभा भी समाहित हो जाती है। जहाँ ऋत् और सत् का समन्वय होकर इन्द्र लोकों में समाहित हो जाती है। उस आभा का नाम इन्द्र लोक है, इन्द्र एक आभा है जिसमें संसार का

सौरमण्डल, आकाश गंगा उसके गर्भ में रमण करती है।

प्रश्न..इन्द्र लोकों की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..इन्द्र लोक प्रजापति में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, वह प्रजापति ही संसार का प्रभुत्व है, आनन्दवत् है तथा श्वानकेतु है। वह प्रजाओं का स्वामी है। हमें उस प्रजापति को जानना चाहिए। प्रजापति वह है जिसमें सर्व-जगत् समाहित है। सब प्रजाएँ समाहित हैं। वह महामंडलेश्वर कहा जाता है तथा सोमभ्रम कहलाया जाता है, हमें उसकी उपासना करनी चाहिए।

प्रश्न..प्रजापति की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर..प्रजापति की प्रतिष्ठा यज्ञ में है। यज्ञ का अभिप्राय है कि जितने भी शुभ कर्म है, शुभ आभाएँ हैं उन सबका नाम यज्ञ है। जो यज्ञमय ज्योति तथा आनन्दवत् है वह देवी यज्ञ कहलाया गया है, हमें यज्ञ करने चाहिएंः यज्ञ से रहित मानव न होने के बराबर है।

प्रश्न..यज्ञ की प्रतिष्ठा किसमें है?

उत्तर..यज्ञ की प्रतिष्ठा दक्षिणा में है। हुत और प्रहुत का नाम दक्षिणा है। दक्षिणा नाम संकल्प का है। यह सर्वजगत् संकल्पमात्र ही है। संकल्प से ही यह संसार स्थिर है। परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में संकल्प किया तो यह जगत् स्थिर रहता है। प्रभु का संकल्प पूर्ण हो जाने पर जगत् का रूपान्तर हो जाता है, जिसको प्रलय कहते हैं। पति..पत्नी संकल्प के कारण ही एक-दूसरे के साथी बने रहते हैं। संकल्प के कारण ही माता पुत्र से स्नेह करती है, पुत्री पिता से स्नेह करती है, आचार्य कुल में ब्रह्मचारी और आचार्य का स्नेह चला करता

है। यह परिवार कुटुम्ब आदि संकल्पमात्र है। प्रभु की रचना तथा उसका विज्ञान भी संकल्पमात्र ही है, इसलिए इसका नाम दक्षिणा है। वित्त दक्षिणा के बिना संकल्प के कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं होता।

प्रश्न..संकल्प की प्रतिष्ठा क्या है।

उत्तर..संकल्प की प्रतिष्ठा श्रद्धा है। इसलिए मानव में श्रद्धा होनी चाहिए। यह सब जगत् श्रद्धा के स्तम्भ पर ही स्थिर रहता है। श्रद्धा से ही राजा और प्रजा में प्रेम होता है, राष्ट्र का सारा वाहक कार्य श्रद्धा पर ही स्थिर रहता है। श्रद्धा ही पुत्र बनाती है तथा कुटुम्ब और जगत् की रचना कर देती है, इसलिए श्रद्धा होनी चाहिए।

प्रश्न..यह श्रद्धा किसमें ओत-प्रोत होती है?

उत्तर..श्रद्धा हृदय से उत्पन्न हुआ करती है। हमें हृदय को ऊँचा बनाना चाहिए। हृदय में ही योगीजन, तपस्वीजन, महर्षि बना करते हैं। हृदय में ध्यानावस्थित रहते हैं तथा हृदय में ही मन को स्थिर करते हैं।

इस हृदय में ही सर्वत्र जगत् व्यापक होता है। वे इस हृदय को ऊँचा बनाना चाहते हैं। यह हृदय ही संसार का निर्माणकर्ता तथा निर्माणवेत्ता है। हमें इस हृदय का मिलान परमात्मा के हृदय से करना चाहिए, जिससे यह आत्मा सदैव मोक्ष में भ्रमण करे।

निष्कर्ष

प्रभु से इस हृदय का मिलान करें, हृदय से श्रद्धा, श्रद्धा से दक्षिणा, दक्षिणा से यज्ञ, यज्ञ से प्रजापति, प्रजापति से इन्द्र, इन्द्र से गन्धर्व, गन्धर्व से चन्द्रमा, चन्द्रमा से सूर्य, सूर्य से महतत्त्व, महतत्त्व

से अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से जगत् की उत्पत्ति होती है। ये सब प्रकृति के स्तम्भ कहलाए जाते हें, जिन पर सर्व-जगत् स्थिर रहता है। सर्वत्र विज्ञान इन्हीं के गर्भ में रहता है। इन्हीं स्तम्भों में से विज्ञान की उत्पत्ति होती है। हमें इन स्तम्भों को जानना चाहिए। इनके गर्भ में विज्ञान है, मानवता है, दर्शन है तथा ये ही जगत् का दिग्दर्शन कराते हैं। (उन्नीसवां पुष्प १९-३-७२ ई.)

गार्गी याज्ञवल्क्य संवाद

गार्गी का प्रश्न..यह जो सर्वत्र चेतना है यह द्युलोक में किस प्रकार रहती है?

उत्तर..हे देवी! यह ऋत् और सत् का जगत् माना जाता है। ऋत् और सत् जगत् में ओत-प्रोत रहता है। जो मानव उपनिषदों का सहारा लेकर उज्ज्वल, पवित्र बनना चाहता है, वह महत्ता की ज्योति को प्राप्त करता हुआ इस संसार-सागर से पार हो जाता है।

(पन्द्रहवां पुष्प २३-१०-७० ई.)

गार्गी जन्म-जन्मान्तरों में स्वाध्याय करती हुई वैराग्य को प्राप्त हुई, उसने ४१ वर्षों तक वेद का स्वाध्याय किया था।

(पांचवा पुष्प १९-३-६२ ई.)

४ चतुर्थ अध्याय-आर्य राजाओं की गौरव गाथा

मनु प्रणाली

मनु परम्परा में सबसे प्रथम मनु स्वायम्भु मनु थे। इसके पश्चात् इक्ष्वाकु मनु, सूर्य मनु, चन्द्र मनु, रोहिणी मनु, श्वानकेतु मनु, ज्ञानश्रुतिकेतु, सोमभानु मनु आदि ७५०० वंशज हुए। उनकी परम्परा संसार में सदैव उज्ज्वल रही। इनका वंश विचारणीय था, जिनमें धर्म और मर्यादा को लेकर उनकी राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव होता था। इन सबमें पुराहित-प्रथा चलती रही। जब धर्म और मानवता की मर्यादा नहीं होती तो वहाँ और परिवार संसार में समाप्त हो जाते हैं। (उन्नीसवां पुष्प २०-३-७२ ई.)

महाराजा मनु की ३५००वीं पीढ़ी में 'स्वताम्' नाम के राजा हुए थे, वह यौगिक प्रक्रिया वाले थे। वे राजा तो इसलिए बने क्योंकि उनके वंश की परम्परा थी। उस परम्परा को लाने के लिए तथा समाज को ऊँची शिक्षा देने के लिए वे राजा बने। उन्होंने नियम बनाया कि वर्णव्यवस्था ऊँची होनी चाहिए, आश्रम ऊँचे होने चाहिएं, जो हमारे पूर्वजों ने निर्मित किए हैं। उसी के आधार पर उन्होंने निर्णय दिया कि मेरे राष्ट्र में किसी भी प्राणी का हनन नहीं होना चाहिए, चाहे वह जलों में रहने वाला हो, चाहे वह पृथ्वी पर ही विचरण करने वाला हो, मेरा राष्ट्र सात्विक रहना चाहिए। राजा के नियमों का पालन करने के लिए प्रजा तत्पर हो गई। क्योंकि 'अहिंसा परमोधर्मः' पर चलने वाला ब्राह्मणों का समाज था, उनके आचार्य

पुरोहित इसी प्रकार के थे। राजा के यहाँ यह नियम बनाया गया, इससे पूर्व भी इसी प्रकार का नियम था। इस पृथ्वी पर जितना भी प्राणीमात्र है वह एक-दूसरे के जीवन से कटिबद्ध रहता है, इसलिए उसका हनन करना दूसरे प्राणी का अधिकार नहीं है, अधिकार इसलिए नहीं क्योंकि वह जीवन दे नहीं सकता, उनसे लाभप्रद अवश्य बन सकता है। राजा के इस नियम को प्रजा ने स्वीकार कर लिया, फिर प्रजा ने यह नियम बना लिया कि..

१. किसी प्रकार का अपराध राजा के राष्ट्र में नहीं होना चाहिए।

२. संग्रह करने वाले वैश्य नहीं होने चाहिएं। राजा ने यह घोषणायुक्त कहा कि हे प्रजाओं? मैं जो तुम्हारा राजा बना हुआ हूँ, मैं भी अनाधिकार की चेष्टा कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे भी तुम पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं भी मानव हूँ, तुम भी मानव हो। सब प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की आत्मा हैं। हमें एक-दूसरे पर शासन करने का अधिकार नहीं। शासन करने का अधिकार उसी समय होता है जब प्रजा में अनियमितता आ जाती है। अपने कर्त्तव्यवाद और अपनी 'अहिंसा परमोधर्मः' की परम्परा को त्याग देते हैं। जब राजा ने यह घोषणा की तो प्रजा ऐसा बन गई जैसे देवता होते हैं। (पच्चीसवां पुष्प ११-११-७२ ई.)

मनु परम्परा में कर्त्तव्यवाद का उदाहरण

मनु परम्परा में श्वांगकेतु नाम के राजा हुए। जो पवित्र और महान् थे। उनके राष्ट्र में यह शिक्षा रहती थी कि राजा के राष्ट्र में, प्रत्येक

समाज में एक-दूसरे से सन्तुष्ट रहना चाहिए। एक-दूसरे का कोई ऋणी नहीं रहना चाहिए तथा राष्ट्र में कर्त्तव्यवाद की वेदी होनी चाहिए। कर्त्तव्यवाद यह है कि कोई मानव दूसरे का ऋणी न रहे। इसकी व्याख्या यह है कि मानव पर नाना प्रकार के ऋण होते हैं, जैसे..देव-ऋण, ऋषि-ऋण, मातृ-ऋण आदि। जब मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, तो उस मानव का स्वभाव परिवर्तित हो जाता है, वह निर्मोही बन जाता है।

राजा का सोनभुक नाम का पुत्र था। एक बार वह भ्रमण करते-करते पणपेतु ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। ऋषि ने जब उनका परिचय जानना चाहा तो उसने परिचय दिया कि भगवन्! मेरा नाम निर्मोही है, पिता का नाम भी निर्मोही है, राष्ट्र का नाम भी निर्मोही है, प्रजा का नाम भी निर्मोही है। यह सुनकर ऋषि को आश्चर्य हुआ, उसने उस राजकुमार को अपने आश्रम में छोड़कर, उसके राष्ट्र में जाकर इसकी परीक्षा की। राजा से कहा कि आपके पुत्र के मृगराज ने आक्रमण करके दो भाग कर दिए हैं, वह मृतक शरीर मेरे आश्रम पर है। आप उसको लाकर दाह संस्कार कर दीजिए। राजा ने कहा कि भगवन आपको यह प्रतीत है कि उसके ऊपर मृगराज ने आक्रमण क्यों किया? क्योंकि उसका कर्त्तव्य था, उसका आहार बन गया। जब उसका आहार बन गया तो हमारा क्या रह गया। संसार में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। अग्नि, पृथ्वी के तत्त्व अन्तरिक्ष आदि कभी नष्ट नहीं होते। यह परमाणुओं से बना शरीर अपने-अपने कारणों में लय हो गया और जीवात्मा किसी काल में नष्ट नहीं होता

तो हम किसका मोह करें, कौन किसका पुत्र है? वह तो उसका कर्त्तव्य है कि वह उसका आहार बन गया, उसको उसे पान करने दीजिए। सुनकर ऋषि के आश्चर्य की सीमा न रही। यही उत्तर उसको माता, पत्नी, भौजाई तथा प्रजा में प्राप्त हुआ। उसने जाना कि वास्तव में उस राजकुमार का कथन सत्य था। कर्त्तव्यवाद से राष्ट्र में निर्मोह की प्रतिभा आ गई थी। (पन्द्रहवां पुष्प २८-१०-७६ ई.)

मनु परम्परा में रूढ़िवाद के विरुद्ध जागरूकता

मनु परम्परा में कोणव्रत नाम के राजा के राष्ट्र में सुमनेतु नाम के ऋषि हुए। उसने प्रतिष्ठा में आकर वैदिक परम्परा को त्यागना आरम्भ कर दिया। उस पर टिप्पणियां आरम्भ करने के कारण वह गुरु उस वाद में परिणत हो गए। जब गुरु के अप्रतय गुरु-शिष्य की प्रणाली में मानव चला जाता है, उसमें प्रतिष्ठा का विचार हो जाता है, उस प्रतिष्ठा के गर्भ में रूढ़िवाद होता है। वह रूढ़िवाद राष्ट्र के विनाश का कारण बन जाता है तथा धर्म की परम्परा को नष्ट कर देता है।

राजा ने ऋषि से प्रार्थना की कि हे महाराजा! आप ऐसा न करें। फिर उसकी प्रतिष्ठा को रखते हुए उसे यह कहकर निकाल दिया कि या तो बुद्धिमत्ता से कार्य करो, अन्यथा मेरे राष्ट्र से चले जाओ। क्योंकि राष्ट्र में तुम्हारे इस कार्य से अन्धकार आएगा, इस प्रकार मेरे राष्ट्र की परम्परा का नाश हो जाएगा। (सोलहवां पुष्प १-८-७० ई.)

एक समय गुरुदेव (शृंगी जी) ने आश्रम से भिक्षा के लिए प्रस्थान किया। क्योंकि यज्ञ के लिए कुछ कर्म-काण्ड करना था। सोमनोत

राजा के यहाँ पहुँचे। यह राजा मनु वंश में था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। राजा और उनकी पत्नी दोनों अपने गृह में स्वयं अपना कला-कौशल भी करते थे। उनके कृषि का उद्योग था, वे कृषि में अन्न उत्पन्न करते थे। गऊ उनके द्वारा थी, गऊ घृत द्वारा और अपनी कृषि के द्वारा उस अन्न को पान करते थे। और राष्ट्र का पालन करते थे। प्रजा को कर्त्तव्य में लाने का प्रयास करते थे। उस समय (महानन्द) मैं साधना करता था। पूज्यपाद गुरुदेव मुझे राजा के यहाँ ले गए। राजा ने स्वागत किया, चरणों को छूकर आसन को त्याग दिया, राजस्थली को त्याग दिया और चरणों में ओत-प्रोत होकर बोले कि गुरुवर! कैसे आगमन किया, कैसे कष्ट किया? मुझे वहीं से आज्ञा दे देते, मैं आपके द्वार आता और राष्ट्रीय वाहन में लाने का प्रयास करता।

गुरुदेव ने कहा..कोई बात नहीं राजन्! हम तुम्हारे आसन पर आए हैं तुम्हारे आसन को दृष्टिपात करने की उत्कट इच्छा थी।

राजा ने कहा..आप क्या पान करेंगे?

गुरुदेव ने कहा..हम तुम्हारे राष्ट्र का भोजन प्राप्त नहीं करेंगे।

राजा ने कहा..प्रभो! क्यों! क्यों! मेरे राष्ट्र का जो अन्न है वह पाप का अन्न नहीं है। मैं स्वयं व मेरी पत्नी दोनों कला-कौशल करते हैं। कृषि में उद्यम करते हैं और इस अन्न से हम अपने उदर की पूर्ति करते हैं। पूज्यपाद का हृदय गद्-गद् हो गया। उन्होंने नाना पदार्थों का पान कराया। (छब्बीसवां पुष्प २४-५-७६ ई.)

मनु प्रणाली में राजा मिनरावृत्ति के निधन के पश्चात् भारद्वाज के

सभापतित्व में रेवक, आकूत, जमदग्नि आदि ऋषियों की सभा ने उसके पुत्र श्वेति का चुनाव करके और नियम बनाकर उसको राज्य करने का आदेश दिया था। राजा के चुनाव में एक ब्रह्मवेत्ता का वाक्य एक करोड़ अशिक्षितों के वाक्यों से भी ऊपर होना चाहिए। क्योंकि उस तपे हुए प्राणी के वाक्य में विद्युत होती है। शक्ति होती है। जब राजा का चुनाव अशिक्षित जनता करती है। तो राष्ट्र में शीघ्र ही क्रान्ति आ जाती है, वह क्रान्ति इस प्रकार की होती है कि अशिक्षितों में परस्पर विवाद होता हे और एक दूसरे को नष्ट करने की इच्छा बलवती होती है। महापुरुष के वाक्य को नष्ट करके अशिक्षितों के वाक्यों को उन्नत किया जाता है। क्योंकि अशिक्षित ही उनकी पीठ पर होते हैं।

महापुरुष निर्भय होता है। इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति भयभीत होते हैं क्योंकि उनका अन्तःकरण तथा ज्ञान तपा हुआ नहीं होता। वे निष्ठावान नहीं होते। महापुरुष सबके हृदय की तथा उदरपूर्ति की रक्षा करते हैं। जबकि अन्य अपने तक सीमित रहते हैं। महापुरुषों की वाणी में ओज, तेज और महत्ता होती है। वह अन्तरिक्ष में जाकर अशुद्ध शब्दों को भी नष्ट कर देती है। उसमें अरबों-खरबों तरंगें उत्पन्न होती हैं।(चौदहवां पुष्प ३-११-६९ ई.)

राजा रोहिणीकेतु

एक समय रोहिणीकेतु नाम के राजा भ्रमण करते हुए पर्वतों में जा पहुँचे। वहाँ मुद्गल ऋषि की पोत्री को देखकर उसपर मुग्ध हो गए और उसे अपनाने की इच्छा प्रकट की। बा्रह्मण समाज ने क्रांति की

कि जो राजा एक पत्नी के होते हुए ऋषि कन्या को अपनाना चाहता है, ऐसे मानव का समाज से बहिष्कार होना चाहिए। अतः राजा को वनों में भेजकर उसके ज्येष्ठ पुत्र को राजा बनाया। इस उदाहरण से आज के समाज की तुलना करने पर प्रतीत होता है कि यदि यही स्थिति रही तो माताओं का जीवन तथा ब्रह्मचारियों और छात्रें का चरित्र ऊँचा नहीं बनेगा। (उन्नीसवां पुष्प २८-१०-७२ ई.)

आदर्श राजा अश्वपति

राष्ट्र नियम महाराजा अश्वपति ने नियम बनाया कि मेरे राष्ट्र की भौतिक सम्पदा शिक्षा है। शिक्षा ऊँची होनी चाहिए। उस समय महामन्त्री सोना तथा नाना आचार्यों ने कहा कि महाराज! राष्ट्र की सम्पदा शिक्षा और चरित्र दोनों होने चाहिएं।

अश्वपति ने कहा यदि मानव में शिक्षा होगी तो चरित्र स्वतः निर्माण हो जाएगा। यदि शिक्षा की पद्धति ऊँची नहीं है तो चरित्र का निर्माण किसी काल में नहीं हो सकता। अश्वपति के पुरोहित महर्षि रुपत ऋषि ने कहा कि हमारे यहाँ जो चरित्र होता है, वह राष्ट्र के आधार पर होता है। जब राजा स्वयं चरित्रवान बन जाता है, कर्त्तव्यवादी बन जाता है, तो समाज स्वतः बन जाता है। समाज का संगठन ऊँचा होना चाहिए।

महाराज अश्वपति के यहाँ जब नियमावली बनी तो यह कहा कि संसार में एक-दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए। सर्वप्रथम देवताओं का ऋण है। जड़ और चैतन्य देवता होता है। जड़ देवताओं के सहयोग से शरीर का निर्माण होता है और चैतन्य देवताओं से विचारों

का निर्माण होता है। इनके ऋण से मुक्त होने के लिए देवपूजा करें। देव पूजा यह है कि माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों सहित दर्शनों का विचार करें, अग्नि-होत्र करें। जब होत्र होता है तो अग्नि द्वारा देवताओं का पूजन होता है। वह अग्नि सब ले करके देवताओं को प्रदान कर देती है, उन्हें लुप्त कर देती हे। सुगन्धि तीन प्रकार की होती है

१. विचारों की सुगन्धि।

२. पदार्थों की सुगन्धि।

३. चरित्र की सुगन्धि।

जो मानव अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है, उसे यह तीन प्रकार की सुगन्धि करनी चाहिए। जब गृह में माता-पिता अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं तो बालक-बालिका अपने माता-पिता के विचारों के अनुसार अपने जीवन को बनाते हैं तो वह भी अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। यह राष्ट्र नियम होना चाहिए। अतः यह नियम बनाया गया कि सब गृहों में अग्नि-होत्र होना चाहिए। इससे जड़-देवताओं की पूजा होती है। विद्यालयों में आचार्य हैं, उनकी पूजा का अर्थ है उनके विचार ले करके अपने में धारण करना। आचार्य अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, इस प्रकार देवताओं और आचार्यों के ऋण से मानव उऋण हो जाता है।

इसके पश्चात् राष्ट्र ऋण है। राष्ट्र जिस पद्धति को निर्मित करता है, उसमें बुद्धिमानों का विचार होना चाहिए। राजा जिस पद्धति को लाना चाहता है, उसमें मानवता हो, चरित्र हो तथा चरित्र में आध्यात्मिकवाद हो, इस प्रकार की पद्धति से राष्ट्र ऊँचा बनता है,

उसमें भव्यता आती है, चरित्र आ जाता है। यह राष्ट्र का कर्त्तव्य है। राजा-प्रजा मिलकर अश्वमेघ यज्ञ करें। अश्व नाम राजा तथा मेघ नाम प्रजा। यज्ञ का अभिप्राय है विचारों का यज्ञ तथा अग्निहोत्र। ऐसा राजा दिग्विजयी कहलाता है। यह वेद का उपदेश है कि हे मानव! अपने कर्त्तव्य का पालन कर, यह तेरी मानवता है।

राजा के राष्ट्र में ऋषि-मुनि तपस्या करते थे तथा पुरुषों को विवेकी बनाया जाता था। क्योंकि उनकी इच्छाएं सब राष्ट्र से पूर्ण होती थीं। उसके हृदयों में पवित्रता होती थी, राष्ट्र पवित्र बनता था, राष्ट्र की पद्धति ही राष्ट्र का भूषण है। उस पद्धति में चरित्र ही भूषण है, वही उसकी मानवता मानी जाती है। यह मानवता ही कर्त्तव्यवाद कहलाया जाता है। (सताईसवां पुष्प ६-५-७६ ई.)

एक बार महाराज अश्वपति के यहाँ एक रूढ़ि बन गयी। जब रूढ़ि बन गई तो राजा और मन्त्री का उन रूढ़ि के आचार्यों द्वारा गमन हुआ। उन्होंने कहा कि राष्ट्र में तुम रूढ़िवाद में न जाओ, धर्म को अपनाओ। उन्होंने यह वाक्य स्वीकार न किया। उन प्राणियों का हम कैसे ह्रास कर सकते हैं। राजा अश्वपति और मन्त्री इस विचार को लेकर आचार्य मुद्गल के द्वार आए और कहा कि महाराज! यह जो रूढ़ि बनी है इसका विनाश कैसे होगा? रूढ़ि धर्म का नाश कर देती है। उस समय महाराजा मुद्गल ने कहा कि भाई! इसको ज्ञान से शिक्षा दो और राष्ट्रीय नियम को अपनाने का प्रयास करो कि तुम विद्या का अध्ययन करो। आचार्य ने मध्य में उन्हें बुद्धि के निर्माण का उपदेश दिया। आचार्यों को लाया गया और उन्हें निमित कराया।

आचार्यों के मस्तिष्क में वह वाक्य आ गया और उन्होंने उस रूढ़ि को त्याग दिया। (छब्बीसवां पुष्प २-८-७८ ई.)

एक समय महाराजा अश्वपति अपने आसन पर विराजमान थे। न्यायालय में न्याय हो रहा था, परन्तु न्यायकर्ता महाराजा अश्वपति की वाणी में अमोधता दृष्टिपात नहीं हुई। यह विचारा कि मैं न्याय कर रहा हूँ अथवा वह न्याय की जो आभा है यह इतनी विचित्र थी, दृष्टिपात नहीं आ रही थी। जब हृदय में यह आकांक्षा उत्पन्न हुई तो राजा ने विचारा कि अब मैं क्या करूँ? क्योंकि न्याय करता हूँ। न्याय में दूरिता प्राणी (पापी व्यक्ति) विशेषकर आकर चले जा रहे है परन्तु न्याय तो वह होना चाहिए कि एक स्थान में न्याय किया और दूसरे स्थान में न्याय की सुगन्धि चली गई। मुझे ऐसा प्रतीत होता है राष्ट्र पामर (नीच, पापी) हो जाएगा। इस राष्ट्र में सुन्दरता नहीं रहेगी, क्योंकि जब मैं न्याय करता हूँ तो न्याय की आभा मुझे आभायित होती दृष्टिपात नहीं आ रही है। उन्होंने अपने मन्त्रियों को एकत्रित किया। महामन्त्री उस समय बहुत तपस्वी थे, उनसे प्रश्न किया कि हे मन्त्री! मेरा आत्मा यह पुकार रहा है कि जब मैं न्याय करता हूँ तो न्याय की सुगन्धि उत्पन्न नहीं होती, प्राणी विशेषकर दोषी हो जाते हैं। मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरा न्याय कोई सुगन्धि से युक्त नहीं है। महामन्त्री ने कहा कि चलो आचार्यों से इसका प्रश्न करें।

उन्होंने आदि ऋषियों को निमन्त्रण दिया और उनके मध्य में यह वार्ता प्रकट की। तपस्वियों ने यह कहा कि इसमें तप की सूक्ष्मता है। राजा ने कहा, तो प्रभु! मैं तप करने जाऊँ, राष्ट्र को त्याग दूँ?

क्योंकि ऐसे राजा से कोई अभिप्राय (लाभ या प्रयोजन) नहीं है कि जिस राजा के राष्ट्र में दोष बलवती होते (बढ़ते) रहें, दुराचार बलवती होता रहे और सदाचार की सूक्ष्मता हो जाए। राजा ने अपनी राष्ट्र-स्थली को त्याग दिया, पत्नी के द्वार पर पहुँचे और कहा कि तुम गायत्री छन्दों में तपो और मैं भी तप करने जा रहा हूँ।

महाराजा अश्वपति तप करने चले गए। हिमालय की कन्दराओं में ऋषि-मुनियों से मिलान करते हुए एकान्त स्थान में विराजमान हो गए, गायत्री छन्दों के गर्भ में परिणत हो गए, गान गाने लगे, छन्दावली अपने हृदय में समाहित करने लगे, मौन हो गए, अपनी आत्मा का शोधन करने लगे तथा प्राणायाम करते थे। उसकी आभा को जानने का प्रयास किया, मन पवित्रता में धारण हो गया। यह कर्म प्रारम्भ रहा और राजा महान् तप में परिणत हो गए। ऋषि-मुनियों की आज्ञानुसार भयंकर वनों की वनस्पतियों को पान कर उदर की पूर्ति करते थे, जिस पर किसी प्राणी का किसी प्रकार का अधिकार न हो। नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने के पश्चात् राजा का तप बलवान हो गया। वह लगभग छः वर्ष तक मौन रहे। उसके पश्चात् दो वर्ष तक गायत्री छन्दों का पठन-पाठन किया। उसी में मनसा, वाचा, कर्मणा में लगभग बारह वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है कि ब्रह्म में रत रहना, ब्रह्म का चिन्तन करना, ब्रह्म की आभा को चरना। इस प्रकार बारह वर्ष तक कठोर तप किया और जब तप में यह विशेषता हो गई कि उनकी वाणी में अमोघता आ गई। जो वे वाक्य उच्चारण करते थे तो

भयंकर वनों में विचरण करने वाले मृगराज और सिंहराज उनके वेद-ज्ञान को, उनकी ब्रह्मविद्या को एकान्त स्थान में, एक पंक्ति में विराजमान हो करके जब तक श्रवण नहीं कर लेते तो राजा के हृदय की अन्तरात्मा में शान्ति की स्थापना होती नहीं। उन्होंने यह विचार लिया कि अब मेरा तप नितान्त पूर्ण बन गया है।

महाराजा अश्वपति ने इस प्रकार का कठोर तप करने के पश्चात् अपनी नगरी को प्रस्थान किया। जब वे न्याय करने लगे तो न्याय की सुगान्धि उत्पन्न होने लगी। जिस मार्ग का जो अपराधी होता उस मार्ग के अपराधियों में एक आभा उत्पन्न हो जाती है तो विचार-विनिमय किया कि मानव को तप में रमण करना है। तप कहते हैं इन्द्रियों का शोधन करना। इन्द्रियों के विषय को ब्रह्म के आँगन में रमण करना। जब रमण कर जाते हैं तो सुगन्धि हो जाती है, मानव का जीवन आभा से परिपूर्ण हो जाता है।

अश्वपति का महामन्त्री

हमारे यहाँ पुरातन काल में मन्त्री सदैव अपने परिश्रम से स्वयं अन्न उत्पन्न करके आहार करते थे। क्योंकि जिस राष्ट्र के अन्न को प्रजा के कर से लेकर पान करके, कहीं योग में रुचि न रहे और राष्ट्र की परम्परा नष्ट हो जाए। महाराजा अश्वपति स्वयं अन्न उत्पन्न करते थे। अश्वपति के महामन्त्री और उनकी पत्नी कृषक का कार्य करके अन्न उत्पन्न करते थे। एक समय ऋषियों का समूह उनके द्वार पर पहुँचा। उसको देखकर महामन्त्री का हृदय गद्गद् हो गया और चरणों को स्पर्श करके कहा कि आप हमारे आतिथ्य को स्वीकार

करें। ऋषि जल इत्यादि का पान करने लगे। मन्त्री ने कहा कि मेरे यहाँ भोजन इत्यादि का प्रबन्ध है। मेरी पत्नी स्वयं भोजन का निर्माण, निर्वाचन करती है। आप भोजन को अवश्य पान कीजिए।

ऋषि ने कहा..तुम्हारा राष्ट्रीय अन्न होगा।

उन्होंने कहा कि नहीं भगवन्! हमारा अन्न तो स्वयं के परिश्रम का है।

ऋषि ने कहा..धन्य हो। हे महामन्त्री! इस अन्न का पान करने से तुम्हारी बुद्धि ऊँची रहती है। आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् जब वे महामन्त्री के निवास को त्यागने लगे तो महामन्त्री के अश्रुओं का पात होने लगा। ऋषि बोले, आपके नेत्रों से अश्रुओं का पात क्यों हुआ।

उन्होंने कहा, हे भगवन्! हमारा जो हृदय है वह मनों की वह भावना है। आप हमारे आसन को, अपने पुण्य को त्यागकर जा रहे हैं। आपने मेरी अतिथि-सत्ता को स्वीकार किया, यह मेरा बड़ा सौभाग्य है।

एक बार महामन्त्री और उनकी पत्नी सुलक्षणा दोनों अनुसन्धान कर रहे थे। एक समय सुलक्षणा की इच्छा बनी कि हे भगवन्! मेरी इच्छा यह है कि आप एक पितृ यज्ञ करो। तब महामन्त्री ने एकान्त स्थली पर बैठकर कहा कि हे देवी! हमारा सबसे प्रथम कर्त्तव्य अनुसन्धान करना है। हम परमाणुवाद के ऊपर विचार करें। हम पितृयज्ञ करते हैं तो गौ-घृत के द्वारा यज्ञ करते हैं। उस यज्ञ से जो परमाणु उत्पन्न होता है उससे विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहता है। हे देवी! आज हमें पुत्र की उत्पत्ति नहीं करनी है, हमें सबसे प्रथम

संसार की जानकारी करनी है। सुलक्षणा मौन हो गयी। दोनों विज्ञानशाला में, विज्ञान में परिणत हो गए। उन्होंने १२ वर्ष तक आचार्यों के समीप जाकर सोमरस का पान किया। उषबुद्ध बनने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने प्रकृति के ऊपर अपना आधिपत्य कर लिया। उन्होंने शुक्र-मण्डल में जाने वाले यान का निर्माण किया। उसके पश्चात् पुनः १२ वर्ष तक सोमरस पान करने के पश्चात् पितृ यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की तथा पितृ यज्ञ किया और उन्होंने अपने पुत्र का नाम स्वयंकेतु ब्रह्मचारी रखा। (अठाईसवां पुष्प ११-१२-७४ ई.)

महाराजा हरिश्चन्द्र

महाराजा हरिश्चन्द्र स्वप्न में भी मिथ्या विचार नहीं करते थे। अपने राष्ट्र में यज्ञ कर्म करते थे और मन में धारणा रहती थी कि मैं राष्ट्र को इन्द्रपुरी तक पहुँचा देना चाहता हूँ। यज्ञ कर्म करते-करते जब उनका ९९वां यज्ञ प्रारम्भ हो रहा था तो दुर्गा उस यज्ञ के ब्रह्मा चुने गए। रात्रि के समय महाराजा हरिश्चन्द्र विश्रामशाला में विश्राम कर रहे थे, उसी समय उन्हें स्वप्न हुआ कि एक सुन्दर कन्या है। एक महान् पुरुष सन्यासी है। संन्यासी ने कहा, मुझे दान दो हरिश्चन्द्र ने कहा मांगो।

संन्यासी ने कहा, मुझे यह राष्ट्र अर्पित कर दो।

उन्होंने कहा, बहुत सुन्दर जब राष्ट्र को हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में त्याग दिया तो कन्या ने कहा मुझे भी दान दो। मुझे २११ लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान कीजिए। राजा हरिश्चन्द्र ने यह भी अर्पित कर दिया।

प्रातःकाल जागृत हुआ तो विचार आया कि तुमने तो यह राष्ट्र सब कुछ दान कर दिया था परन्तु दान लेने कोई नहीं आया। इतने में विश्वामित्र एक सुन्दर कन्या को लेकर हरिश्चन्द्र के द्वार पर आ पहुँचे और उन्होंने कहा महाराज मैंने दान की इच्छा प्रकट की, आपने नहीं दिया।

राजा ने कहा, प्रभु मैंने तो स्वप्न में ही अर्पित कर दिया था।

राष्ट्र लने के पश्चात् जो कन्या सन्यासी के पिछले भाग में थी, उसने कहा प्रभु मैंने दान माँगा था। मुझे २११ लाख स्वर्ण मुद्राएँ दीजिए। जब राष्ट्र में २११ लाख स्वर्ण मुद्राएँ देने का प्रश्न आया तो ऋषि ने कहा महाराज यह राष्ट्र तो आपने मुझे दान में दे दिया। अब इसमें से दान देने का अधिकार आपका नहीं है। जब हरिश्चन्द्र ने राष्ट्र को त्याग करके पत्नी और पुत्र को एक ब्राह्मणी के यहाँ गिरवी रख २११ लाख स्वर्ण मुद्राएँ उस कन्या को अर्पित कीं और शूद्र के गृह में उन्होंने कार्य किया। यह दान की पवित्र महिमा है। (नौवां पुष्प ९-७-६६ ई.)

जब हरिश्चन्द्र ने यथार्थ में राजपाट सब कुछ दान कर दिया तो पत्नी ने कहा कि भगवन् यह तुमने क्या किया। हम तीन ही तो प्राणी हैं, आप, मैं और यह पुत्र।

उस समय हरिश्चन्द्र ने कहा था कि हे देवी! यह शरीर भी हमारा नहीं है। यह राष्ट्र तो इन साधुओं का है, महान आत्माओं का है। राष्ट्र में जितनी अधिक महान् आत्माएं होंगी उतना ही राष्ट्र प्रगतिशील एवं शान्ति वाला बनेगा। हमारी आन्तरिक भावनाओं में त्याग भावना हो,

तो राष्ट्र हमें पुनः प्राप्त हो सकता है। इसकी तुम्हें क्या चिन्ता है। अपने जीवन में अन्न का अंकुर न मिले परन्तु वाणी में जो संकल्प है उसको तुरन्त पूर्ण करना है। यदि तुम्हें स्वप्न में ही प्रतीत हो जाए तो यथार्थता में उच्चारण कर दो। तो वह संकल्प तथा तुम्हारी वाणी का जो विचार है वह पूर्ण होना चाहिए। मनु का जो विचार है वह पूर्ण होना चाहिए। परन्तु उसी विचार में त्याग और तपस्या का बल होना चाहिए। राजा वही होता है जो राष्ट्र के ऐश्वर्य को त्याग करके भिक्षुक बन जाता है। आज परमात्मा हमारी परीक्षा कर रहा है। जिस परमात्मा ने यह राष्ट्र दिया है, वह इसको ले रहा है। इसका हमें शोक नहीं होना चाहिए। हे देवी! परमात्मा ने जो यह शरीर दिया है इससे तुम आत्मा का उत्थान करो। आत्मा में शान्ति लाने का प्रयास करो। एक समय वह आएगा कि परमात्मा ने हमको यज्ञरूपी जो शरीर दिया है वह भी हमसे ले लेगा। इसलिए हे देवी! हमें शोक नहीं करना चाहिए। जो राजा प्रजा के ऐश्वर्य को भोगता है, प्रजा के ऐश्वर्य को लेकर अपने ऐश्वर्य की पूर्ति करता है। नाना प्रकार के राष्ट्र की सुविधाएँ होती हैं। यदि परमात्मा के प्रकोप से, प्रकृति के प्रकोप से या प्रजा के प्रकोप से हमें भिक्षुक बनना पड़ता है तो मैं उसके लिए उद्यत हूँ। जब हममें यह भावना होगी तो हमारा राष्ट्र, हमारी मानवता, हमारी आन्तरिक भावना क्यों न ऊँची बनेगी। उन्हीं भावनाओं से हमारे जीवन में क्रान्ति आती है, सम्पन्नता आती है, मानवता आती है, यौगिकता आती है, और हमारी आत्मा परमात्मा की गोद में विश्राम करता है। (बीसवां पुष्प २४-४-६३ ई.)

महाराज रघु

महाराज रघु के पास वर्तन्तु का शिष्य कौत्स ब्रह्मचारी १४ करोड़ स्वर्ण मुद्रा लेने गए तो रघु ने कहा कि मैंने तो सर्वस्व यज्ञ कर दिया है। मेरे पास तो जल भी मिट्टी के पात्रों में ही है। ब्रह्मचारी ने कहा कि मेरी पूर्ति नहीं होती। मुझे तो १४ करोड़ मुद्रा चाहिएं। रघु ने सोचा ब्रह्मचारी को संतुष्ट करना चाहिए। उन्होंने अपने महारथियों को कुबेर विजय करने की आज्ञा दी। कुबरे को स्वप्न में यह आभास हो गया तो अगले ही दिन वह १४ करोड़ मुद्राएं लेकर उपस्थित हो गया। वह समय कितना उज्ज्वल था। (उन्नीसवां पुष्प २८-१०-७२ ई.)

महाराजा शिव

शिव नाम उस द्रव्यपति का है जो अपने द्रव्यों को यथाशक्ति संसार के शुभ कर्मों में लगाता है। राष्ट्र कार्यों में, रक्षा कार्यों में और धर्म के कार्यों में लगाता है। वह द्रव्य भी लिंगमय ज्योति कहलाता है। (पाँचवां पुष्प २१-४-६२ ई.)

शिव नाम परमात्मा का भी है। एक शिव कैलाशपति राजा भी हुए, जिनका संस्कार हिमालय की पुत्री पार्वती से हुआ था वे रावण के गुरु थे।

जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान एवं विज्ञान से, आत्मिक बल से, वेदों के स्वाध्याय से प्रजा महान् व ऊँची हो। देवकन्याएँ और मानव ऊँची भावना वाले कैलाश पर्वत के समान हों उस प्रजा के स्वामी को शिव कहा जाता है। (दूसरा पुष्प ७-१-६२ ई.)

महाराजा शिव ने एकादशी के दिन ही राष्ट्र को अपनाया था।

इसलिए राजा ने अपने राष्ट्र में एकादशी व्रत का पालन कराया। यह कोई नवीन तो न था। क्योंकि यह परम्पराओं से ही चला आ रहा था। किन्तु राजा के लिए एक और शुभ अवसर प्राप्त हो गया। इस दिन माता पार्वती तथा शिव दोनों जागरूक रहते थे तथा उन्होंने अपनी साधन को परिपक्क किया था। उन्होंने योगाभ्यास से अपनी परायणता को प्राप्त किया था। महाराजा शिव ने अपने राष्ट्र में इतने ऊँचे विचारों वाली प्रजा बनाई, जैसे कैलाश पर्वत होता है अर्थात् उसके विचारों में विशालता होनी चाहिए। उसी विशालवाद से मानव और समाज दोनों उन्नत बना करते हैं। (चौदहवां पुष्प ६-३-७० ई.)

शिव नाम राजा का है। पर्वतराज को शिव कहा जाता है। जहाँ अनुष्ठान, अनुसन्धान, अनुवृत्ति नाना प्रकार के कार्य होते हैं। जब ऋषि-मुनि हिमालय की कन्दराओं में रमण करने जाते तो माता पार्वती व शिव के दर्शन अवश्य करते थे। वहाँ अथिति सत्कार की एक महत्ता थी। वे पर्वतराज थे। विज्ञान उनके द्वारा, उनका जन्म सिद्ध अधिकार था। वह पर्वत की कन्दराओं में अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण करते रहते थे। वे शिव यज्ञ करते रहते थे। शिव यज्ञ का अभिप्राय यह है कि शिवास्त्रों का निर्माण करना। नाना प्रकार के यन्त्रों में रमण करना और उनको क्रिया में लाने का नाम शिव-यज्ञ है। अपने जीवन का राष्ट्रीयकरण करते हुए अपनी आभा को ऊँचा बनाते थे।

एक समय पर्वतराज और पार्वती दोनों विराजमान थे। भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद आ पहुँचे। देवर्षि नारद ने कहा..महाराज मैं कुछ लोक-कल्याण करना चाहता हूँ। महाराजा शिव और पार्वती दोनों ने

एक स्वर में कहा..आओ ऋषिवर! हम सबसे प्रथम कुछ पदार्थों का पान करें। उसके पश्चात् कुछ चर्चा करें। अतिथि सत्कार होने के पश्चात् नारद जी ने कहा..महाराज मैं इस लोक का कल्याण चाहता हूँ। मुझे ऐसी कोई युक्ति दीजिए जिससे आपके अमृत उपदेशों का पान करते हुए प्राणीमात्र में एक महत्ता की उत्पति हो जाए। उस समय उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। नारद तुम्हारी केवल यही इच्छा है। उन्होंने कहा..हाँ भगवन्! मैं इस लोक को ऊँचा बनाना चाहता हूँ।

उन्होंने नारद से कहा कि हे नारद! यह जो संसार परम्परा से चला आ रहा है इसकी ऊर्ध्व एवं ध्रुवा गति होती रहती है। परन्तु जहाँ तुम लोक-कल्याण चाहते हो, वहीं मेरी भी यही इच्छा रहती है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रजोगुण और तमोगुण संसार में व्याप रहे हैं। यह शरीर जिसका निर्माण हुआ है इसमें कोई न कोई त्रुटि अवश्य रहती है। इसलिए हम आज लोक का कल्याण चाहते हैं। मेरे विचार में तो यह आता है कि यह संसार ऊर्ध्वगति को जाता रहेगा। परन्तु ध्रुवा गति को भी रमण कर सकता है। जहाँ देवता होते हैं वहाँ दैत्य भी होते हैं। इसलिए तुम आज देवताओं का अनुकरण करते चले जाओं और देवताओं का उपदेश देते चले जाओ, जिससे यह समाज ऊँचा बने।

नारद ने कहा..महाराज! इन वाक्यों से मेरी संतुष्टि नहीं हुई। मैं लोक के प्राणियों का कल्याण कैसे कर सकता हूँ?

उस समय महाराज शिव ने कहा कि नारद! यदि तुम संसार को

ऊर्ध्व में चाहते हो स्वयं ऊर्ध्व बन जाओ। नारद ने कहा कि यह भी यथार्थ है। परन्तु मैं स्वयं ऊर्ध्व में बन जाऊंगा तो लोक के लिए क्या क्रिया होनी चाहिए। महाराजा शिव ने कहा कि वेद कहता है ''मनो वद्वात प्रभे आस्तातम लोकां ब्रह्मे व्यापकत प्रभे'' उन्होंने कहा कि जो मानव अपनी इस महान् मनोनीत भावना को ऊँचा बना लेता है, पवित्र बना लेता है तो यह संसार पवित्र हो जाता है और यह संसार पवित्रता में दृष्टिपात आता है तो उस समय संसार का और अपनापन दोनों का समन्वय हो जाता है। तब संसार में त्रुटि युक्त प्राणी प्रतीत नहीं होता। जब महाराजा शिव और पार्वजी ने यह कहा तो नारद मुनि मौन हो गए और कहा कि धन्य है।

शिव ने कहा कि जाओ तुम लोक का कल्याण चाहते हो तो लोक के प्राणियों से कहो कि तुम अनुष्ठान करने वाले बनो। अनुष्ठान करने वाला जो व्यक्ति है, उसका जीवन ह्रासता को प्राप्त नहीं होता और उसकी मृत्यु भी नहीं होती। महाराजा शिव से नारद ने कहा कि महाराज! यह वाक्य तो यथार्थ है। हे पर्वतराज आप देश में भ्रमण करो।

उन्होंने कहा कि हे नारद! मैं भ्रमण नहीं करूँगा। क्योंकि मैंने संसार को बहुत निकट से दृष्टिपात किया है, अब मैं उस पर्वत की श्रृंखला में इन मालाओं को धारण करना चाहता हूँ। इनके द्वारा जो शुद्धता औ पवित्रता रमण कर रही है, उस वायु को महत्ता में पान करना चाहता हूँ। मैं लोक में भ्रमण करना नहीं चाहता। नारद जी मौन ही गए और कहा प्रभु जैसी आपकी इच्छा।

महाराजा शिव और पार्वती दोनों विराजमान हो करके यज्ञ करते, सुयाज्ञ करते थे। सुयाज्ञ का अभिप्राय यह है कि अपनी प्रवृत्तियों को सुन्दर बनाओ। पति-पत्नी का कितना सुन्दर विचार, कितनी सुन्दर उनकी आभा रहती थी। मुझे स्मरण है कि जब भी कोई ऋषि उनके आश्रम में जाता तो पति-पत्नी का एक आध्यात्मिक विवेचन चलता रहता। दोनों में शास्त्रार्थ होता, दृष्टिपात होता था वे गृह कितने सौभाग्यशाली होते हैं जिनमें पति-पत्नी विचार-विनिमय करने वाले हों। वह गृह तो स्वर्ग है। वह तो हिमालय की कन्दराओं जैसा स्वर्ग है। जब भी कोई उनके द्वारा जाता है तभी वह आत्मा-परमात्मा की चर्चाएँ, लोक-लोकान्तर की चर्चाएँ, परमाणुवाद की चर्चाएँ, लोक-कल्याण की चर्चाएँ होती रहती हैं।(चौबीसवां पुष्प १-५-७३ ई.)

शिव और पार्वती प्रभु का चिन्तन करते हुए याचना किया करते थे कि हमारा जीवन कैलाश पर्वत के समान स्थिर हो और यज्ञ रूप हो। वे अपने राष्ट्र को सदैव कैलाश बनाने का यत्न किया करते थे और उन कर्मों से दूर रहते थे, जिससे राष्ट्रीयता समाप्त न हो जाए। वह राष्ट्र कैलाश कहा जाता है, जिसमें सदाचार की लहरें हों। जहाँ गंगा की पवित्र धारा हो यह गंगा है। ईडा, पिंगला सुषुम्ना नाड़ियों की जागृति ऐसी प्रजा कैलाश है जो इतनी उच्च हो तथा उसका राजा ही शिव कहलाता है। महाराजा शिव पार्वती से कहा करते थे कि हे देवी! यदि हमारे कैलाश पर कोई आक्रमण करे तो क्या करना चाहिए। पार्वती कहती थी, प्रभु! हमें उन वैज्ञानिक शस्त्रों को धारण करना चाहिए जिनसे इसकी रक्षा हो सके। (सातवां पुष्प १३-११-६३

ई.)

महाराजा शिव के दो पुत्र थे एक का नाम कर्तिकेय तथा दूसरे का नाम ध्रुव था। महाराजा शिव ने मूषक नाम के वाहन का निर्माण किया और निर्माण तपस्या के पश्चात् किया था। परमाणुवाद को एकत्रित करके एक मूषक नाम के वाहन का निर्माण किया। मूषक उस वाहन को कहते हैं जिस वाहन में विराजमान हो करके एक क्षण समय में पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला हो। यह उनके पुत्र गणेश का वाहन था। चूहा पशु नहीं, जैसा आधुनिककाल में बताया जाता है। गणेश नाम शिव के पुत्र का था। उसका उदर प्रबल था। उदर का अभिप्राय यह कि जिसमें संसार का ज्ञान-विज्ञान यह सब समाहित होता हो तो उसका उदर प्रायः ऊर्ध्व होता है, विशाल होता है। उदर का अभिप्राय केवल यह त्वचा ही नहीं है, उदर का अभिप्राय है कि मानव में ज्ञान होना चाहिए। तो वह मानव कहता है कि वह पंडित कितना ज्ञानी है। उसके उदर में कितना ज्ञान है, कितना प्रबल है। जिसका मस्तिष्क इतना गम्भीर हो, इतना सम्माहरित हो जैसे गजराज का मस्तिष्क होता है ऊर्ध्वगति वाला। इसी प्रकार मस्तिष्क शान्त और ऊर्ध्वगति वाला होना चाहिए। वह जो ऊर्ध्वगति है वह मानव को गणपति कहला देती है। गजराज के तुल्य उसका मस्तिष्क बन जाता है।

गणेश जी वैज्ञानिक थे। उनकी लेखनी ऐसे चला करती थी जैसे एक मानव के मुखारविन्द से शब्द उच्चारण हुआ और उच्चारण होते ही, कितना ही गति से रमण करने वाला शब्द हो, उसी से उनकी

लेखनीबद्ध होती रहती। मुझे स्मरण है जिस समय व्यास जी अपनी महाभारत की लेखनी प्रारम्भ करने लगे तो उन्होंने महाराजा कृपाचार्य से कहा कि यदि गणेश जी मेरे द्वारा हों तो मैं कौरव और पाण्डव का इतिहास अंकित कर सकता हूँ। गणेश जी को पर्वतराज के यहाँ से लाया गया और इतनी सुन्दर उनकी लेखनी चला करती थी कि व्यास जी उच्चारण करते रहते थे और वह लेखनीबद्ध होती रहती थी। सर्व महाभारत के साहित्य को उन्होंने एक रात्रि और एक दिवस में लेखनी बद्ध कर दिया था। उनकी लेखनी कितनी महान् थी।

सती द्वारा पति तथा षास्त्र आज्ञा का उल्लंघन

राजा दक्ष के यहाँ यज्ञ था। उस देवयज्ञ का निमन्त्रण सर्व ऋषियों को पहुंचा। परन्तु उन्होंने महाराजा शिव को निमंत्रण न दिया। महारानी सती ने कहा कि महाराज मेरे पिता दक्ष के यहाँ यज्ञ हो रहा है। मेरी इच्छा यह है कि मैं प्रजापति दक्ष के यहाँ प्रविष्ट होना चाहती हूँ। उस समय महाराजा शिव बोले कि हे देवी! षास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन न करो, क्योंकि तुमने त्रयी विद्या का अध्ययन किया है। इसलिए मैं उच्चारण कर रहा हूँ। त्रयी विद्या का अध्ययन करने वाली विदूषी जानती है कि बिना निमन्त्रण के किसी भी यज्ञ में जाना नहीं चाहिए। किसी भी कर्म में जाना नहीं चाहिए। क्योंकि न जाने किस मन्तव्य से वह अपने कर्म को रच रहा है। हम शास्त्रों के विद्वान होते हुए यदि हमारे आँगन मे कोई वाक्य न आए और हम उसमें प्रवेश कर दें तो उनका यज्ञ किस मन्तव्य से है उसमें विक्षेप हो जाएगा। इस प्रकार सती ने मानसिक ममता में आकर कहा कि

मेरे पिता और माता हैं, उनसे मैंने जन्म लिया है। मेरे शरीर का निर्माण माता के गर्भस्थल से हुआ है। पिता ने मेरे आँगन में मुझसे खिलवाड़ की है। मैं अपने ममत्व को नहीं त्यागूंगी। यह सुनकर शिव बोले हे देवी! ममता में अज्ञान होता है। इस ममता के अज्ञान में तुम न जाओ। ममता का अज्ञान तुम्हारे लिए हानिप्रद हो सकता है। क्योंकि ममता के प्रभाव में जाकर षास्त्र का उल्लंघन करना, वेदों का उल्लंघन करना, जो ईश्वरीय वाणी है, पक्षपात रहित है, दार्शनिकता से लिप्त है, प्रकाश से गुंथी हुई है, यदि तुम उसका उल्लंघन करोगी तो तुम्हारा मनुष्यत्व नष्ट हो जाएगा। जब उन्होंने ऐसा कहा तो सती ने कहा कुछ भी हो मेरा तो यह मन्तव्य रहा है कि मेरे द्वारा ममत्व आ गया है। मैं इस ममता के आधार पर माता-पिता को सर्वोपरि स्वीकार करती हूँ। महाराजा शिव ने कहा कि देवी जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

सती ने अपने पति और दर्शनों की आज्ञा का उल्लंघन करके प्रजा-पति के यहाँ के लिए गमन किया। जब सती पिता के द्वार पर पहुँची तो यज्ञ उनके यहाँ आरम्भ होने वाला था। यज्ञ के आरम्भ में देवताओं का पूजन हुआ। पूजन का अभिप्राय यह कि सबके गुणों का वर्णन हुआ। सती ने विचारा कि मेरा सभा में अपमान हो रहा है क्योंकि महाराजा शिव के गुणों का गुणवादन नहीं किया गया। महाराजा शिव वेद के मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके राष्ट्र का विधान भी प्रायः ऊँचा रहता था। भगवान् शिव के राष्ट्र में कोई भी दुखारी नहीं था। उसमें सदैव एक महत्ता की वृष्टि होती रहती। उनका राष्ट्र ऐसे

ऊर्ध्वगति में रहता जैसे सूर्य उदय होता है। उदय वाला उनका राष्ट्र था। उनके राष्ट्र में कोई भी मानव ऋणी नहीं था। ऋषि-मुनियों की पूजा होती, विद्या का प्रसारण होता। परन्तु सभा में उनके गुणों का वर्णन नहीं किया। पिता ने भी उनसे मिलन न किया तो उसने यह स्वीकार किया कि मेरा अपमान हो रहा है। इस अपमान को लेकर यदि पति के गृह में प्रविष्ट हुई तो पति भी मेरे लिए नाना अपशब्दों का प्रतिवादन करेंगे और मैं इसे कैसे सहन कर पाऊँगी। मैंने जो संकल्प किया है यदि वह नष्ट हो जाए तो मेरा आत्मबल नष्ट हो जाएगा, आत्म-प्रवृत्तियां समाप्त हो जाएँगी। उस समय सती ने कहा कि हे पिता! माता! तुम्हें इतना अभिमान है। इस पुत्री ने तुम्हारे गृह में जन्म लिया है। तुम्हारे इस शरीर को तुम्हें अर्पित कर रही हूँ।

यज्ञ में सती ने कहा कि इसे यज्ञ नहीं कह सकते। यज्ञ उसे कहते हैं जहाँ सब प्राणियों का सम्मान होता है। सर्वप्राणियों के प्रति एक सी भावना रहती है। इसको यज्ञ नहीं कह सकते कि एक का मान है। एक का अपमान है। मेरा अपमान है मैं इसको सहन नहीं कर सकती। इसलिए मैं यज्ञ को स्वीकार नहीं करती। मैंने त्रयी विद्या का अध्ययन किया है। त्रयी विद्या में जो यज्ञों की मीमांसा है, वह यह है कि यज्ञ उसे कहते हैं जहाँ संसार का पालन होता है, परमात्मा का प्रतिपादन होता है। परमात्मा की सृष्टि में जितने प्राणीमात्र हैं उनके हित की चर्चा होती है। उनके गुणों का अनुवादन होता है। ऐसा जो यज्ञ है वह मानव के लिए कल्याणकारी है। तब सती ने अपने शरीर को अग्नि में परिणित कर दिया और स्वेच्छया

गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करके अपने शरीर को त्याग दिया। आत्मा उस शरीर से पृथक् हो गया। इस प्रकार सती की अज्ञान में मृत्यु हो गई और प्रकाश में रहने वाले शिव का स्वाभिमान बना रहा। (छब्बीसवां पुष्प ३-१२-७३ ई.)

महाराजा ध्रुव

अनेकों लाखों वर्षों पूर्व उतानपाद नाम के राजा हुए। उनकी दो पत्नियाँ थीं। उनके पुत्र का नाम ध्रुव था। धुरव की माता उसे अपनी लोरियों का पान कराते समय उससे निर्माण की वार्ताएँ प्रकट करती रहती थी।

एक बार वहाँ नारद मुनि आ पहुँचे। उस समय ध्रुव सात वर्ष का था तथा वह विडम्बना में संतृप्त था। उसने नारद से कहा कि प्रभु! मैं बहुत दुःखित हूँ। नारद मुनि उसे अपनी विज्ञानशाला में ले गए। नारद मुनि उस समय हिमालय की कन्दराओं में ध्रवुमण्डल पर अनुसन्धान कर रहे थे। उस ब्रह्मचारी का मस्तिष्क बड़ा तीव्र था। नारद मुनि ने जब यह जान लिया कि यह बालक सुयोग्य है, तो उन्होंने यन्त्र बनाने आरम्भ कर दिए। उनके यहाँ धातुओं के यन्त्र बनते रहते थे तथा कुछ ब्रह्मचारी भी उनके यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय धुरव यान का निर्माण किया जा रहा था। ब्रह्मचारी धुरव ने ब्रह्मचारी रहकर, अपने ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्वगति करके और भौतिक परमाणुओं का विज्ञान प्राप्त करते हुए धुरव यान बनाया। उसमें बैठकर महाराजा धुरव, धुरवमण्डल की यात्र किया करते थे। महाराजा धुरव कितने महान् वैज्ञानिक थे। इसको जानना सहज नहीं।

(सत्राहवां पुष्प)

महात्मा धुरव के जो पिता थे वह आलस्य और प्रमाद में परिणत हो गए। जब धुरव केवल पाँच वर्ष का ही बालक था उस समय उसने अपनी माता से कहा..मैं पिता के दर्शन करने जा रहा हूँ। जब वह पिता के दर्शन करने पहुँचे तो वह अपने द्वितीय बालक को अपने आँगन में धारण कर रहे थे। बालक धुरव जब पिता के आंगन में जाने ही वाला था तो उस समय उनकी सौतेली माँ ने कहा..अरे अभागे पुत्र! यदि तुझे राजा की गोद में ही जाना था तो तूने मेरे गर्भ से क्यों नहीं जन्म लिया? वह बालक इन वाक्यों का स्मरण करता हुआ, व्याकुल होता हुआ, अपनी माता के समीप जा पहुँचा और माता से व्याकुल होकर कहा कि सौतेली माता ने मुझसे यह कहा कि तूने मेरे गर्भ से क्यों जन्म नहीं लिया यदि तुझे राजा की गोद में जाना था। माता मैं क्या करूँ? माता बालक को सांत्वना देने लगी, किन्तु बालक को शान्ति कहाँ थी? उस समय माता ने कहा..हे बालक तूने यदि मेरे गर्भ से जन्म लिया है तो तू वाक्य का स्मरण कर। पाँच वर्ष के बालक के संस्कारों में उद्बुधता आ गई और कहा कि माता आप उच्चारण करो मैं वहीं करूँगा। उन्होंने कहा हे पुत्र! तुम आज प्रभु का चिन्तन करो, प्रभु के मार्ग को अपना लो, क्योंकि यह तो केवल प्रजा के राजा हैं, आलस्य और प्रमाद के राजा हैं। हे बालक! तू उस महान् राजा की गोद में जा जो संसार का अधिराज है। लोक..लोकान्तरों का अधिराज है वह करोड़ों वर्षों से सूर्य को प्रकाश दे रहा है। वह इसी प्रकार सदैव अपने प्रकाश में रमण कर

रहा है। चन्द्रमा अपनी क्रान्ति में रमण करता रहता है। वायु अपने वेग से रमण कर रही है। अग्नि अपनी ज्योति से संसार को तपायमान कर रही है। पृथ्वी अपनी महान् रजों द्वारा इस संसार को जीवन प्रदान करने वाली है। यह खाद्य और खनिज पदार्थों को उत्पन्न कर देती है। हे बालक! तू उस महान् देव की शरण में जा जो संसार का पति है जो संसार के कण-कण का स्वामी कहलाया गया है। तू उस राजा की शरण में चल।

बालक ने जब यह श्रवण किया तो बालक का जो जन्म-जन्मान्तरों का संस्कार था वह उद्बुध हो गया और वह माता के चरणों को छूकर कहने लगा हे माता! अब मुझे आज्ञा दो, मैं ब्रह्म के लिए जा रहा हूँ, मैं ब्रह्म की शरण में जाऊँगा। उस चेतना को जानूँगा जिस चेतना से यह संसार चेतनित हो रहा है, वह जगत् चेतनित है। वह पाँच वर्ष का बालक माता के हृदय को प्रफुल्लित करने वाला, विचित्र बनाने वाला, उसने माता के चरणों को स्पर्श करते हुए यह कहा था ''माता मैं उस चेतना को जाने बिना आपके दर्शन नहीं कर पाऊँगा। माता बड़ी हर्षित हो गई और प्रसन्न होकर कहा, पुत्र! तुम प्रभु की शरण में जाओ, वह जाने ही वाला था कि इतने में नारद के दर्शन हो गए। नारद ने बालक से पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो? उसने कहा कि हे प्रभु! मैं भयंकर वनों में जा रहा हूँ, तपस्वी बनने के लिए, प्रभु का चिन्तन करने के लिए। जब तक मैं निष्ठावान नहीं बनूँगा तब तक मैं प्रभु को नहीं पा सकूंगा। उस बालक ने यह संकल्प धरण कर लिया। महर्षि नारद ने उसे नाना

प्रकार के आश्वासन दिए और कहा कि अरे धुरव! तुम्हारी माता ही ने तो तुम्हें ऐसा कहा है। तुम तो राष्ट्र के स्वामी बनोगे, आधा राष्ट्र तुम्हारा है क्योंकि राजा के दो ही पुत्र हैं। तुम कहाँ जा रहे हो, भयंकर वनों में, पर्वतों में तुम्हारा शरीर विदीर्ण हो जाएगा, तुम्हारा यह सौन्दर्य नहीं रहेगा। हे धुरव! तू संसार के राष्ट्र को भोग और नाना प्रकार की पत्नियों को भोगने वाला बन। इससे तेरा जीवन उन्नत बनेगा। पितृ लोकों को प्राप्त हो जाएगा।

बालक के हृदय में माता का वाक्य ऐसे स्थान कर गया था जैसे प्रातःकाल का सूर्य स्थिर रहता है, प्रकाशमय होता है। उस समय बालक ने कहा, हे ऋषिवर! यह आप क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नारद मुनि तो तीनों लोकों को भ्रमण करने वाले हैं, नाना सौर-मण्डलों में भ्रमण करने वाले हैं। आप मुझे यह क्या प्रकट करने लगे। यह तो मिथ्या है, यह मेरे लिए न होने वाला शब्द है। मैं अपनी माता की आज्ञा का पालन करूँगा। संसार का वैभव मुझे नहीं चाहिए, वह मुझसे दूर हो गया है। क्योंकि वह मानव को सुख के मार्ग में नहीं ले जा सकता है। अन्तरात्मा उस काल में पवित्र होता है जब अपने पिता को जाना जाता है। जब तक आत्मा के पिता को नहीं जाना जाएगा तब तक मैं यह कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। नाना पत्नियाँ मेरे समीप होनी चाहिएं। मुझे राष्ट्र भोगना चाहिए, आपने ऐसा कहा है। यह कण-कण मुझे जितना भी दृष्टिपात आ रहा है, यह प्रभु का राज्य है। जब मैं अपने अधिराज को अपना लूंगा, अपने प्यारे प्रभु ब्रह्म का पुत्र बन जाऊँगा। उस

समय ऐसे सुन्दर राष्ट्र में चला जाऊँगा। मेरे नाना जन्म भी हांगे तो भी मैं उनसे दूर नहीं होऊँगा।

जब यह वाक्य उस सुन्दर से बालक ने प्रकट किए तो नारद ने उसे अपने हृदय का ग्राही बना लिया और कहा कि हे बालक! तू तो वास्तव में पवित्र और महत्ता को लिए हुए है। जाओ, प्रभु का चिन्तन करो। इस प्रकार उसे गुरु-मन्त्र भी प्राप्त हो गया। वह आज्ञा पाकर भयंकर वनों में पहुँच गया, प्रभु का चिन्तन होने लगा। जब चिन्तन प्रारम्भ होने लगा तो देवर्षि नारद आ गए, वे धुरव को नाना उपदेश देते रहते थे। एक समय ध्रुव को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था, हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि जैसे हम इस मण्डल में है, ऐसे ही और भी नाना मण्डल हैं। परन्तु उनमें मानव किस प्रकार चला जाता है? उस समय नारद ने कहा, अरे बालक! क्या तुम यही जानना चाहते हो, क्या तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम्हारा मन जो है उसकी गति कितनी है? यह मन अभी-अभी यहाँ भ्रमण कर रहा है और एक क्षण भी नहीं लगता, यह मन चन्द्र-मण्डल पर पहुँच जाता है। यही मन है जो ध्रुवमण्डल की परिक्रमा करने लगता है। इसलिए मन के ऊपर तुम्हारा संयम होना चाहिए, तुम्हें मन को वाहन बना लेना चाहिए जिससे तुम नाना लोकों में भ्रमण करने के लिए तत्पर हो सको। अब प्रश्न आता है कि यह जो मन है इसकी इतनी तीव्र गति कौन बनाता है? मानव बनाता है, आत्मा बनाता है, कौन बनाता है? यह पंच-तन्मात्राएँ बनाती हैं। यह तो मानवीय प्रवृत्ति होती है। आज जिस स्थूलवत में हम प्राप्त हो गए हैं, उसमें संयम में हाने

वाला वही प्राणी कहलाता है जो मन को स्थिर कर लेता है और मन को कैसे स्थिर किया जाता है? यह जो मन है इसकी चंचलता को जैसे बाह्य इन्द्रियाँ हैं उसमें लीन हो जाता है। और चित्त का जो विषय है वह अन्तरात्मा में व्यय हो जाता है। इस अन्तरात्मा को जानने से तुम दूसरे लोकों में भ्रमण करने वाले बन जाओगे।

जब यह यौगिक वाक्य प्रकट कराया तो बालक ने कहा, प्रभु! मैं अब भौतिक विज्ञान को जानना चाहता हूँ। भौतिकवाद से मैं कैसे इन लोकों का भ्रमण का पाऊँगा? उन्होंने कहा कि भौतिकवाद से आज तुम वसुन्धरा के गर्भ में चले जाओ। वसुन्धरा के गर्भ में कैसे जाओगे? अपने मस्तिष्क से विचारते रहो, कैसे विचारोगे? सबसे प्रथम तुम्हें यह विचारना है कि मेरे मन की जो प्रवृत्ति है वह कहाँ जाती है, उसका स्वरूप क्या है? जब तुम इन स्वरूपों को प्रकृति के स्वरूप में परिणत कर दोगे और जो बाह्य चँचल आभा बन गई है, संकीर्णवाद आ गया है, उसे पृथ्वी के व्यापक गर्भ में परिणत कर दो। व्यापक गर्भ क्या है? वह परमाणुवाद है। जब तुम परमाणुवाद में इस मनीराम को परिणत कर दोगे। इसी मन में पंचतन्मात्राएँ होती हैं। पंचतन्मात्राओं में पाँच ही प्रकार के परमाणु होते हैं। वास्तव मे उस प्रकार जो विभाजन किया जाता है तो सर्व २४ प्रकार के परमाणु होते हैं और एक-एक परमाणु से ९९ परमाणुओं का निकास हो जाता है। उन परमाणुओं में से अनेकों अरबों-खरबां परमाणु बन जाते हैं। जब हम श्वास लेते हैं तो घ्राण के द्वारा अरबों-खरबों परमाणुओं का निकास हो जाता है। इतने परमाणु हम अपने में

धारण कर लेते हैं, उन्हीं परमाणुओं के द्वारा हम वैज्ञानिकवाद में परिणत हो जाते हैं। हमें उन परमाणुओं के द्वारा हम वैज्ञानिकवाद में परिणत हो जाता हैं। हमें उन परमाणुओं को जानना है जो हमारे मानव शरीर में ही बन रहे है और वह बाह्य रूप को धारण कर लेते हैं। अन्तरिक्ष में तरंगें रमण कर रही हैं। हमारा जो शब्द है वह कितना व्यापक बन जाता है, उस शब्द में चला जाता है। उसमें कितनी गति आ गई है, उसके साथ में विद्युत प्राण रहता है, प्राण के साथ मन रहता है। क्योंकि शब्दों का जब भी विभाजन होता है, वह मन के द्वारा होता है। जहाँ मन नहीं होगा वहाँ शब्दों का विभाजन नहीं होगा, राष्ट्र का विभाजन नहीं होगा, विज्ञान का निर्माण नहीं होगा, एक-दूसरे यन्त्र का निर्माण नहीं होगा, जब तक उसके साथ मन नहीं होगा, तो राष्ट्रों के विभाजन हो जाते हैं। कारण क्या है? मन है उसका कारण। मन ही घृणा को उत्पन्न कर देता है। माता, माता नहीं रहती, पिता पिता नहीं रहता। केवल एक स्वार्थवाद आ जाता है। यह भी तो मन ही है। मन की गति के आधार पर राष्ट्र के विभाजन हो जाते हैं। मानव की प्रवृत्ति का विभाजन हो जाता है। इसी प्रकार मानव की मृत्यु हो जाती है। शरीर में नाना प्रकार के रुग्न हो जाते हैं। मानसिक प्रवृत्ति जब अधिक प्रबल हो जाती है। मोह के कारण हो जाए, क्रोध के कारण हो जाए। उसमें, ममता में जब मन अधिक चला जाता है तो उसमें विभाजन हो जाता है।

नारद ने कहा कि हे बालक! आज तुम्हें यह प्रतीत होगा। तुम आज पृथ्वी के गर्भ में जाना चाहते हो। प्रकृति के गर्भ में इस मन

को परिणत कर दोगे। तुम्हारी बुद्धि जब मेधावी बुद्धि बन जाएगी। मेधावी उसे कहते हैं जहाँ सत्यता है और सत्यता के आधार पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो उसमें कल्पना तो होती है और कैसी कल्पना होती है? उसमें अभावमात्र होता है। जैसे मुझे एक मानव दृष्टिपात आ रहा है, स्थूल है। परन्तु मुझे यह दृष्टिपात तो आ रहा है। नारद नाम का जो महापुरुष है वह मुझे दृष्टिपात तो आ रहा है, परन्तु इसमें मुझे अभाव प्रतीत होता है। अभाव क्या है? वह मानव आज है परन्तु कुछ काल के पश्चात् वह उस रूप में नहीं रहेगा, तो इसको अभाव कहा जाता है। उन्होंने कहा कि हे ध्रुव! आज तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि अभावमात्र भी होता है। इस प्रकार जितना भौतिकवाद है वह अभाव मात्र है क्योंकि परमाणुओं में अभाव मात्र होता है और वह जो अभाव मात्र होता है वह इतना नहीं होता है। व्यापकता नहीं लाता। उसमें संकीर्णता आती है और जहाँ संकीर्णता होती है वहीं मृत्यु होती है। मृत्यु ही मनुष्य के विनाश का कारण बना करती है।

जब नारद ने यह वाक्य ध्रुव को प्रकट कराया तो वे शान्त हो गए और नारद अपने आसन को आ पहुँचे। महात्मा ध्रुव तपस्या में परिणत हो गए। महाकठोर तपस्या में परिणत हो गए। प्रभु का चिन्तन करते रहे। प्रकृति के नाना प्रकार के कष्टों का आरोपण उसके द्वारा होता। नाना प्रकार की यातनायें उन्होंने अपने में धारण कीं और वे स्थिर रहे। जो मानव स्थिर बुद्धि होते हैं, अविचल होते हैं उसके द्वारा परिगृहतिक गति नहीं होती। इसकी गति शान्त हो जाती है।

बाह्य इन्द्रियों का विषय आन्तरिकता में परिणत हो जाता है। उस समय उसका जो आन्तरिक हृदय होता है। वह जो आत्मा होता है उसका उत्थान प्रारम्भ हो जाता है और उसका हृदय अगम्यवत् को प्राप्त होने लगता है। कुछ समय पश्चात् जब उनकी तपस्या में प्रबलता आ गई तो नारद जी पुनः आ पधारे। नारद मुनि ने कहा..बालक! तुम महान् हो, पवित्र हो। हे बालक! तुम प्रश्न करो कि तुम क्या जानना चाहते हो। उन्होंने कहा प्रभु मैं भौतिक-विज्ञान से ध्रुव मण्डल की यात्र करना चाहता हूँ। नारद मुनि मौन हो गए और शान्त होकर बोले, हे बालक! तुम भौतिक-विज्ञान की इतनी कल्पना क्यों कर रहे हो जिसमें अभाव है। उस अभाव के क्षेत्र में क्यों जा रहे हो। बालक ने कहा प्रभु! ध्रुव-मण्डल भ्रमण नहीं कर रहा है ध्रुव-मण्डल स्थिर है और जो स्थिर रहने वाला मण्डल है मैं उसको अपने में धारण करना चाहता हूँ, उसके पास पहुँचना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि तुम्हें प्रतीत है कि ध्रुव-मण्डल में कौन सा तत्त्व प्रधान है। उन्होंने कहा, प्रभु यदि मुझे प्रतीत होता तो आपसे क्यों प्रश्न करता? उन्होंने कहा यह जो ध्रुव है इसमें अग्नि और जल दोनों प्रधान कहलाए गए हैं। इसलिए ध्रुव तुम्हें स्थिर प्रतीत होता है। क्योंकि जिस लोक में अग्नि और जल प्रधान होते हैं वह तुम्हें स्थिर प्रतीत होने लगता है। आज तुम्हें यह जानना है तो अग्नि तथा जल दोनों के परमाणुओं को एकत्रित करो। नारद ने उसे वह सब आभा प्रकट कराई कि अग्नि के परमाणु को इस प्रकार जाना जाता है जिसमें व्यापकता होती है। क्योंकि प्रकृति में पाँच ही प्रकार के गुण

होते हैं। जिसमें प्रसारण, ध्रुव, ऊर्ध्व, आकुंचन तथा क्रिया होती है। व्यापक और प्रसारण, प्रकृति के इन दो गुणों को तुम्हें जानना होगा। जानकर जिसे हम आकुंचन कहते हैं। इसमें तुम स्वयं पुट लगाते चले जाओ। तुम ध्रुव-मण्डल को यानों के द्वारा प्राप्त कर सकते हो। यान में सफलता को प्राप्त हो जाओगे। ऐसा उन्होंने वर्णन कहते हुए कहा। नारद मुनि जी ने कहा कि यह विद्या प्रसारण करने योग्य नहीं है। क्योंकि इस विद्या से मानव में अभिमान आ जाएगा। तुम प्रकृति में जाना एक सौभाग्य स्वीकार कर रहे हो। ध्रुव! परन्तु मुझे यह शोभा नहीं देता। मेरे योग्य यह शब्द नहीं जो इन वाक्यों को प्रकट करूं। नाना प्रकार के वाक्यों को प्रकट करते हुए महात्मा ध्रुव ने कहा..प्रभु! मैं वास्तव में इसमें सफल हो जाऊँगा। उन्होंने भयंकर वनों में नाना धातुओं को एकत्रित किया। क्योंकि जिनके सुयोग्य गुरु होते हैं उनका जीवन महत्ता को प्राप्त हो जाता है। उस समय नारद मुनि राजाओं-महाराजाओं से नाना प्रकार की धातु वसुन्धरा के गर्भ से लाने का प्रयास करते थे। वह नाना प्रकार की धातु लाते। कहीं से स्वर्ण, कहीं से आकुंचन शक्ति अकृत लाते। इस वसुन्धरा के गर्भ से, नाना यन्त्रों से धातुओं के लिए प्रयास करते। क्योंकि देवर्षि नारद में कई विशेषताएँ थीं। हमारे यहाँ इस प्रकार के वैज्ञानिक होते हैं, जो इस पृथ्वी के कणों को लेकर जो घ्राण के द्वारा घ्राण शक्ति को जानने वाले प्राणी होते हैं। वह पृथ्वी के परमाणुओं को लेकर उसकी सुगन्ध से ही यह जान लेते हैं कि इस भूमि में, इस स्थान में कौन सा तत्त्व अधिक है। मानों स्वर्ण अधिक है। नाना प्रकार का जो

खनिज है, वह किस प्रकार का खनिज, मुझे कहाँ प्राप्त होगा? यह देवर्षि नारद मुनि सब जानते थे।

ध्रुवपति नाम का एक वज्र होता है। इस वज्र में यह विशेषता होती है। ''सभागच्छम ब्रह्मे समालो कर्म ब्रह्मा आपः प्रति सुप्रजाः।'' कि यदि उसे अग्नि में तपा करके उसका कण-कण कर दिया जाए, अग्नि में उसकी पुष्टि तो होने वाली नहीं थी। क्योंकि अग्नि में परमाणु होने वाला ही वज्र कहलाया गया है। उसमें एक स्वाधित नाम की सुरिलित औषधि होती है उसका मिलान किया, मिलान करने से जो उसका विभाग एक-एक कण हो जाता है, परमाणु-परमाणु हो जाता है। जब कण-कण हो जाता है तो उसमें ''पुठ'' आकुंचन नाम का प्रेय होता है। तो उसका और भी विभाजन हो जाता है। परमाणु हो जाता है इसी प्रकार उसको यन्त्रों के द्वारा उन परमाणुओं को ले करके जब उनकी पुट लगाते हैं तो उन परमाणुओं का पुनः से स्थूल रूप बन जाता है। स्थूल रूप बन करके उसी का व्यापनोति रूप बन करके उसमें एक महत्ता की प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगती है।

नारद मुनि ने उन्हें नाना प्रकार की धातु ला करके 'ध्रुवयेष्ठि' यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र का निर्माण करके महात्मा ध्रुव, ध्रुव-मण्डल की यात्रा करने चले। अन्तरिक्ष को चलने लगे। नारद मुनि प्रसन्नता में परिणात होने लगे। जिसमें एक लाख सूर्य मण्डल समा जाते हैं ऐसा ध्रुव मण्डल है। महात्मा ध्रुव जब ध्रुव मण्डल की यात्रा करने लगे तो नारद मुनि उस समय उसकी माता के समीप जा पहुँचे और माता सुनीति से कहा कि हे माता! आज तेरा प्रिय बालक प्रभु

का चिन्तन करता हुआ ध्रुव मण्डल की यात्रा कर रहा है। माता का हृदय मुग्ध हो गया। माता के हृदय में एक आनन्द छा गया उसके हर्ष की कोई सीमा न रही। (पन्द्रहवां पुष्प २०-४-६३ ई.)

एक बार ऋषियों के समाज ने महाराजा ध्रुव से पूछा था कि आपने विष्णु का साक्षात्कार कर लिया है। आप अपने मन के द्वारा सूर्य मण्डल, बृहस्पति मण्डल आदि में घूमते हैं वह कौन सा संकल्प है? ध्रुव ने बताया कि सर्वप्रथम माता को गुरु बनाया। उसके आदेशों पर आचरण करके उनको उपदेश दिए गए। मन्त्रों पर संकल्पों को स्थिर करके, उनपर आचरण करके उनके बताये मन्त्रों की सहायता से विष्णु को पा गए। वह यन्त्र हमारी आत्मा और अन्तःकरण का है। अन्तःकरण में जब संकल्प आता है मन की विभिन्नता अन्तःकरण में लय हो जाती है। उस समय एक महत्वपूर्ण यन्त्र बन जाता है। जब यह आत्मा उस पुष्पक यन्त्र में विराजमान होकर चलता है तो ध्रुव मण्डल में अवश्य पहुँच जाता है।

मैंने अपनी गतिविधियों को इतना विलक्षण बना लिया है कि जब इच्छा होती है तब मेरा आत्माकरण लिंग में विराजमान होकर स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर से पृथक् हो ध्रुव मण्डल में ही नहीं अरुण मण्डल में, अचंग लोक में, महि लोक में, बृहस्पति लोक में भ्रमण कर लेता है। (तीसरा पुष्प १६-७-६३ ई.)

ध्रुव ने महर्षि भारद्वाज, सैयमी ऋषि, रैमुनि ऋषि तथा सोमभानु ऋषि से शिक्षा पाई थी। (सोलहवां पुष्प ४-८-७१ ई.)

भक्त प्रह्लाद

हिरण्यकश्यप ने विज्ञान के आधार पर अपने जीवन तथा राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयास किया था। विज्ञान को उसने इतना उन्नत कर लिया था, उसको विश्वास हो गया था कि परमात्मा कोई वस्तु नहीं। केवल नाम मात्र है और मानव की कल्पना है। परमात्मा तो राजा को कहते हैं और वह मैं हूँ। मैं प्रजा का ऐश्वर्यशाली कहलाता हूँ। हिरण्यकश्यप ने अपने गुरु शोंग से कहा था कि मेरा हृदय परमात्मा को स्वीकार नहीं करता। मेरे राष्ट्र में सुन्दर मार्ग हैं, शालाएँ हैं तथा कितना विज्ञान है? लोक-लोकान्तरों में भी मैं जाता हूँ। परमात्मा कहीं नहीं है। यह तो एक प्राकृतिक ऋत चेतना है। एक तत्व का दूसरे तत्व से तथा एक परमाणु से दूसरे परमाणु के मिलन से ही चेतना का निकास होता है। उन चेतनाओं के पृथक्-पृथक् हो जाने पर परमात्मा का आस्तित्व दृष्टिपात नहीं आता।

हिरण्यकश्यप ने पठन-पाठन की सुन्दर परम्परा स्थापित की थी। उसका पुत्र प्रह्लाद भी अपने गुरु से शिक्षा पाता था। एक समय एक कुम्हार से बिल्ली के बच्चे अग्नि में तपने के बावजूद भी सुरक्षित निकल आए। इस घटना को लेकर कुम्हार ने प्रह्लाद से कहा कि तुम्हारा पिता अपने को परमात्मा कहता है, उससे पूछो कि ये बिल्ली के बच्चे अग्नि में कैसे जीवित रहे? यह देखकर प्रह्लाद के किसी जन्म के संस्कारों का उदय हो गया और उसे प्रभु में आस्था तथा निष्ठा हो गयी। जब गुरु ने उसे पिता का भय दिखलाया तो उसने उत्तर दिया कि जो प्रभु ने मेरी प्रारब्ध के आधार पर निश्चित कर दिया है। उतनी यातनाएँ तथा कष्ट उसे प्राप्त होगा ही। जब हिरण्यकश्यप को यह

विदित हुआ तो उसने अपनी पत्नी से विचार-विमर्श किया। पत्नी ने भी यही कहा कि मैं भी कभी-कभी यही अनुभव करती हूँ कि चेतनावाद अन्य कोई वस्तु है। आप नास्तिकवाद के मार्ग पर जा रहे हैं। जब हिरण्यकश्यप ने यह कहा कि मैं तुम्हारे प्राणों का हनन कर सकता हूँ। तो पत्नी ने कहा, प्राणों का हनन तो कर सकते हो किन्तु मेरे अन्तःकरण की चेतना को नष्ट नहीं कर सकोगे। राजा इस पर लज्जित हो गया। किन्तु कहा कि तुम्हारी चेतना को जानूँगा और तुम्हारे स्वामी को भी देखूँगा। पत्नी के शान्त हो जाने पर राजा को अपने विज्ञान का अभिमान प्रबल हो गया।

आत्मवेत्ता जो पुरुष होते हैं उनका आत्मा इतना बलवान हो जाता है कि वे एक विज्ञान में परिणत रहते हैं। प्रह्लाद ने अपने जीवन में एक याग का अध्ययन किया, उससे उसकी निष्ठा हो गई। निष्ठा होने पर उसने आध्यात्मिक विज्ञान को जानने के लिए अपने जीवन को लगा दिया उसने यह जानने का निश्चय किया कि आध्यात्मिक विज्ञान कहाँ तक मानव को उन्नत बना सकता है? उसने नम्रता और निष्ठा को प्राप्त कर अपने इस संकल्प को उज्ज्वल बना लिया था, उसे विश्वास हो गया कि तुझे अग्नि नष्ट नहीं कर सकती। आत्मा चेतन है उसे अग्नि नष्ट नहीं कर सकती तथा वायु और जल भी उसे अपने मार्ग में नहीं ले जा सकते। इस मानवीय शरीर की अवस्था जितनी प्रभु ने निश्चित की है उतनी ही रहेगी, इसे कोई नष्ट नहीं कर सकेगा।

हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को कारागार में सर्पों के बीच रखा किन्तु

प्रह्लाद में सर्पों के प्रति भी इतना संकल्प तथा 'अहिंसा परमोधर्मः' प्रबल हो गया था कि वे भी उसे न निगल सके। उसने सर्पों से कहा कि हे विषधरो! तुम विष को धारण करने वाले हो तथा मानव को अमृत देने वाले हो। अतः मुझे अमृत दो और मेरे विष को पान करो। यही इस संसार में तुम्हारा कर्त्तव्य है। यह कहकर उसने एक सर्प को अपने कण्ठ में धारण कर लिया और कहा कि हे आत्मा! तू भी एक आत्मा है और मैं भी एक आत्मा हूँ, तू भी एक चेतना है मैं भी एक चेतना हूँ। आओ चेतना से चेतना का मिलान होता चला जाएगा। प्रातःकाल होने पर प्रह्लाद ने कहा कि हे सर्पराजो! जो मानव क्रोध के द्वारा तथा काम द्वारा विष उगलकर प्रकृति के परमाणुओं को दूषित करता है, उसी विष को तुम पान करते हो, मैं इसमें से कोई सा भी कार्य नहीं करता। मुझमें न हिंसा है, न क्रोध है, न वासना है, मैं तो चेतना का भक्त हूँ, जिस चेतना से तुम भी चेतन हो रहे हो। सर्प यह सुनकर शान्त हो गए।

प्रातःकाल में हिरण्यकश्यप ने देखा कि प्रह्लाद तो परमात्मा का चिन्तन कर रहा है तथा सर्प शान्त हैं। तब उसको बड़ा आश्चर्य हुआ, फिर उसने अपनी विज्ञानशालाओं पर अभिमान करके परमात्मा को अपने राज्य से पृथक् करने के लिए प्रह्लाद को पर्वतों से नीचे गिराने का अपने सेवकों को आदेश दिया। परन्तु प्रह्लाद के निष्ठावान होने के कारण, ब्रह्मचर्य तथा विवेक के कारण उसका शरीर वज्र के समान हो गया था। अतः पर्वत से गिरने पर भी उसकी मृत्यु न हो सकी। विज्ञान मानव को कितना धृष्ट तथा आध्यात्मिक विज्ञान मानव को

कितना महान् बना देता है।

हिरण्यकश्यप की भगिनी होलिका इतनी वैज्ञानिक थी कि वह सदैव विज्ञानशाला में नाना परमाणुओं का मिलान करती रहती थी। उसने एक ऐसी धातु को जाना था कि उसका मरहम बनाकर अपने शरीर पर लगा लो तो अग्नि में शरीर नहीं जलता था, अग्नि शान्त हो जाती थी। वह लोक-लोकान्तरों की यात्रा में सफल हो गई थी। उसका पुत्र फिरणी नाम का वैज्ञानिक था, उसके द्वारा बनाए यन्त्रों से ही वह मंगल आदि ग्रह पर जाती थी। मंगल ग्रह से उसने शिवास्त्र, रेधनी अस्त्र आदि प्राप्त किए थे। उसने मामनिक ऋषि को चन्द्र मण्डल की यात्रा का वर्णन भी कराया था। उसे भी यह अभिमान था कि परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। होलिका ने अपनी विज्ञानशाला में विचार किया कि प्रह्लाद जो प्रभु की एक चेतना बतलाता है। तो वास्तव में कोई चेतना तो होनी चाहिए। उसने अपने विधाता से उसी समय कहा कि एक-दूसरे परमाणु से मिलान करते समय मेरे मस्तिष्क में यह आया कि परमाणुओं की चेतना में जो गति आती है वह एक-दूसरे के मिलान से आती है अथवा कोई पृथक् चेतना है। उसी समय हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र की शत्रुता का वर्णन कर उसे मृत्यु देने की योजना पूछी। होलिका ने उसे अग्नि में जला देने का सुझाव दिया। जिन औषधियों पर होलिका ने अग्नि में न जलने का प्रयोग किया था उसमें यह विशेषता थी कि यदि वह दूसरे प्राणी को लेकर अग्नि में प्रविष्ट होवे तो औषधियों के परमाणुओं की प्रतिभा दूसरे मानव के शरीर में प्रविष्ट कर जाती है। इस प्रकार मर्दन करने

वाला मानव नष्ट हो जाता था। अतः जब होलिका प्रह्लाद का लेकर अग्नि में प्रविष्ट हुई तो वह स्वयं जल गयी और प्रह्लाद बच गया।

उस समय राष्ट्र में दो दल बन गए। एक हिरण्यकश्यप का विचारवादी तथा दूसरा प्रह्लाद का विचारवादी। प्रह्लाद के विचारवादियों ने अपने दल का नाम नरसिंह रखा तथा घोषणा की कि हिरण्यकश्यप का पुत्र ही हमारा राजा है, हम उसी को स्वीकार करेंगे। नास्तिक राजा को हम राष्ट्र में नहीं रहने देंगे। इस प्रकार प्रजा में आस्तिकता की तरंगें उत्पन्न होने लगीं और नास्तिकता की तरंगें शान्त होने लगीं। जब भौतिकवाद का प्रसार होता है तो कोई न कोई सांसारिक प्राणी आकर इस संसार को आस्तिकवाद बनाता चला जाता है। प्रधद के दल में ऐसी क्रान्ति आई कि उसने हिरण्यकश्यप को नष्ट करके प्रधद को राजा बना दिया।

प्रधद महान् वैज्ञानिक, सुशील तथा आस्तिकवादी था। जहाँ उसका परमाणुवाद में विश्वास था वहाँ परमाणु के निर्माणवेत्ता प्रभु में भी उसकी आस्था थी, इसलिए वह अपने कार्यों में सदैव सफल रहा। (चौहदवां पुष्प २२-३-७० ई.)

राजा जड़भरत

राजा जड़भरत पूर्व जन्म में साकल्य मुनि थे। साकल्य मुनि महाराज अपनी स्थली पर मोक्ष के निकट जा रहे थे। परन्तु हिंसक प्राणियों ने एक हरिणी का अवरोध किया तो उसका भय के कारण उनके आश्रम में गर्भपात हो गया और जब गर्भपात हो गया तो हरिणी भयभीत हो करके आगे चली गयी। साकल्य मुनि ने विचारा

कि यह क्या है? तो देखा कि जरायुज में एक प्यारा पुत्र है, उसमें जल का प्रवेश किया, उसमें श्वास आया, वह जीवित हो गया। जीवित होने के पश्चात् साकल्य मुनि उसको अपना अंग स्वीकार करने लगे, मोह आ गया। कहाँ से मोह जागृत हो गया ऋषि के हृदय में, जिस मोह को त्याग दिया था वह मोह पुनः जागरूक हो गया। वे उसका पालन करने लगे, इतना मोह हुआ कि वह पूर्व भोजन करे, उसके पश्चात् ऋषि भोजन करे। कुछ समय के पश्चात् आयु पूर्ण होने पर हरिणी का बालक समाप्त हो गया। समाप्त हो जाने के पश्चात् महाराजा कुवेतकेतु राजा मनु वंशज के यहाँ जन्म लिया, उसकी पत्नी का नाम शकुन्तका था। उस शकुन्तका के गर्भ में उस जीवात्मा का प्रवेश हुआ। जब उस जीवात्मा का प्रवेश हुआ, प्रवेश होते ही जहाँ माता के गर्भस्थल में उस समय वायु भ्रमण कर रही थी, नारकिक क्षेत्र में ऋषि का आत्मा चला गया। ऋषि को ज्ञान था, क्योंकि मोक्ष के निकट था, मोह के कारण कहाँ चला गया, वह कहता है कि प्रभु! मुझे इस नरक से दूर कर, हे प्रभु! मैं मानवत्व के क्षेत्र के लिए जा रहा था, मैं कहाँ आ गया। प्रभु! मुझे इससे दूर कर।

गर्भाशय से कुछ समय के पश्चात् जरायुज बाहर आ गया, संसार में आ गया परन्तु वह संकल्प माता के गर्भ में से ही कर रहा है। प्रभु! मुझे यहाँ से दूर कर, मैं अब मोह नहीं करूंगा संसार में , भगवन् मैं क्रोध नहीं करूँगा। वह बालक गर्भ से दूर हो गया। दूर हो जाने के पश्चात् राजा के यहाँ आनन्द मनाए जाने लगे, पुत्र की

उत्पत्ति हुई। कहीं याग हो रहे हैं, कहीं वेद-मन्त्रों का गान हो रहा है, कहीं सामगान हो रहा है तो कहीं यजूंश गान हो रहा है, नाना प्रकार का गान हो रहा है। परन्तु वह भी समाप्त हुआ। ऋषि बालक की पालना होने लगी। जब बालक कुछ युवा होने लगा तो उसे किसी से मोह नहीं था, न पिता से मोह है, न राष्ट्र से मोह है, न माता से मोह है। राजा ने बालक की बुद्धि की परीक्षा कराई, मस्तिष्क के नाना विशेषज्ञ आए, कोई चिकित्सा नहीं हुई। परिणाम यह कि उसे अपनी वाटिका में स्थित कर दिया। बालक ने सारी वाटिका का विनाश कर दिया। राजा ने उस बालक को कहा कि हे बालक! तू अभागा है। जाओ मेरे राष्ट्र से दूर हो जाओ अन्यथा मृत्युदण्ड दिया जाएगा। वह जन्म-जन्मान्तरों का संस्कारीय आत्मा घर को त्याग देता है और राष्ट्र को त्याग करके भंयकर वन में चला गया। उसने पत्र और पुष्पों का आहार बना लिया, जड़ की भाँति रहता, आत्मा में लीन है, वह आत्मा का चिन्तन कर रहा है।

महाराजा मनु वशंज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज दे करके यह विचारा कि जड़-भरत जैसे महापुरुष को गुरु बना करके मैं भी अपने आत्म-कल्याण को चाहता हूँ। चार कहारों की पालिका में विराजमान हो करके, ज्येष्ठ पुत्र को राज्य दे करके राजा भंयकर वन के लिए चलने लगा। विश्वकेतु राजा भ्रमण करता हुआ वहाँ जा पहुँचा जहाँ जड़-भरत विराजमान था, उससे पूर्व कहार रुग्ण हो गया। जड़भरत को ला करके उसे पालिका में नियुक्त कर दिया। वह जानता नहीं था कि पालिका को कैसे ले जाया जाता है, कहीं नीचे, कहीं ऊपर,

कहीं ध्रुवा, कहीं ऊर्ध्व में। उस समय राजा को क्रोध आया कि ऐसा मूर्ख यह कौन है? इनके द्वारा दण्ड देने की एक संहिता थी। जड़भरत पर मानों आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। जब आक्रमण किया तो जड़भरत शान्त हो करके आक्रमण को सहन करता रहा। जब राजा थकित हो गया तो शान्त हो गया और जड़भरत मग्न होने लगा। राजा कहता है कि अरे! यह क्या है, तुम मग्न क्यों हो रहे हो? उन्होंने कहा कि राजा! मैं इसलिए मग्न हो रहा हूँ कि मैं अपने प्रभु से याचना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! मैंने तो इससे पूर्व जन्म में एक हरिणी के प्यारे पुत्र से मोह किया था। हे प्रभु! यह जो तेरे राष्ट्र में मैं इतना दुःखित हुआ हूँ मोह के कारण। राजा ने मुझे दण्डित करना विचारा, विशेषज्ञों ने मुझे मूर्ख कह करके त्यागा। प्रभु! मैं कितनी यातना सहन कर रहा हूं। परन्तु हे प्रभु! जो तेरे राष्ट्र में जो क्रोधी है, अभिमानी भी है और क्रोध से मुझे दण्डित कर रहे हैं, जो कामी भी हैं, जब तेरे राष्ट्र में पहुंचेंगे तो उनकी क्या दशा होगी? प्रभु! जब मोह के कारण ही मेरी यह दशा बन गई है तो उनकी क्या दशा बनेगी? तो राजा ने कहा कि प्रभु! आप कौन हैं? जड़भरत जान करके उनके चरणों में ओत-प्रोत हो गए। प्रभु! मुझे क्षमा करो, मैं तो आपको गुरुत्व रूप में धारण करने के लिए आया था।

५ पाँचवा अध्याय-रामायण के पात्रों का चरित्र-चित्रण

महर्षि बाल्मीकि ने रामायण का साहित्य लेखनीबद्ध किया। रावण के जीवन से लेकर राम के मरणापर्यन्त पर लेख लेखनीबद्ध किया। (ईक्कीसवां पुष्प पृष्ठ ८०)

वेदों का महान् पण्डित राजा रावण

पुलस्त्य नाम के ऋषि थे जो राजा महिदन्त के पुरोहित थे। पुलस्त्य ऋषि के पुत्र थे, मनीचन्द्र ब्रह्मण और मनीचन्द्र के यहाँ वरुण नाम का पुत्र हुआ। मनीचन्द्र के और भी दो पुत्र थे। उनके कुछ लक्षणों के अनुकूल व्याकरण से उनके नाम चुने। जब यह विद्यालय में शिक्षा पाते थे तो तीनों प्यारे पुत्र परमात्मा के आस्तिक थे और परमात्मा का चिन्तन किया करते थे। वरुण महाराज शिव की याचना किया करते थे। यह सुशील था, वेद-पाठी था, महान् विद्वान था, वैज्ञानिक भी था। भगवान शिव की याचना करते-करते अपनी आत्मा का उत्थान किया। हृदय इसका निर्मल हो गया। आयुर्वेद के सिद्धान्त से इस वरुण ने जितना भी आयुर्वेद नाड़ी विज्ञान था, वह जाना। नाड़ी-विज्ञान के अनुकूल उन्होंने उस (नाभि स्थल में स्थित) अमृत को जाना। उस अमृत से उसके हृदय में निर्मलता, निर्भयता, विचित्रता थी और सब विज्ञान को जानता था। रावण को दशानन कहते हैं, क्योंकि वह दस दिशाओं, पूर्व, पश्चिम, उत्तरायण, दक्षिणायन और इनकी चारों स्थिति, पृथ्वी और अन्तरिक्ष के विज्ञान को जानता था। वह ब्राह्मण था और महान् प्रकाण्ड बुद्धिमान था।

विज्ञान को जानने के पश्चात् वह अपने पिता के सम्पर्क में आया। पिता ने कहा कि भाई। अब तुम संस्कार करा लो। परन्तु उन्हांने कहा कि महाराज मेरी संस्कार कराने की इच्छा नहीं।

रावण का विवाह संस्कार

राजा महिदन्त चक्रवर्ती राजा थे। पाताल पुरी भी उन्हीं की थी। रोहिणी नाम का राष्ट्र भी उन्हीं पर था। गान्धार इत्यादि जो राज्य थे वे राजा महिदन्त के अधीन थे। इनका जो राजकोष था वह लंका में था। इन्होंने स्वर्ण की लंका भी बनवाई और महाराजा शिव उनके सहायक रहते थे। (पाँचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

एक समय पुलस्त्य ऋषि ने महाराजा शिव से निवेदन करके लंका में एक स्थान नियुक्त किया, वह स्वर्ण का गृह था जिसमें पुलस्त्य-ऋषि विश्राम किया करते थे। कुछ समय के पश्चात् ऐसा हुआ कि जो जिस राष्ट्र का राजा था वह उस राष्ट्र का राजा चुना गया। लंका का स्वामी महाराजा कुबेर बन गया और भी सब राजाओं ने अपने-अपने राष्ट्र को अपना लिया। (दूसरा पुष्प ७-३-६२ ई.)

पाताल पुरी को कुधित रुष्टित नाम के राजा ने अपना लिया और भातिक नाम के राजा ने सोमधित राज्य को अपना लिया। राजा महिदन्त का सूक्ष्म सा राष्ट्र रह गया। (पाँचवां पुष्प २०-१०-६४ ई.)

राजा महिदन्त के न कोई पुत्र था न कन्या थी। कुछ समय के पश्चात् ऐसा सुना गया कि राजा महिदन्त के एक कन्या उत्पन्न हुई। तो राजा ने बड़ा ही आनन्द मनाया। नाना वेदों के पाठ कराए। जन्म-संस्कार बड़े उत्सव से कराया। उसके पश्चात् कन्या जब कुछ प्रबल

हुई तो महाराजा की धर्मपत्नी सुरेखा ने कहा..'हे भगवन्! इस कन्या को तो गुरुकुल में जाना चाहिए, जिससे यह विद्या पाकर परिपक्व हो जाए। उस समय महाराजा महिदन्त अपनी धर्मपत्नी की याचना को पाकर, उस कन्या को लेकर कुल-पुरोहित महर्षि तत्त्वमुनि महाराज के समक्ष पहुँचे। उस समय ऐसा सुना गया है वह २८४ वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी थे। वहाँ पहुँचकर राजा और कन्या ने महर्षि के चरणों को स्पर्श किया और राजा ने कहा, ''भगवन्! मेरी कन्या को यथार्थ विद्या दीजिए जिससे यह हर प्रकार की विद्या में सफल होवे।''

महर्षि बाल्मीकि ने इस सन्म्बन्ध में ऐसा वर्णन किया है कि राजा महिदन्त तो अपने स्थान पर चले गए और ऋषि ने उस कन्या को शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शिक्षा पाते-पाते वह कन्या बड़ी महान् बनी और विद्या में बहुत ऊँची सफलता प्राप्त की। वह भौतिक-यज्ञ और कर्म-काण्ड में प्रकाण्ड हो गई। वह वेदों का हर समय स्वाध्याय करती थी। उस समय ऋषि ने अपने मन में सोचा कि यह कन्या तो क्षत्रिय की है, परन्तु इसके गुणों को देखते हैं तो ब्राह्मण-कुल में जाने योग्य है। अब क्या करना चाहिए? ऋषिवर यही नित्यप्रति विचारा करते थे।

कुछ काल के पश्चात् वह कन्या युवा हो गई। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा परिपक्व होता है, वह कन्या अपने ब्रह्मचर्य से परिपक्व थी। राजा अपनी धर्मपत्नी के कथनानुसार वहाँ से बहते भये ऋषि से जाकर प्रार्थना की कि भगवन्! अब कन्या को गृह में ले लाना चाहते

हैं। अब इसका संस्कार भी करना चाहिए। अब मुझे नियुक्त कीजिए कि मेरी कन्या कौन से गुण वाली है? किस वर्ण में इसका संस्कार होना चाहिए? उस समय ऋषि ने कहा, भाई, तुम्हारी कन्या तो ऋषिकुल में जाने योग्य है। आगे तुम किसी के द्वारा इसका संस्कार करो, हमें कोई आपत्ति नहीं। राजा वहाँ से उस ब्रह्मचारिणी को लेकर राज-गृह आ पहुँचे।

हमारे यहाँ यह परिपाटि है कि जब ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मचारी गुरुकुल से आए तो माता-पिता यजन और ब्रह्मभोज कर उनका स्वागत करें। उसी प्रकार माता..पिता ने उस कन्या का यथाशक्ति स्वागत किया। स्वागत करने के पश्चात् पत्नी ने अपने पति से कहा..''महाराज! अब तो हमारी कन्या युवा हो गई है। इसके संस्कार का कोई कार्य करो।''

उस समय महाराज नित्यप्रति भ्रमण करने लगे। भ्रमण करते-करते पुलस्त्य ऋषि के पुत्र मनीचन्द के द्वार जा पहुँचे। मनीचन्द के एक पुत्र था, जो ४८ वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी था। वह वेदों का महान् प्रकाण्ड था। महाराज ने मनीचन्द से निवेदन किया, ''महाराज! मेरी कन्या को स्वीकार कीजिए। मैं तुम्हारे पुत्र से अपनी कन्या का संस्कार करना चाहता हूँ।'' उस समय मनीचन्द ने कहा, ''महाराज! हमारे ऐसे सौभाग्य कहाँ हैं जो इतनी तेजस्वी कन्या हमारे कुल में आए। उस समय उस बालक वरुण ने और माता-पिता ने उसके संस्कार को स्वीकार कर लिया। राजा मग्न होते हुए अपने घर आ पहुँचे।

नक्षत्रों के समय नियुक्त किया गया। कुछ समय के पश्चात् वह दिवस आ गया। मनीचन्द अपने पुत्र से बोले, कि हे पुत्र! आदि ब्राह्मणजनों का समाज होना चाहिए। जिस कन्या का, जिस पुत्री का, जिस पुत्र का, वेद के विद्वानों में, विद्वत् मण्डल में संस्कार होता है उसका कार्य हमेशा पूर्ण हुआ करता है।

उस समय नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। निमन्त्रण के पश्चात् विद्वत्-समाज वहाँ से नियुक्त हो राजा महिदन्त के समक्ष आ पहुँचा। राजा महिदन्त ने देखा कि बड़ा विद्वत्-मण्डल है। राजा ने यथाशक्ति स्वागत किया। ऋषियों की परिपाटी के अनुकूल ब्रह्मचारिणी अपने पति का स्वयं सत्कार करने जा पहुँची। नाना मणियों से गुंथी हुई पुष्प-मालाएँ तथा नाना प्रकार की मेवाएँ उस कन्या ने उनके समक्ष नियुक्त कीं, उन्होंने वह स्वीकार कर ली। इस प्रकार राजा ने अपने सम्बन्धियों का यथाशक्ति स्वागत किया। स्वागत् के पश्चात् यथा-स्थान पर विराजमान किया गया। सायंकाल कन्या के संस्कार का समय हो गया। बड़े आनन्द से वहाँ संस्कार होने लगा बुद्धिमानों के वेद-मंत्र होने लगे। ब्रह्मचारी अपने वेदमन्त्रों का गान गा रहा था, ब्रह्मचारिणी अपने वेदमन्त्र गा रही थी। भिन्न-भिन्न स्थानों पर वेदों के गान गाए जा रहे थे। बड़ी आधानंदी से वह संस्कार समाप्त हो गया।

अगला दिवस आया। उस समय शरद् वायु चल रही थी। उसके कारण उस बालक के सन्म्बन्धी स्नान नहीं कर रहे थे। उस बालक ने कहा 'अरे! तुम स्नान क्यों नहीं कर रहे हो?' उन्होंने कहा, 'स्नान क्या

करें शरद् वायु चल रही है।' उस समय उस बाल-ब्रह्मचारी ने, जो वदों का ज्ञाता था, जो विज्ञान की मर्यादा को जानता था, उसने प्रणाम किया और कहा, 'हे वायुदेव! तुम हमारे कार्य में विघ्न डाल रहे हो, कुछ समय के लिए शान्त हो जाओ।' उस समय उस ब्रह्मचारी के संकल्पों द्वारा वायु कुछ धीमी हो गई। सभी सम्बन्धियों ने स्नान किया। नाना सन्म्बन्धी स्नान कर अपने-अपने स्थानों पर नियुक्त हो गए।

इसके पश्चात् द्वितीय समय आया और वहाँ सब अपने-अपने गृह को जाने लगे। उस समय राजा महिदन्त ने यथाशक्ति सभी का स्वागत किया। जब कन्या जाने लगी तो एक ने कहा 'अरे भाई! यह पुत्र इतना योग्य था, परन्तु राजा महिदन्त ने अच्छी प्रकार स्वागत नहीं किया।' उस समय राजा महिदन्त व्याकुल होने लगे। उन्होंने व्याकुल होकर कहा, 'हे सम्बन्धियों! मैं क्या करूँ? मेरा तो यह काल ही ऐसा है। कोई समय ऐसा था जब चक्रवर्ती राज्य था। अब तो जितना द्रव्य था सब लंका चला गया। महाराजा कुबेर उसका स्वामी बन गया है।' उस समय इन वार्ताओं को स्वीकार, सबने अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया।

उस बालक ने अपने गृह पहुँचकर सोचा कि मेरे सन्म्बन्धी ने जो यह कहा कि मेरी लंका को कुबेर ने विजय कर लिया है तो मुझे कुबेर से लंका को विजय करना है। बुद्धिमान सर्वत्र पूज्य होता है। पुलस्त्य ऋषि महाराज का पौत्र था, इसलिए वह जिस राष्ट्र में जाता था वहाँ ही उसका स्वागत होता था। जो स्वागत में कुछ देता तो

ब्रह्मचारी उससे माँगते, दस हजार सेना मुझे दो जिससे मेरा काम बने। इस प्रकार प्रत्येक राज्य से दस-दस हजार सेना एकत्र करके उसने लंका पर हमला किया और राजा कुबरे को जीत लिया।

उस समय राजा कुबेर ने कहा था 'अरे भाई! तुम मुझे क्यों विजय कर रहे हो।' उस समय उस महान् ब्रह्मचारी ने कहा था, 'अरे कुबेर! मैं तेरे राष्ट्र में शान्ति नहीं देख रहा हूँ। जिस काल में जिस राजा की प्रजा शान्त न हो, उस समय उस राजा को पद से गिरा देना धर्म है और उसके स्थान पर शान्तिदायक आत्मज्ञानी को, जो प्रजा को यथार्थ सुख-शान्ति देने वाला हो, राजा बनाना चाहिए।'

उस समय उस ब्रह्मचारी ने राजा कुबरे को लंका से पृथक् कर दिया। वह अपने राष्ट्र में जहाँ का था वहीं ही जा पहुँचा। वह बालक वरुण राजा महिदन्त के सम्मुख जा पहुँचा और उनसे बोला, 'महाराज! मैंने आपकी लंका को विजय कर लिया है। आप अपनी लंका को स्वीकार कीजिए।' उस समय राजा महिदन्त ने कहा, 'हे ब्रह्मचारी! लंका को तुमने विजय किया है, मुझे स्वीकार है। परन्तु स्वीकार करके मैंने यह लंका अपनी कन्या के दहेज में तुम्हें अर्पण कर दी।

रावण का राज्याभिषेक

वहाँ सब राजा नियुक्त किए गए और वहाँ का राजा उस बालक को नियुक्त किया गया। उस समय राजाओं ने ऋषियों का समाज नियुक्त किया और कहा कि भाई! यह वरुण बालक लंका का स्वामी बना। इसका द्वितीय नाम क्या उच्चारण करें। यह तो ब्रह्मचारी पद का

नाम है। उस समय ऋषियों, आचार्यों आदि ने उस बालक का नाम रावण नियुक्त किया। (दूसरा पुष्प ७-३-६२ ई.)

रावण शब्दार्थ ऊँचे और दानी का है, वीर का है। उसने कुबेर को नष्ट किया और लंका का स्वामी बना। (पाँचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

विजय के पश्चात् लंका में महाराज पुलस्त्य ऋषि ने महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज और महात्मा बिन्दु को और भी आदि ऋषियों को निमंत्रित किया। महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज उस समय महान् तपस्वी थे। उनको राज-पुरोहित बनाया गया और यह कहा कि महाराज! आप इस सभा के सभापति बनो और इस बालक का निर्माण करो। महाराजा कुक्कुट मुनि महाराज जहाँ आध्यात्मिकवेत्ता थे, वहाँ आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने आयुर्वेद की दृष्टि से राजा रावण के मस्तिष्क का अध्ययन किया और पुलस्त्य ऋषि महाराज से धीरे से कहा ''महाराज! यह जो बालक है, पुत्र है, युवा है, शक्तिशाली है, यह वैज्ञानिक भी बनेगा। परन्तु यह राष्ट्र को राष्ट्रीयता में नहीं ला सकेगा। राष्ट्रीयता में लाने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र को कर्त्तव्यवाद में लाना, चरित्र को लाना, यह राष्ट्रीयता के लिए अनिवार्य है। हे ऋषिवर! मैं इसका राज्याभिषेक नहीं करूँगा?''

ऋषियों का, विवेकियों का हृदय निष्पक्ष होता है। जब महाराजा पुलस्त्य ने विचारा कि अब मैं क्या करूँ? अब महर्षि भुंजु मुनि महाराज को, जो शांडिल्य गौत्रीय थे, सभापति बनाया गया और उनके द्वारा राज्याभिषेक हुआ। हमारे यहाँ विवेकी पुरुष राष्ट्रवादी होते हैं। महात्मा कुकुट ने महर्षि पुलस्त्य से कहा था कि तुमने यह

समाज की हानि के लिए कार्य किया। तुम पौत्र के मोह में आ गए हो, कर्त्तव्यवाद का तुमने विचार नहीं किया। पुलस्त्य मुनि महाराज मौन हो गए। ऋषि ने कहा कि लंका में अग्नि मैं अपने समक्ष दृष्टिपात करूंगा। वह समय आ जाएगा।

महर्षि कुकुट मुनि महाराज ने राजा रावण को कई काल में उपदेश दिया। (चौबीसवां पुष्प ६-८-७३ ई.)

परिणाम यह हुआ कि रावण के राष्ट्र में चरित्र न रहने के कारण राम जैसे महापुरुषों ने लंका को समाप्त कर दिया।

(अठारहवां पुष्प १३-४-७२ ई.)

रावण का राज्य विस्तार : रावण प्रभु का महान् पुजारी था। राजा होने के पश्चात् राजसी गुण आने लगे। अन्त में उसमें तमोगुण आ गया और नष्ट हो गया।

उसने संसार में राज्य को अपनाया। पातालपुरी को लिया, गान्धार को लिया, सुधित नाम के राज्य तथा रूधिर नाम के राज्य को लिया। नाना सब राज्यों को अपनाकर आर्यवर्त पर आक्रमण किया। यहाँ भी आकर केवल एक अयोध्या राज्य को छोड़ा था। वह इतना विस्तार कर चुका था। राजा रावण के पुत्र थे नरांतक, अहिरावण, मेघनाद और अक्षयकुमार। अहिरावण पातालपुरी का राजा था। नरांतक सुधित का राजा था। अक्षयकुमार रोहिणी नामक राज्य का राजा था। उनका सम्बन्धित खरदूषण इस आर्यावर्त की सीमा को दमन करता चला आ रहा था। मारीच आदि और भी सम्बन्धित आततायी थे। इन राज्यों के आधुनिक नाम इस प्रकार हैं और

पातालपुरी को अमेरिका कहते हैं, सुधित नाम के राज्य को रूस करते हैं, रोहिणी नाम के राज्य को चीन कहते हैं तथा गान्धार इत्यादि को काबुल, विलोच इस प्रकार का कहते हैं। (पाँचवां पुष्प २०-१०-६४ ई.)

रावण के पुत्र मेघनाद ने इन्द्र को विजय किया और त्रिपुरी के राष्ट्र का स्वामी बना। अहिरावण ने 'सुरीखी' नाम के राजा को नष्ट किया और पातालपुरी का स्वामी बना। नरांतक ने सुत्रभूमित नाम के राजा को नष्ट किया और वहाँ अपना राज्य किया, जिसे सोमकेतु नाम का राष्ट्र कहते हैं।

रावण का राज्य कहाँ तक था। इस आर्यावर्त में था, पातालपुरी में था, इन्द्रपुरी में था। जिसको हम त्रिपुरी भी कहते हैं, और जिसको भवनेति राज्य और चिरंगित कहते हैं, इन सभी राष्ट्रों में विस्तार से रावण का राज्य हो चुका था।

सोमकेतु राष्ट्र जो त्रेताकाल में था उसे रूस कहते हैं, जिसको इन्द्रपुरी कहा और जिसको रावण के पुत्र ने विजय किया जिसको पुरातन काल मे त्रिपुरी कहते थे, आधुनिक काल उसका अपभ्रंश होकर तिब्बत हो गया। जिसको चिरंगित कहा उसे आधुनिक काल में चीन कहते हैं। (दूसरा पुष्प २-१०-६४ ई.)

रावण के राष्ट्र में न सूर्य उदय होता था और न अस्त होता था, इतना व्यापक राष्ट्र था। एक अयोध्या का राष्ट्र ही शेष रह गया था। (सताईसवां पुष्प ४-५-७६ ई.)

रावण राज्य का वर्णन

रावण चारों वेदों का ज्ञाता और वैज्ञानिक था। परन्तु उसके पश्चात् भी उसको दैत्य और यवन की श्रेणी में चुना जाता है और वह इसलिए कि वह अक्षरों का बोधी था। जो मानव संसार में अक्षरों का बोधी होता हे उसका यह वेद उत्थान नहीं करता। वह तो एक प्रकार का पक्षी होता है और वह रटन्त विद्या को अपने में धारण करता है। उससे यदि मानवत्व को ऊँचा नहीं बनाता तो वह मानव नहीं कहलाता है।

रावण राष्ट्रनीतिज्ञ था, केवल नीति जानता था। परन्तु उस नीति के साथ-साथ यदि धर्म होता तो रावण की पताका संसार में सबसे उच्च कहलाती, परन्तु उसके राष्ट्र में नीति थी कि दूसरों का हनन करो और राज्य करो। (दूसरा पुष्प २-१०-६४ ई.)

रावण के राज्य में क्रान्ति आई, क्योंकि उसके यहाँ द्रव्यपतियों का संग्रह करने का आचरण बन गया था और निर्धनों में निर्धनता का साम्राज्य छा गया था। (छठा पुष्प २८-७-६६ ई.)

वैज्ञानिक उन्नति..राजा रावण के यहाँ विशाल यन्त्र थे। रावण को इस विद्या की (१) महर्षि भारद्वाज ने शिक्षा प्रदान की थी। वह शिक्षा उसके पश्चात् रावण ने कुछ (२) महर्षि सोमभुक से प्राप्त की थी। इसके पश्चात् उन्होंने (३) ब्रह्मा से भी यह शिक्षा ग्रहण की थी। रावण ने इस विद्या को ले करके अपने राष्ट्र में विज्ञान का प्रसार किया। अपने पुत्रों को वैज्ञानिक बनाया और अपने विधाता कुम्भकरण को भी वैज्ञानिक बना दिया। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

अक्षय कुमार वैज्ञानिक

मुझे प्रभु की कृपा से रावण के पुत्र अक्षय कुमार के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो भौतिक विज्ञान में लोकों की गणना किया करते थे।

जब राजा रावण अपने पुत्र की विज्ञानशाला में पहुँचे तो अक्षय कुमार को यह ज्ञान न था कि तुम्हारे पिता, तुम्हारे द्वार विराजमान हैं। बहुत समय के पश्चात् जब रावण ने कुछ संकेत दिया तो उस समय ज्ञान हुआ कि मेरे पिता हैं। उन्होंने पिता को नमस्कार करके कहा कि भगवन्! मुझे यह भान ही नहीं था कि आप भी मेरे द्वार पर हैं। उस समय राजा रावण ने कहा कि 'पुत्र! तुमने कुछ पाया?' उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं ऐसे ब्रह्माण्ड में पहुँच चुका हूँ, ऐसे भयंकर वन में पहुंच चुका हूँ जहाँ मुझे कोई मार्ग प्राप्त नहीं हो रहा है। मैं उसी विचार-विनिमय से अपने जीवन का मन्थन कर रहा हूं और जो मैंने जाना है उसका मन्थन कर रहा हूँ। कुछ समय के पश्चात् मन्थन किया हुआ आपके समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

जब बालक अक्षय कुमार माता के गर्भ में था, उस समय माता मन्दोदरी आकाश-गंगा और इन लोक-लोकान्तरों का चिन्तन किया करती थी। (आठवां पुष्प अप्रैल १९६५)

नरान्तक

एक समय रावण के पुत्र नरान्तक उदंग ऋषि के द्वार पर पहुँचे। उस समय ऋषि ने पूछा, 'महाराज! कहाँ विचर रहे हो?' उस समय नरान्तक ने कहा, महाराज! मैंने अपनी बाल्यवस्था में ऐसे महान् यन्त्रों को खोजा है कि जिन यन्त्रों में मैंने नाना प्रकार की विशेषताएं

पाई हैं। महाराज! मैंने भौतिक विज्ञान को खोजा है; ऐसे यन्त्रों को प्राप्त किया है कि जिनसे मैंने परमात्मा के बनाए सब पदार्थों को अपने अधीन कर लिया है। परमात्मा की कोई विशेष सत्ता नहीं है। उस समय ऋषि ने कहा, 'अरे! अभी तुम ऐसे अगाध समुद्र में नहीं गए जहाँ तुम परमात्मा को जान सको, तुमने परमात्मा के विज्ञान को तो खोजा ही नहीं। अभी तो तुम आत्मा के विज्ञान को क्या, मन के विज्ञान को ही प्राप्त कर रहे हो। मन के विज्ञान के आगे भी कुछ देखो। मन के विज्ञान के आगे बुद्धि का विज्ञान है; इसके अनन्तर अन्तःकरण का विज्ञान है। अन्तःकरण के विज्ञान से मानो ब्रह्मचर्य के बल के विज्ञान से पृथ्वी का विज्ञान आता है। तब सभी कुछ विज्ञान जान सकोगे। जब इतने बड़े अगाध विज्ञान में पहुँच जाओगे तब उस समय सबसे बड़े वैज्ञानिक उस परमात्मा को अच्छी प्रकार जान सकोगे। हे नरान्तक! तुमने अभी तक मन के ही विज्ञान को जाना है। यह तो केवल मन की कल्पना मात्र ही है, तुम्हारे मन का अज्ञानतावश केवल मात्र स्वार्थ ही है तथा केवल मन से ही कर रहे हो, परमात्मा कोई पदार्थ नहीं। अन्तःकरण में विराजमान होकर देखो कि तुम्हारा अन्तःकरण क्या कह रहा है? तुम्हारा आत्मा क्या कह रहा है? यह तो कह रहा है कि अरे तू पापी मत बन। पर तुम उस आत्मा की ध्वनि को, उस आदेश को भुलाकर, उपेक्षा करके पापी बन रहे हो, परमात्मा की सत्ता को समाप्त कर रहे हो। तुमने गम्भीर मुद्रा को जाना नहीं। बिना गम्भीर मुद्रा के केवल कल्पना-मात्र से परमात्मा की सत्ता समाप्त करना चाहते हो। यह जीवन की कोई

महत्ता नहीं है।

उस समय नरान्तक ने कहा कि महाराज! मैं कैसे जान पाऊँगा। मैं तो यह जानता हूँ कि परमात्मा कर ही क्या रहा है? अर्थात कुछ भी नहीं, भगवन्! मैंने तो उस महत्ता को जाना है कि जिसे अब तक कोई नहीं जान सका। ऋषि ने कहा, हे महान् बुद्धिमान! तुम्हारी बुद्धि यथार्थ है; तुम जो उच्चारण कर रहे हो यथार्थ है। जब बुद्धि से परे जाओगे, बुद्धियों के भेद को जानोगे, वेदों का पाठ करके निर्णय करोगे तब तुम्हें जानकारी हो जाएगी।

उसने दृष्टान्त दिया कि एक गुरु और शिष्य थे। गुरु-शिष्य को शिक्षा दिया करते थे। शिष्य ने सूक्ष्म सी विद्या पाकर कहा कि महाराज! मैं तो बुद्धिमान बन गया हूँ। अब मुझे आज्ञा दीजिए। आचार्य ने कहा, 'अरे! अभी तुम बुद्धिमान नहीं बने हो। जब बुद्धिमान बन जाआगे तब स्वतः ही चले जाआगे। और सूक्ष्म सी विद्या पाकर कहा, महाराज! अब तो मैं विद्या में पूर्ण हो गया हूँ। आचार्य ने फिर वही कहा कि अभी तुम पूर्ण नहीं हुए हो। आगे जब वह परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान में पहुँचा, जहाँ जीवन के जीवन समाप्त हो जाते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं, तब उसने कहा कि गुरुदेव! मैंने तो संसार में आकर अभी तक कुछ जाना हो नहीं।

हे नरान्तक! तुम तब ही महान् बनोगे जब तुम अगाध ज्ञान-विज्ञान में पहुँचोगे। अभी तो तुमने सूक्ष्म सी विद्या को जाना है। चन्द्रमा में जाने का भौतिक यन्त्र बनाया है। जिस समय तुम ऐसे यन्त्र को खोज लोगे कि जिसके द्वारा ऐसे लोकों में भ्रमण करने लगोगे

जहाँ एक हजार सूर्य समा सकते हैं तब हम जानेंगे कि तुम अगाध वैज्ञानिक बन गए हो।

ऋषि के इन वचनों को सुनकर नरान्तक ने कहा कि 'महाराज! क्या कोई ऐसा यन्त्र भी है, कोई ऐसा परमाणु भी है जिसके द्वारा बृहस्पति आदि लोकों का भ्रमण कर सकूँ? ऋषि ने कहा, 'हाँ ऐसे यन्त्र भी है।' नरान्तक ने कहा, ऐसे यन्त्र क्या हैं? ऋषि..देखो जितना तुम्हारा मन महान् है जिससे तुमने भौतिकता को जाना है, उस मन को बुद्धि में लय कर दो। संसार में आ करके पहले परमात्मा की सत्ता, उसके शासन के अटल नियमों का पालन करो अर्थात् सत्य बनो। यथार्थ वाणी का विषय मन में लय करो। तन्मात्राएँ जब मन में लय हो जाँएगी, जब ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के विषय भी अन्तःकरण में लय हो जाएँगे, उस समय इनके समूह का एक यन्त्र बन जाएगा जिसको पुष्पक विमान कहा करते हैं। हे नरान्तक! इस विमान में विराजमान होकर तुम सूर्य-मण्डल, बृहस्पति मण्डल आदि लोक-लोकान्तरों में रमण करने वाले बन जाओगे। इस यन्त्र में विराजमान होने वाला यह जीवात्मा है, इस दिव्य यान को चलाने वाला परमपिता परमात्मा है। यदि तुम परमपिता परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करोगे तो वह तुम्हारी प्रार्थना या निवेदन को अवश्य स्वीकार करेगा। उस समय जहाँ तुम जाना चाहोगे वहाँ परमात्मा तुम्हें अवश्य पहुँचा देंगे। जब तक स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं करोगे, उसकी आज्ञा में कार्य नहीं करोगे, वे तुम्हें कहीं भी नहीं पहुँचाएँगे। (तीसरा पुष्प प्र. कथा)

कुम्भकरण त्रेता का सर्वोच्च वैज्ञानिक

कुम्भकरण के बाल्यकाल का नाम अश्विनीकेतु था। कुम्भकरण उच्चारण इसलिए करने लगे क्योंकि वह बलवान था, बलिष्ठ था, हृदय का विशाल था। जैसे कुम्भ में जल होता है, जल शीतल और सौम्य होता है, इसी प्रकार उनका भी स्वभाव शीतल और सौम्य रहता था। कर्ण का अर्थ श्रवण इन्द्रिय है। उसका मस्तिष्क इतना विशाल था जैसे कुम्भ का आकार होता है। वह नाना प्रकार की वस्तुओं को श्रवण करने वाला कुम्भकरण था। महर्षि भारद्वाज उसे कुम्भकरण कहा करते थे। कुम्भकरण में यह विशेषता थी कि वह निद्रा का बहुत सूक्ष्म पान करते थे, उन्हें निद्रा बहुत सूक्ष्म आती थी। वह कम इसलिए आती थी क्योंकि वह सदैव अनुसन्धान में लगे रहते थे। (तेईसवां पुष्प ११-३-७२ ई.)

महर्षि भारद्वाज ने राजा रावण के विधाता कुम्भकरण को अपना साथी बनाया था, क्योंकि हमारे त्रेता के काल में राजा रावण के विधाता कुम्भकरण, पुलस्त्य ऋषि के पौत्र से ऊँचा वैज्ञानिक नहीं था। महर्षि भारद्वाज मुनि, कुम्भकरण जिनको निश्चित ही आख्यात वैज्ञानिक कहा जाता था, की विज्ञानशाला में अनुसन्धान करते थे। (चौबीसवां पुष्प ६-८-७३ ई.)

एक समय भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि आज तुम्हें यन्त्र में विराजमान होकर उड़ान उड़नी है तो उन्होंने कहा 'जो आज्ञा हो।' महर्षि भारद्वाज मुनि के कथनानुसार उन्होंने एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया था। वे प्रातःकाल में यज्ञ करते। वह २८४ प्रकार की औषधियों

को एकत्रित करके सामग्री बनाते थे, वह जो शाकल्य था, वनस्पतियाँ थीं, उनमें किसी में अग्नि प्रधान, किसी में वायु प्रधान, किसी में जल प्रधान। औषधियों में भी इन्हीं में से किन्हीं तत्वों की प्रधानता होती है। उनके यहाँ ९ कोण वाली यज्ञशाला थी। उस ९ कोण वाली यज्ञशाला में सुगन्धित शाकल्य प्रदान किया जाता था। उससे सुगन्धि उत्पन्न होती थी। उन सुगन्धियों को, उन परमाणुओं को उन यन्त्रों में लेते थे जिनमें एक-दूसरे परमाणु का मिलान करते थे। तब उनसे वे यन्त्र में उन धातुओं को एकत्रित करके, उसमें विराजमान हो करके वह मंगल की यात्रा करते थे। एक काल भली-भाँति स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि भारद्वाज की आज्ञा के अनुसार वे यन्त्र में विराजमान हो करके, जब उन्होंने उड़ान उड़नी आरम्भ की तो ऐसा कहा जाता है कि वह यन्त्र इतना शक्तिशाली था कि दो दिवस और दो रात्रि में इस पृथ्वी मण्डल से मंगल मण्डल में उसका वास हो गया। वहाँ प्राणी रहते हैं मानव रहते हैं।

निद्रा

एक समय महाराजा कुम्भकरण ने महर्षि भारद्वाज से पूछा कि यह निद्रा क्या है संसार में? यह जो निद्रा है जिसको हम सुषुप्ति कहते हैं यह सुषुप्ति क्या है? भारद्वाज जी ने कहा 'मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के एक स्थान में आ जाने के नाम ही निद्रा है, उसको हमारे यहाँ सुषुप्ति कहते हैं। मन का जो व्यापार है, मन की जो रचना है, जो संसार में दृष्टा बना हुआ था उसके शान्त होने की अवस्था का

नाम निद्रा है, सुषुप्ति है। प्रकृति का जो जागरूक अवस्था का व्यापार है वह समाप्त हो जाता है। उसको निद्रा कहते हैं, सुषुप्ति कहते हैं। परन्तु आत्मा का जो व्यापार है, आत्मा और परमात्मा के राष्ट्र में निद्रा नहीं होती। जब आत्मा की चेतना को, मन और प्राण की चेतना को एक करके मानव के ब्रह्मरन्ध्र में इनकी धारा चलती है वह सुखद धारा है, प्रभु से मिलान कराने की धारा है। उस धारा का नाम हमारे यहाँ प्रभु से मिलान कहा गया है। प्रभु के विशाल जगत् में, उस राष्ट्र में प्रभु की चेतना है। उसमें आलस्य, प्रमाद और निद्रा नहीं रहती; क्योंकि प्रकृति के स्वभाव को दबा लिया जाता है। जब प्रकृति के स्वभाव को दबा लिया जाता है तो वहाँ निद्रा का तथा प्रमाद का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। जो निद्रा के रहस्य को जानता है, सुषुप्ति के रहस्य को जानता है। उसको ब्राह्मण कहा जाता है। (तेईसवां पुष्प ११-३-७२ ई.)

कुम्भकरण की छः मास की निद्रा

महानन्द ने कई काल में निर्णय कराया कि आधुनिक काल में उनके प्रति एक वार्ता प्रचलित है कि कुम्भकरण छः मास की निद्रा में तल्लीन हो जाते थे और छः मास जागरूक रहते थे। परन्तु मुझे तो दृष्टिपात कराया गया था कि महाराज कुम्भकरण अपने पर्वतों पर, अनुसंधान शाला में छः मास के लिए चले जाते थे। छः मास वह अपनी रात्रि के रूपों में अपने को स्वीकार करते थे कि मैं राष्ट्र में नहीं हूं, संसार में नहीं हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपनी

अनुसन्धानशाला में विराजमान रहूँ। इतना विज्ञान उनके द्वारा था। मेघनाद को भी इन्होंने शिक्षा प्रदान की थी। कुम्भकरण जैसा वैज्ञानिक, जिनका छः मास तक का अभ्यास था, वह संसार की वस्तुओं में लोलुप नहीं रहते थे। ऐसा उनका जीवन रहता था। वह राष्ट्र में आते, रावण की विज्ञानशालाओं में उनके वैज्ञानिकों को शिक्षा देते। इस प्रकार उनका जीवन छः मास के लिए लुप्त रहता था तथा छः मास के लिए उनका जीवन संसार में राष्ट्र के लिए रहता था। राष्ट्रीयकरण-विचार-विनिमय रहता था।

कुम्भकरण को सबसे बड़ा वैज्ञानिक माना गया है। कुम्भकरण एक समय हिमालय की कन्दराओं में चले गए। हिमालय की कन्दराओं में उन्होंने महर्षि भुंजु महाराज से शिक्षा प्राप्त की। भुंजु मुनि, वायु मुनि महाराज के १५ हजारवें प्रपौत्र कहलाते थे। भुंजु ऋषि महाराज के यहाँ पहुँचे और उनके द्वार जाकर उन्होंने कहा 'प्रभु! मैं तो आपकी शरण में आया हूँ।' उन्होंने कहा कि क्या चाहते हो, ब्रह्मपुत्र? उन्होंने कहा प्रभु! मैं विज्ञान चाहता हूँ। मैं अपने मस्तिष्क में विज्ञान की प्रतिभा चाहता हूँ। उन्होंने कहा, 'तुम विज्ञान के अधिकारी हो या नहीं।' उन्होंने कहा कि इस मेरे मस्तिष्क का अध्ययन कीजिए। भुंजु ऋषि ने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया। उन्होंने कहा 'तुम अधिकारी हो।' और उन्होंने शिक्षा प्रदान की। उन्होंने नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण, नाना प्रकार के धातु, अणु, महा अणुओं का निर्देशन कराया, उनका दिग्दर्शन कराया और निर्देश दिया कि तुम अपने विचारों में सुन्दर और प्रतिभा-लिप्त हो जाओ। कुम्भकरण इस

विद्या का अधिकारी था। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

रावण को ऋषियों के उपदेश

महर्षि कुकड़ी ने राजा रावण से प्रश्न किया कि तुम चारों वेदों के ज्ञाता हो, इस त्रिविद्या को जानने वाले हो। हमें यह निर्णय दो कि राजा राष्ट्र का पालन किस प्रकार कर सकता है?

राजा रावण ने कहा..हे महाराज! मैंने तो त्रिविद्या से और वेदों की विद्या से यह अध्ययन किया और यही पाया है कि इसमें स्नान करते..करते मेरी इन्द्रियाँ इतनी पवित्र हो गई हैं कि मैं राष्ट्र का पालन इस प्रकार कर सकता हूँ कि मेरे राष्ट्र की जितनी प्रजा है, मेरे शासन में रह करके बहुत ही ऊँचा कार्य करेगी।

महर्षि ने कहा..अरे भाई! यह जो भौतिक गंगा है तुम्हें विनाश को प्राप्त करने वाली है, तुम विनाश की क्यों सोच रहे हो?

रावण ने कहा..भगवन्! क्या करूँ? यह तो मेरा भोग है। ऐसा ही मेरा स्वभाव बन गया है और वैसा ही बनता चला जाएगा। यदि मैं श्रेष्ठ स्वभाव बनाऊँ, उच्च बनूँ तो भगवन्! राष्ट्र का मैं पालन नहीं कर सकूँगा।

ऋषि ने कहा..हे रावण! यदि तुम यह जानो कि मैं उच्च बनकर राष्ट्र का पालन नहीं कर सकूँगा तो यह तुम्हारी महान् भूल है।

वास्तव में रावण इतना बड़ा वैज्ञानिक होते हुए भी अज्ञानी था। उसमें यही अज्ञानता नहीं थी कि वह भौतिक विज्ञान को ही सब कुछ समझता था परन्तु वह जो आकाश-गंगा बह रही है उसे नहीं जानता था। जो अन्तरिक्ष में रमण करने वाली विद्या है इसको न प्राप्त करके

मानव अपना जीवन समाप्त करता चला जा रहा है।

(तीसरा पुष्प ७-४-६२ ई.)

रावण को करकेतु मुनि ने कहा था कि भौतिक विज्ञान से संसार नहीं देखा जाएगा। सबसे पूर्व ज्ञान करो, ज्ञान के पश्चात् आन्तरिक भावना को जानो। इस आत्मा को मेरुदण्ड में ले जा करके इसका मिलान परमात्मा से करो। जब यह आत्मा परमात्मा की गोद में चला जाएगा तब जानो कि तुम्हारा भौतिक और आत्मिक यज्ञ करना सफल हुआ, उस समय यह आत्मा इस संसार को तथा इसके विज्ञान को भली-भांति जान सकेगा। (सातवां पुष्प ७-११-६३ ई.)

रावण को शान्ति प्राप्त करने की विधि कुकुट मुनि ने यह बतलाई कि जब तक मन और प्राण दोनों का विभाजन रहेगा, शान्ति नहीं मिलेगी। अतः दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। यह अपने ब्रह्मचर्य और व्रतों के द्वारा ही हो पाता है। (अट्ठरहवां पुष्प १३-४-७२ ई.)

वैद्यराज अश्विनी कुमार रावण के यहाँ विराजमान हुए थे। रावण ने अश्विनी कुमारों से कहा कि मेरे राष्ट्र में चिकित्सालय पवित्र होने चाहिएं। तब उन्होंने कहा कि हे रावण! तुम्हारे राष्ट्र में सुन्दरता तभी आएगी जब तुम्हारा राष्ट्र पवित्र होगा और तुम्हारी प्रवृत्ति सुन्दर बन जाएगी। रावण ने कहा, 'हे अश्विनी कुमार! यह तुम क्या उच्चारण कर रहे हो? क्या मेरी प्रवृत्ति शोधन की हुई नहीं है?'' अश्विनी ने कहा, ''हे राजा! तुम्हारी प्रवृत्ति में रजोगुण और तमोगुण छाया हुआ है। इसमें राष्ट्रवाद के कर्त्तव्यवाद की भावना नहीं है। रावण ने संग्राम

में अनेक राष्ट्रों को विजय किया था। (बीसवां पुष्प २४-९-७६ ई.)

लंका परिचय

राजा रावण के काल में समुद्र की तरंगें इतनी उद्वेलित नहीं थी जितनी आज वर्तमान हैं। इस भारत की और लंका की दूरी इतनी नहीं थी समुद्र कुछ समीप को आ गया है। पहली लंका कुछ समुद्र में लुप्त हो गई, उस काल के पश्चात् क्योंकि जहाँ लगभग साढ़े नौ लाख वर्ष हो गए, न जाने समुद्र कितने समय आया, कितने समय चला गया, उसकी तरंगों में कितना लुप्त हो गया, कितना प्रकट हो गया, यह नहीं कहा जा सकता। विचार यह है कि बहुत ही कम दूरी थी। जहाँ नल और नील दो वैज्ञानिकों ने सेतुबन्ध का निर्माण किया। उस समय लंका इतनी दूर नहीं थी, समुद्र इतना लम्बा नहीं था। लंका द्वीप बहुत ही निकट था। समुद्र की दूरी केवल ऐसी थी कि जो सेतुबन्ध का निर्माण हो सकता था। (चौबीसवां पुष्प १८-८-७२ ई.)

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम

अपनी पीढ़ी को हम नहीं जानते किन्तु ९ लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए, राम को जानते हैं। क्योंकि वे महान् और सदाचारी थे और महान् कर्त्तव्यों का संसार में गुणगान गाया जाता है। (छठा पुष्प १९-१०-६५ ई.)

आज भगवान राम को लगभग ८ लाख, ५० हजार, ६ सौ ६२ वर्ष हो गए हैं परन्तु हम आज भी उनका नाम उच्चारण करते आ रहे हैं। (चौथा पुष्प २१-४-६४ ई.)

भगवान राम १२ कलाओं को जानते थे। (दसवां पुष्प ४-५-६८

ई.)

महाराजा राम का वंश परिचय

परम्पराओं से हमारे यहाँ तीन संस्कार (तीन विवाह) कराना अपराध माना गया है। भगवान राम स्वयं अपने में स्वीकार करते थे कि हमारी जो रघुवंश परम्परा है, राजा सगर से लेकर जो वंश चला आ रहा है, इस वंश में आ करके महाराजा अज के पुत्र राजा दशरथ थे, उन्होंने पुत्र के मोह में तीन संस्कार (विवाह) कराए, प्रमाद में परिणत हो गए। राजा रावण का राष्ट्र सर्वत्र पृथ्वी पर होने जा रहा है। (तेईसवां पुष्प १८-११-७३ ई.)

९-दशरथ के पिता, ८-अज, अज के पिता, ७-रघु, रघु के पिता, ६-दलीप, दलीप के पिता, ५-भगीरथ, भगीरथ के कद्दीप, ४-कद्दीप के पिता, ३-महाराजा विरुत, विरुत के पिता, २-सुखमंजस और सुखमंजस के पिता महाराजा, १-सगर थे। दशरथ के पुत्र, १०-राम, राम के पुत्र, ११-लव-कुश, लव कुश के, १२-सुधित, सुधित के, १३-मनधुत, मनधुत के, १४-कुसधन नाम के राजा हुए। यहाँ आकर प्रणाली समाप्त हो गयी। (चौथा पुष्प २२-४-६४ ई.)

महाराजा रघु ने वानप्रस्थ ले करके अपने राष्ट्र का जो अनुभव था उससे अपने पुत्र अज को शिक्षा दी। अज के दशरथ हुए। दशरथ को उन्होंने शिक्षा दी। आगे वह शिक्षा महाराजा वशिष्ठ भी देते चले आए। (चौथा पुष्प १-४-६४ ई.)

माता कौशल्या

माता कौशल्या जब अपने गुरु के द्वारा शिक्षा ग्रहण करती थी।

इनके गुरु का नाम 'तत्त्व मुनि' महाराज था। तत्त्व मुनि महाराज की आयु २८४ वर्ष की थी, वह अखण्ड ब्रह्मचारी थे। एक समय शिक्षा अध्ययन करते-करते जब कौशल्या दर्शनों को अध्ययन कर रही थी तो उसके मन में एक विचार आया कि हे गुरुदेव! मैं इस गृहस्थाश्रम में परिणत नहीं होना चाहती। ऋषि ने कहा, 'पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा।' परन्तु कौशल्या ने अधिक अध्ययन किया तो एक समय रात्रि में अपने गुरुद्वार पहुँची और चरणों को छूकर बोली कि 'प्रभु! मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं अपने गर्भस्थल में एक ऊँचे और महान् बालक को जन्म देना चाहती हूँ।' उस समय पुनः से आज्ञा दी कि पुत्री जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

कौशल्या का यह संकल्प कि वह एक ऐसे महान् बालक को जन्म देगी, जो संसार से आततायियों का नाश करके धर्म की पताका फहराएगा, ऋषि-मुनियों में चर्चा का विषय बन गया और यह वार्ता महाराजा रावण को भी प्रतीत हो गई। अतः रावण ने कौशल देश के राजा से कहा कि अपनी पुत्री हमको अर्पित करो। हम इससे संस्कार तो नहीं कराएँगे पर इस कन्या को बन्दी बनाकर रखेंगे। कौशलेश ने पुत्री कौशल्या को रावण को दे दिया और रावण ने उस कन्या को समुद्र के मध्य में एक टापू पर दुर्ग बनाकर यन्त्रों में ओत-प्रोत कर दिया। राजा दशरथ को भी यह भेद पता चल गया। अतः जब वे रानी कैकेयी के साथ कुबेर को युद्ध में परास्त कर लौट रहे थे तो मार्ग में समुद्र के बीच बने दुर्ग में अपने वाहन से पहुँचे और वहाँ से उस यन्त्र को लाए जिसमें कौशल्या को बन्द किया हुआ था। इस

प्रकार कौशल्या माता की रावण के बन्दीगृह से मुक्ति कराई तथा कुछ समय के पश्चात् कौशल्या का संस्कार राजा दशरथ के साथ हो गया, संस्कार होने के पश्चात् गृह में प्रविष्ट हो गई। रघु परम्परा थी, उसके अनुसार वह राष्ट्र गृह में जा पहुँची। उसका (कौशल्या माता का) यह नियम था कि वे स्वयं कला-कौशल करतीं और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उसको स्वयं ग्रहण करतीं। उसने संकल्प धारण किया था कि मैं राष्ट्र को कोई अन्न ग्रहण करना नहीं चाहती। क्योंकि राष्ट्र में आकर ऊँचे बालक को उसी काल में जन्म दे सकती हूँ जब मेरे मन की प्रवृत्तियाँ पुरुषार्थी होंगी, महान् होंगी, पवित्र होंगी और अन्न की जो प्रतिभा है वह ऊँची होगी, क्योंकि अन्न से मन की प्रतिभा उत्पन्न होती है।

कुछ काल के पश्चात् आदि ऋषियों के द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ किया गया, पुत्रेष्टि-यज्ञ के पश्चात् माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गई। गर्भ की स्थापना हो जाने के पश्चात् माता कौशल्या का यही नियम था कि वे स्वयं कला-कौशल करतीं और उसके द्वारा द्रव्य आता, उसे ग्रहण करके सन्तुष्ट रहतीं। जब राजा दशरथ को यह ज्ञान हुआ कि कौशल्या जी राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती तो वे एक दिन वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ महर्षि वशिष्ठ तथा माता अरुन्धति दोनों विराजमान थे। दोनों के चरणों को छूकर प्रणाम किया।

ऋषि ने कहा, "कहिए राजन्! आज आपका आगमन क्यों हुआ? उन्होंने कहा "महाराज! आपके आश्रम में मेरा आगमन इसलिए हुआ

कि मैं आपको अपने गृह में प्रविष्ट कराना चाहता हूँ। अरुन्धति ने कहा, ''कार्य क्या है?'' उन्होंने कहा ''हे माता! कार्य यह है कि जो कौशल्या मेरे गृह में है, उत्तम पत्नी है वह राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती। मेरी इच्छा है, मेरी पत्नी को ऊँची शिक्षा प्रदान कीजिए।''

महर्षि वशिष्ट, माता अरुन्धति तथा महाराजा दशरथ तीनों भ्रमण करते हुए राजगृह से प्रविष्ट हुए। कौशल्या जी ने तीनों को तीन आसन देकर उनके चरणों को छू करके माता अरुन्धति व वशिष्ट से कहा, ''कहिए भगवन्! आज मेरे आश्रम में आपके आने का क्या कारण है?'' उन्होंने कहा, ''देवी! हमने यह श्रवण किया है कि तुम राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती हो।

कौशल्या..हां भगवन्! मैं राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती।

अरुन्धति..क्यों नहीं करती?

कौशल्या..हे माता! मेरी इच्छा नहीं होती।

अरुन्धति..क्यों नहीं होती? कारण क्या हे?

कौशल्या..कारण यह है कि मैंने गुरुदेव के द्वारा एक संकल्प किया था कि मैं अपने गर्भस्थल से ऐसे पवित्र और महान् बालक को जन्म देना चाहती हूँ जो राष्ट्र का क्या, लोक..परलोक दोनों में उसकी इच्छा की प्रबलता हो, वह चरित्रवान हो, राष्ट्र और पर्वत..शैया उसके लिए एक तुल्य हो।

वशिष्ठ..तो राष्ट्र का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करना चाहती?

कौशल्या..यदि भगवन्! मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण करने लगूंगी तो

मेरे गर्भस्थल से राजकीय बालक का जन्म होगा, महान् बालक का जन्म नहीं हो सकता। क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है वह रजोगुण और तमोगुण से सना होता है। मैं इस अन्न को इसलिए नहीं ग्रहण करना चाहती कि उससे मेरे मन की प्रवृत्तिओं की तरंगें उस प्रकार की न बन सकेंगी, जैसी मैं बनाना चाहती हूँ। जब वशिष्ठ मुनि ने यह श्रवण किया तो वे मनोवैज्ञानिक व बुद्धिमान तो थे ही, उन्होंने विचार-विनिमय किया और राजा दशरथ से कहा 'बोलो दशरथ जी। क्या कहना चाहते हो?'' दशरथ ने कहा ''महाराज! मेरे राष्ट्र में पाप का अन्न नहीं आता।'' कौशल्या जी ने कहा ''हे राजन्! राष्ट्र का निर्माण रजोगुण से होता है, क्योंकि राजा जब बनता है और राष्ट्रीय वस्त्रों को धारण करता है तो उसके राजकीय विचार होते हैं, न्याय के विचार होते हैं। परन्तु जो वास्तविक न्याय है वह तो प्रभु करते हैं। जहाँ तक राजा का न्याय होता है, जो अपराधी राजा के राष्ट्र में आता है, वह जो अपराध है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता है और जब उसका न्याय किया जाता है तो उस राजा की प्रवृत्तियाँ भी रजोगुण एवं तमोगुण से सनी हुई होती हैं। यदि रजोगुण एवं तमोगुण से सनी प्रवृत्तियाँ न हों तो आप किसी भी काल में अपराधी का न्याय नहीं कर पाओगे। जब उन्होंने ऐसा उच्चारण किया तो राजा मौन हो गए। आगे कहा कि हे राजन्! तुम्हारे राष्ट्र का जो द्रव्य है वह भी रजोगुण से सना हुआ होता है; इसीलिए मैं उसे ग्रहण करना नहीं चाहती।'' यह सुनकर तीनों मौन हो गए और राजा से कहा कि तुम्हारी कोई हानि नहीं हैं, जो स्वयं कला-कौशल करके द्रव्य पान

करती है। तीनों ने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

माता कौशल्या का कार्यक्रम पूर्ववत् चलता रहा। उसी कौशल्या जी से भगवान् राम का जन्म हुआ।

राजा दशरथ के काल में रघुकुल प्रणाली में कुछ भिन्नता आ गई थी। रघु के पुत्र का नाम अज था। अज में कुछ त्रुटियाँ आईं। वह ऐश्वर्य में संलग्न हो गए। अज के पुत्र का नाम दशरथ था। वह भी ऐश्वर्य में इतना आ गया कि उनके द्वारा तीन पत्नियाँ थीं। उन्हीं में संलग्न रहते और उन्हें यह विचार न रहता कि कहाँ तक मेरे राष्ट्र की सीमा है। लंका के राजा रावण ने महाराजा रघु के साम्राज्य पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। राजा दशरथ का इसी पृथ्वी पर सूक्ष्म सा राज्य अयोध्या रह गया था, जहाँ रावण का राज्य नहीं था। इसीलिए माता कौशल्या को भगवान् राम को जन्म देने की आवश्यकता हुई। क्योंकि माता कौशल्या यह जानती थीं कि मेरा पति तो ऐश्वर्य में आ गया है और राष्ट्र का उत्थान होना चाहिए। वशिष्ठ मुनि और अरुन्धति भी यही चाहते थे। क्योंकि रावण का राज्य सुन्दर नहीं था। उसमें दुराचार की मात्रा अधिक थी और चरित्र नाम की कोई वस्तु नहीं थी। (दसवां पुष्प ८-११-६८ ई.)

राम विद्यार्थी के रूप में

भगवान राम महर्षि वशिष्ठ मुनि के यहाँ विद्याध्ययन करते थे। वहाँ उन्होंने तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान राम के जीवन के, ब्रह्मचारियों के जीवन के तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों का भाग उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं तथा शिष्टाचार में

परिणित कराया। इसके पश्चात् विद्याध्ययन और तीसरे भाग में उसको क्रियात्मक कराना और अपने जीवन को विज्ञान में परिणित कराना। उन्होंने दस वर्षों तक धनुर्विद्या तथा दस वर्षों तक विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन किया था और उसको क्रियात्मक में लाए।

त्रेताकाल में वशिष्ठ मुनि के आश्रम में विज्ञानशाला थी, जिसमें माता अरुन्धति और महर्षि वशिष्ठ दोनों अध्ययन कराते थे। लोक-लोकान्तरों के ऊपर उनका विशेष अध्ययन रहता था। वे पृथ्वी के ऊपर भी अनुसन्धान करते रहते थे। वह पृथ्वी के कणों को घ्राण के द्वारा, सुगन्ध के द्वारा भगवान् राम को यह निर्णय कराते थे कि अमुक स्थली पर भूमि के रज का यदि स्वादन हो जैसे तीखा होता है, अग्रे होता है, किरकिरा होता है, नाना प्रकार के जो इस पृथ्वी के कणों का रसास्वादन होता है उसको रसना के अग्र भाग पर यह निर्णय कराते थे। इसके ऊपर प्रायः उनका अध्ययन चलता था कि मैं पृथ्वी को जानूँ। पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है, यह अहिल्या कहलाती है। जो पृथ्वी वज्र के तुल्य हो वह अहिल्या कहलाई जाती है। ऐसी भूमि जिसमें अन्नादि उत्पन्न होता हो, वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और वज्र के तुल्य हो वह अहिल्या कहलाई जाती है। भगवान राम का अहिल्या के ऊपर बहुत अनुसन्धान रहा।

भगवान राम जब एक समय अहिल्या पर अध्ययन कर रहे थे तो उसी विज्ञानशाला में महर्षि भारद्वाज का पदार्पण हुआ। महर्षि भारद्वाज ने कहा ''कहिए महर्षि वशिष्ठ जी! क्या कर रहे हो?'' ऋषि ने कहा कि महाराज हम अनुसन्धान कर रहे हैं। हम अहिल्या के

ऊपर अध्ययन कर रहे हैं। विचार यह है कि अहिल्या क्या है? और उसको क्रिया में लाना चाहते हैं। जब ऋषि ने ऐसा कहा तो महर्षि भारद्वाज ने कहा कि हे वशिष्ठ! तुम अहिल्या को इस प्रकार नहीं जान सकोगे। आओ! मेरी जो विज्ञानशाला है उसमें मैं अहिल्या का तुम्हें दिग्दर्शन कराता हूँ। भारद्वाज ने एक ऐसा यन्त्र जाना था जो पृथ्वी परतों में, चाहे वह जलाशयों में, समुद्र की तंरगों में भी क्यां न हो, दस-दस योजन तक यह भास करा देता था कि अमुक स्थान पर अमुक धातु है। उस यन्त्र का उन्होंने दिग्दर्शन कराया। उन्होंने राम से कहा कि तुम मेरी विज्ञानशाला में दृष्टिपात करो। भगवान राम छः मास तक महर्षि वशिष्ठ के आश्रम को त्यागकर भारद्वाज मुनि के यहाँ उस विद्या का अध्ययन करते रहे। उन्होंने अहिल्या को अच्छी प्रकार जाना और उन यन्त्रों को भी अच्छी प्रकार जानने का प्रयास किया। (तेईसवां पुष्प १८-१२-७३ ई.)

जब महर्षि भारद्वाज के आश्रम में भगवान् राम के समीप ब्रह्मचारी सुकेता अहिल्या के गर्भ में प्रवेश करने लगे तो अहिल्या के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थ दृष्टिपात करने लगे। उसमें निचले स्थानों की कौन सी भूमि के ऊपर कौन सा खनिज है और कौन सा खाद्य है? वह वैज्ञानिक बनता हुआ, आन्तरिक और बाह्य जगत् दोनों को जानता हुआ उस विद्या को पान करता है। यह अग्नि ही है जो पृथ्वी के गर्भ में नाना वनस्पतियों को तपा रही है तथा खनिजों को तपा रही है। जल के परमाणुओं को लेकर जब ब्रह्मचारी अनुसन्धान करता है तो उड़ान उड़ता है कि पृथ्वी के गर्भ में क्या है?

किस प्रकार के प्राणी रहते हैं? चन्द्रलोक में क्या है? मंगल में क्या है? सर्वत्र जगत् में प्राणों की गति क्या है? आकाश-गंगा में सूर्यों की गणना करता है, समाधि के द्वारा समाधिस्थ होकर मन और प्राण की तरंगों को अन्तरिक्ष में त्याग देता है; मानों अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ रहा हो। एक आकाश-गंगा में कितने लोक हैं तथा उसमें कितने सूर्य हैं, उसमें कितने बृहस्पति हैं? एक आकाश गंगा को जानने के पश्चात् द्वितीय आती है। इसी प्रकार गणना करता हुआ अन्त में कहता है कि मैं इनकी गणना नहीं कर सकता। (सत्ताईसवां पुष्प ३-३-७६ ई.)

भगवान राम में यह विशेषता थी कि वे मन और प्राण की सन्धि करके पृथ्वी के गर्भ में जाते थे तब उसको भली प्रकार जान लेते थे। अहिल्या का उद्धार करने वाले भगवान कहलाते थे। अहिल्या पृथ्वी को कहते हैं। भगवान राम ने भारद्वाज के यहाँ छः माह तक अहिल्या विद्या को पढ़ा था। सूर्य किरणों को भी अहिल्या कहते हैं। भगवान राम इतने बड़े वैज्ञानिक थे कि पृथ्वी के गर्भ में दस-दस योजन तक के परमाणुओं को जान लेते थे। (बाईसवां पुष्प १३-२-७४ ई.)

भगवान राम गुरु के चरणों में ओत-प्रोत होकर उनके चरणों को छुआ करते थे, गुरु आशीर्वाद देता था 'आयुष्मान् भव।' हे पुत्र! तुम आयुष्मान रहो, तुम्हारी दीर्घायु हो। (पाँचवां पुष्प १८-१०-६४ ई.)

भगवान राम ऐसे पवित्र थे, इन्द्र की याचना करते थे और कहा करते थे कि हे इन्द्र! मुझे वैज्ञानिक बना, संसार में देवताओं की रक्षा करने वाले भाव मेरे द्वारा प्रकट कर, मैं देववत् बनना चाहता हूँ,

अपने राष्ट्र में मैं इन्द्रपुरी तो नहीं बनाना चाहता परन्तु राम-राज्य बनाना चाहता हूँ, परन्तु भगवन्! उसी काल में बना सकता हूँ जब आपके गुणों का ग्राही बन जाऊंगा और मेरा आत्मा बलिष्ठ होता चला जाएगा। (पाचवां पुष्प १९-१०-६४ ई.)

राम सदैव लगभग एक सहस्र गायत्री का जाप करते थे, वह गायत्री का पाठ मस्तिष्क में करते थे, शब्दों में नहीं। उनका अभ्यास इतना ऊर्ध्व था कि वह मस्तिष्क में प्रत्येक स्थल को सहस्रों समय उसकी पुनरुक्ति करते और पुनरुक्ति करते समय मन गायत्री में रमण करता रहता। गायत्री हमारे यहाँ महापुरुषों का गुरुमन्त्र कहलाता था। उनका जीवन ऋषि जीवन था। ब्रह्मचर्य से संलग्न उनके जीवन में किसी प्रकार की त्रुटि न थी। (छब्बीसवां पुष्प ३१-७-७३ ई.)

एक समय कर्मों की व्याख्या करते हुए राम ने वशिष्ठ से प्रश्न किया ''महाराज! आज मार्ग में कीड़ा क्रीड़ा कर रहा था, उसने क्या कर्म किया था?'' वशिष्ठ ने कहा, ''आज सृष्टि को बने अधिक समय हो गया है। जब से यह सृष्टि आरम्भ हुई, यह कीड़ा तीन समय इन्द्र बना है, इन्द्र बन करके आज कर्मों की गति से यह कीड़ा बना हुआ है।'' राम ने कहा, ''महाराज! कौनसा कर्म किया जो इन्द्र से कीड़ा बन गया।'' वशिष्ठ ने कहा, ''इन्द्र उसको कहते है जो १०१ अश्वमेघ यज्ञ कर लेता हे, मृत्यु को जीत कर युद्ध करता है परन्तु इन्द्र बन करके ऋषियों की तपस्या करने वाला अपने स्वार्थ के लिए कि कोई तेरे राज्य को हड़प न कर ले, नाना प्रकार के पाप करके आज अधोगति को प्राप्त हुआ। नाना योनियों में प्राप्त होकर तीन समय इन्द्र

बनकर यह कीड़े की योनि प्राप्त हो गई है। (पाँचवां पुष्प १८-८-६२ ई.)

एक बार वशिष्ठ मुनि ने राम से एक कीड़े को दिखाकर कहा था कि जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते वे इस प्रकार कीड़े की योनि में जन्म लेते हैं। यह तीन जन्मों से कीड़ा बनता चला आ रहा है। (प्रथम पुष्प २-४-६२ ई.)

गुरु वशिष्ठ ने राम से कहा था कि प्रभु की आत्मा को वही आत्मा जान सकता है जो प्रभु की गोद में विराजमान हो जाए। साधारण व्यक्ति के लिए प्रभु की आत्मा को जानना असम्भव है। (सातवां पुष्प ३०-९-६४ ई.)

भगवान राम विद्यार्थी जीवन के पश्चात

भगवान राम ३० वर्ष का अध्ययन करने के पश्चात् राजा दशरथ के द्वार जब आ गए तो दो माह के पश्चात् ही विश्वामित्र जी यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ को दैत्यजन आते और नष्ट कर जाते। विश्वामित्र ने, ब्रह्मवेत्ता ने यह विचारा कि रघुवंश में उत्पन्न होने वाले राम-लक्ष्मण दोनों को ला करके इन दैत्यों का विनाश कराऊँगा। ऐसा नहीं कि विश्वामित्र इनको नष्ट नहीं कर सकते थे परन्तु उनकी एक मनोभावना थी कि मैं किसी क्षत्रिय को ऊँचा बनाना चाहता हूँ। अपनी जो विद्या है, जो मैंने बाल्यकाल से अध्ययन किया है, धनुर्विद्या में मेरी परायणता है, उसे मैं किसी को परिणत कराना चाहता हूँ। महाराज विश्वामित्र के हृदय में यह वेदना थी। वह भ्रमण करते हुए अयोध्या में आ पहुँचे। राजा दशरथ के यहाँ जब पहुँचे तो महाराजा दशरथ ने

आसन त्याग दिया और ऋषि को आसन दिया। विराजमान हो जाने के पश्चात् महाराज दशरथ ने उनके चरण छूकर कहा कि कहिए! मेरे लिए कोई आज्ञा है। उस समय महाराज विष्वामित्र बोले कि हे दशरथ! मैं किस लिए आया हूँ यह तुम्हें प्रतीत होना ही चाहिए। वशिष्ठ मुनि भी विराजमान थे। उन्होंने कहा कि मैं आज इसलिए तुम्हारे द्वार आ पहुँचा हूँ कि मैं एक यज्ञ कर रहा हूँ वन में। उस यज्ञ को पूर्ण करने के लिए मैं तुम्हारे राम और लक्ष्मण दोनों पुत्रों को ले जाकर अपने यज्ञ को पूर्ण कराना चाहता हूँ। जब उन्होंने ऐसा कहा तो राजा दशरथ मोह-ममता में परिणत हो गए और कहा कि हे विष्वामित्र ! हे भगवन्! आपके यज्ञ को पूर्ण कराना मेरा भी तो कर्त्तव्य है। आप इन प्यारे अबोध पुत्रों को न ले जाइए। ये वास्तव में अबोध हैं। इनका बाल्यकाल है। उन्होंने कहा कि हे राजन्! मैं आपको नहीं ले जाना चाहता। वहाँ युवक की आवश्यकता है, वहाँ वृद्धों की आवश्यकता नहीं। राजा दशरथ अनुरोध करने लगे और मोह-ममता में मौन होने लगे। विष्वामित्र बोले कि दशरथ! यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है तो मैं तुम्हारे इस राष्ट्र को त्याग रहा हूँ और अपने यज्ञ को और किसी से पूर्ण करा पाऊँगा। अब राजा बोले, नहीं भगवन् ऐसा नहीं होगा।

पुरातनकाल में यह नियम था कि जब राजस्थली पर राजा विराजमान होते तो राजलक्ष्मियाँ भी एक पंक्ति में विराजमान होती, उनकी भी स्थली होती। अतः कौशल्या भी एक स्थली पर विराजमान थी। जब कौशल्या जी ने यह दृष्टिपात किया कि मेरे पतिदेव को मोह

आ गया है तो उस समय उन्होंने कहा कि ''भगवन्! आप मोह क्यों कर रहे हैं? मैंने जो अपने पुत्र को जन्म दिया है वह आज के दिवस के लिए दिया है। यदि मेरा पुत्र ऋषि के यज्ञ को भी पूर्ण नहीं करा सकता तो मेरा गर्भस्थल व्यर्थ हो जाएगा, मेरे गर्भाशय में जो बालक पनपा है और मैंने जो त्याग-तपस्या से बालक को जन्म दिया है, मेरा जीवन उसी काल में ऊर्ध्व बनेगा जब राम ऋषि के यज्ञ को पूर्ण कराएँगे। जब ऐसा कौशल्या जी ने कहा तो राजा मौन हो गए और राजा से कौशल्या जी ने कहा कि हे भगवन्! आपको प्रतीत है कि मैंने अपने पुत्र को त्याग और तपस्या से जन्म दिया है, मैंने तुम्हारे रजोगुण और तमोगुण अन्न को भी ग्रहण नहीं किया। इससे मेरा पुत्र उपराम रहा है। त्याग और तपस्या से मैंने परिश्रम किया है और उस अन्न आदि को पान करते हुए अपने पुत्र को जन्म दिया है। जब ऐसा कहा तो राजा मौन हो गए और राजा ने कहा कि जब तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो राम और लक्ष्मण दोनों ही जाने चाहिएं। राम और लक्ष्मण दोनों महाराज विश्वामित्र को अर्पित कर दिए और यह कहा कि लीजिए भगवन्!

ऋषि की अन्तरात्मा मग्न हो गयी। राम-लक्ष्मण को ले करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। भयंकर वनों में अस्त्रो-शस्त्रों की परीक्षा करते हुए, उन्हें विद्यार्थी बनाते हुए, उन्हें अग्रणी बनाते चले जा रहे थे। जिस स्थान पर विश्वामित्र यज्ञ करते थे उस स्थली पर जा पहुंचे। विश्वामित्र ने वहाँ तक अस्त्र -शस्त्रों की विद्या उन्हें प्रदान कराई और विद्या ऐसी पारायणता अध्ययन में कराई जो उनका अनुभव था,

क्योंकि महर्षि विश्वामित्र जहाँ क्षत्रिय थे वहाँ ब्रह्मवेत्ता भी थे, जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ धनुर्वेद के भी महापंडित थे। जिन्होंने महर्षि स्वानकेतु महाराज के यहाँ अपने राजपुरोहित से धनुर्विद्या का अध्ययन किया था। भगवान राम को उन्होंने उस विद्या का पान कराया।

जहाँ वह यज्ञ करते थे वहाँ उनकी सुन्दर सी वेदी थी। उस यज्ञ वेदी के साथ में एक विज्ञानशाला थी। वह विज्ञान में रमण करते रहते थे, अध्ययन चलता रहता था। भगवान् राम को उन्होंने सर्वत्र दृष्टिपात कराया और कहा ''हे राम! आज तुम्हें यह पालन करना है। इस स्थली पर तुम्हें लाने का मेरा सौभाग्य है। हे राम! यह जो रावण का आतताई साम्राज्य छा रहा है भू-मण्डल पर, मेरी इच्छा यह है कि तुम अस्त्रो-शस्त्रों की विद्या में इतने परायण हो जाओ, जिससे ऐसे विशाल साम्राज्य को दमन करने वाले बनो। भगवान् राम और लक्ष्मण दोनों ने कहा कि ''महाराज! इसे हम अवश्य दमन करेंगे। हमारा यह कर्त्तव्य है। हम रघुवंश को ऊर्ध्व बनाएँगे। लक्ष्मण ने कहा कि हमारे जो वंशज थे राजा सगर, भगीरथ आदि, उनसे हमारा वंश महान् बना है। जब वरतन्तु ब्रह्मचारी को मुद्रा चाहिए थी तो उन्होंने महाराज कोहमंक नाम के राज्य पर आक्रमण करने का विचार बनाया। स्वप्नमात्र में ऐसा विचार आते ही उन्हांने उसे लाखों मुद्राएँ परिणत कर दी। परिणाम क्या कि हमारा वंश बहुत विशाल रहा है। हम अपने उस वंश को सर्वत्र ऊर्ध्व बनाने का प्रयास करेंगे।'' जब लक्ष्मण ने ऐसा कहा तो ऋषि की आत्मा गद्-गद् हो गयी और कहा धन्य है मेरे प्यारे!

उन्होंने यज्ञ की रक्षा की और धनुर्विद्या को पारायणता में अध्ययन किया। अहिल्या उन्होंने (विष्वामित्र) भी पृथ्वी को माना। उन्होंने कहा कि हे राम! तुम इस अहिल्या का उद्धार करो। अपने राष्ट्र में रहने वाले कृषक विशाल शक्ति-शालियों को यह आज्ञा दो कि तुम इस अहिल्या का कल्याण करो, इसमें अन्न की उत्पत्ति करो। उन्होंने ऐसा ही किया। भगवान् राम को उन यन्त्रों का स्मरण रहता था जिन्हें उन्होंने महर्षि भारद्वाज के द्वारा दृष्टिपात किया तथा निर्मित किया। उन्होंने अन्तरिक्ष से शक्ति का प्रायः अध्ययन किया। उस शक्ति के द्वारा पृथ्वी के गर्भ को, अहिल्या के गर्भ को यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात किया जाता। अहिल्या में जो सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्र होते हैं वही छिद्र यन्त्रों में विशाल छिद्र दृष्टिपात होते हैं और उन्हीं यन्त्रों के द्वारा पृथ्वी के गर्भ को दृष्टिपात किया जाता है। (तेईसवां पुष्प १८-११-७३ ई.)

मुझे त्रेता काल में राम के समय को दृष्टिपात करने का सौभाग्य मिला है। राम इतने वैज्ञानिक थे कि पृथ्वी के विज्ञान को जानते थे। मैं तुमसे एक धार्मिक चर्चा प्रकट करने आया हूँ कि जब हम राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं और उन्होंने मर्यादा चलाई और संस्कृति का उत्थान किया तो क्या क्षत्रिय को किसी ऋषि-पत्नी को ठुकराने का अधिकार था या नहीं। क्षत्रिय उसको कहते हैं जो स्वप्न में भी किसी की पत्नी को अपनी चित्रवली में धारण न कर सके, पदों की ठोकर तो बहुत दूर है। मुझे राम को देखने का सौभाग्य मिला। मैं प्रभु से कहा करता हूँ कि यदि प्रभु संसार का कल्याण करना है तो राम जैसे वीरों से ही हो सकता है। (पाँचवां पुष्प १२-१०-६४

ई.)

आदर्श पत्नी माता सीता

सीता राजा जनक की कन्या थी। एक समय राजा जनक के राष्ट्र में अकाल पड़ गया। नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। याज्ञवल्क्य, माता गार्गी, महिंर्ष लोमश आदि और भी ऋषि उनके आश्रम में आए। राजा जनक ने उनसे कहा कि मेरी प्रजा अन्न के अभाव से दुःखी है, कुछ ऐसा यत्न करो कि अभाव समाप्त हो जाए। उन्होंने गणित के अनुकूल देखा और कहा कि भगवन्! आप दो गऊ के बछड़े लीजिए। स्वर्ण का हल बनवाइए और अपनी वाटिका में जाकर हल चलाइए, ऐसा उनका विश्वास था। राजा जनक ने ऐसा ही किया। कारण होना था, राजा जनक ने ज्यों ही हल चलाया, वृष्टि हुई और उधर राजा जनक के घर कन्या का जन्म हुआ। राजा जनक को जब गृह में कन्या उत्पन्न होने का समाचार मिला तो बड़े प्रसन्न हुए कि मेरा बड़ा सौभाग्य है कि ऐसे आनन्द के समय में मेरी पुत्री का जन्म हुआ। उन्होंने ऋषि-मुनियों से कहा कि महाराज! अब तो आप सब एकत्रित हो। मेरी कन्या का नामकरण संस्कार कीजिए, ऋषि-मुनियों ने इसका नाम सीता नियुक्त किया। व्याकरण की दृष्टि से उन्होंने कहा कि सीता त्र 'ता' नाम वृष्टि का तथा 'सी' नाम हल की फाली का। हल चलाने से वृष्टि हुई और वृष्टि होने से जन्म हुआ है, दोनों के मिलान से जन्म हुआ। इसीलिए कन्या का नाम सीता नियुक्त कर दिया गया। (पाँचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

जनक कन्या सीता राजपुरोहित स्वाति मुनि महाराज के द्वारा जब

अध्ययन करती थी तो वह वेदों का अध्ययन करती थी तथा धनुर्विद्या का अध्ययन किया जाता था। (छब्बीसवां पुष्प ३-१२-७३ ई.)

भगवान राम विवाह संस्कार

भगवान राम का ३५ वर्ष की आयु में राजा जनक के यहाँ संस्कार हुआ था। (तेईसवां पुष्प १८-११-७३ ई.)

राम का वनवास

एक समय महाराजा राम में ऐसी नम्रता ने स्थान बनाया कि वे माता-पिता के आदश्े को पाकर वन को गए। उनमें धर्म की आस्था थी, वे धर्म के मर्म को जानते थे। (दूसरा पुष्प ३-४-६२ ई.)

जिस समय भगवान राम वन को चले जा रहे थे उस समय मन्त्री ने कहा था कि 'हे राम! तुम अयोध्या को चलो, मैं तो तुम्हें मार्ग को दिखाने आया था परन्तु तुम वन को न जाओ।' उस समय भगवान राम ने कहा था कि मैं संसार में मर्यादा बांधने के लिए आया हूँ। मेरे लिए कोई कर्म शेष नहीं रहा है, मैं बहुत ही जन्मों से चलता हुआ आया हूँ परन्तु आज मेरे लिए कोई कर्म शेष नहीं रहा है, केवल मर्यादा बांधने के लिए संसार में आया हूँ और मुझे मर्यादा का प्रदर्शन करना है। आज मुझे यह निर्णय करा देना है कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करने में मुझे संकोच नहीं और न ही मुझे कोई कष्ट है। उस समय उस मर्यादा पुरुषोत्तम ने यह किया कि उसी सुबह को विश्राम को त्याग करके वहाँ से वन चल दिए। (आठवां पुष्प ६-११-६२ ई.)

भगवान राम का जीवन कलाओं में पूर्ण था। वह इतना महान् था

कि उनके लिए राष्ट्र का ऐश्वर्य और पर्वतों की शैय्या दोनों समान थीं। भगवान राम ने जब राष्ट्र को त्याग दिया और पर्वतों की शैय्या को अपना लिया। तो उन्होंने बहुत से अपंग व्यक्तियों को अपनाया। राजा ने जिनको दूर कर दिया था, उनको अपनाया तथा द्रविड़ आदि को अपनाकर उन्हीं में अपना जीवन व्यतीत किया। (दसवां पुष्प ९-११-६८ ई.)

जब भगवान राम को वन मिला था तो निषाद ने कहा था कि महाराज! आप राज्य को त्यागकर वन को क्यों जा रहे हो? उस समय राम ने कहा, हे निषाद! सूक्ष्मसा जीवन है और इस जीवन को पाकर संसार में आए हैं, जीवन को ऊँचा बनाने के लिए। आज हम राष्ट्र में चले जाएँगे तो प्रतीत नहीं कि हमारी राजसी बुद्धि बन जाए, हम नाना प्रकार के पाप करने लगें। इसलिए हम माता-पिता की आज्ञा पाकर वन जा रहे हैं। वन भोगना ही हमारा कर्त्तव्य है। वन में रहेंगे तो कुछ पाएँगे और राष्ट्र में रहेंगे तो अपनी निजी सम्पत्ति भी खोएँगे। निषाद ने कहा, भगवन्! आपका यह शब्दार्थ ऐसा क्यों? उन्होंने कहा, संसार में जिस मानव ने ख्याति पाई है, जो मानव ऊँचा बना है, जो दार्शनिक बना है, आत्मिक बना है, वेद-पाठी बना है वह वन में रहने से बना है। आज मैं वन में रहूँगा तो मेरा जीवन महान् बनेगा, यौगिक बनूँगा, संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊँगा। आज मैं राजा बन जाता तो राष्ट्रबुद्धि हो जाती। न प्रतीत मैं कितने पाप-कर्म करने लगता। कितने भी नियम से कार्य करता परन्तु तब भी पता नहीं कितनी आत्माओं का ऐसा प्रभाव मेरी

आत्मा पर, मेरे अन्तःकरण पर आ पहुँचता कि हे निषाद! अगले जन्मों में पता नहीं कौन सी योनि मुझे प्राप्त करनी पड़ती। इसलिए हे निषाद! मैं इस वन को भोगकर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके, मर्यादा को बांध करके जहाँ से आया हूँ वहीं चला जाऊँगा। (पाँचवा पुष्प ८-८-६२ ई.)

हे निषाद! यह मेरा धैर्य है, यह मेरा कर्त्तव्य है कि मेरे माता-पिता ने जो आज्ञा दी है, मुझको उसका पालन करना चाहिए। आज भी उन माता-पिता के आदर्शों का पालन कर रहा हूँ, यह मेरा धर्म है। इस प्रकार की अवस्था मानव में तभी आ सकती है कि वह राज्य का त्याग कर दे, जब उसमें ज्ञान, नम्रता और धर्म की आस्था होती है। धर्म में आस्था न होने पर मानव कभी भी मानवता को प्राप्त नहीं कर सकता। मानवता के न रहने पर यह जीवन अधूरा ही रहता है। (दूसरा पुष्प ३-४-६२ ई.)

त्यागमूर्ति महात्मा भरत

माता-पिता की आज्ञा प्राप्त हो रही है। आज्ञा से भगवान् राम ने अपने राज्य को त्याग दिया और यह कहा कि इसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है मुझे तो मेरी माता ने वन दिया है केवल तपस्या करने के लिए मुझे तपस्वी जीवन ही व्यतीत करना है। यह भगवान् राम का जीवन है। वे भयंकर वन में जा रहे हैं। जब भरत आते हैं और भरत से जब माता ने यह कहा कि हे पुत्र! राष्ट्रीय स्थली पर विराजमान हो जाओ। तो उन्होंने कहा कि ''माता! यह तो अधिकार मेरे विधाता राम का है, मेरा कोई अधिकार नहीं है।'' उन्हांने कहा

पुत्र! तुम्हारा अधिकार तो नहीं है परन्तु राष्ट्र को कोई न कोई भोगेगा। उन्होंने कहा कि इसे वह भोगेगा जिसका अधिकार है और जो इसके लिए योग्य होगा, माता! मैं इसके योग्य नहीं हूँ। भगवान् राम ही इसके योग्य हैं। भरत राम से मिलने भयंकर वन में पहुँचे। विधाता से प्रार्थना की और उनकी चरण पादुका ला करके राष्ट्र का पालन करने लगे। विधाता हों तो ऐसे हों। यह आदर्श हमारे समीप है। वे एक कन्दरा में रहते हैं, विश्राम करते हैं, ऋषि-मुनि आते हैं और यह कहा करते हैं कि हे भरत! यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मेरे विधाता की, मेरे प्रभु की आज्ञा है कि मेरा जो बड़ा विधाता है वह पर्वतों की शैय्या पर रमण करता है। उनसे निचले स्थान में मेरा आसन रहेगा। यह मेरी शोभा है। अन्यथा मेरी जो शोभा है वह अधिक हो जाएगी। (चौबीसवां पुष्प २७-१०-७३ ई.)

एक समय महर्षि शुषेचा भरत के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पादुका विराजमान है, नियम बनाने वाले मन्त्रीगण हैं और राष्ट्र के नायक बने हुए भरत हैं केवल राम की पादुका की पूजा करने के लिए। उस समय ऋषि ने कहा कि महाराज! तुम पृथ्वी के गर्भ में क्यों रहते हो? भरत ने कहा कि महाराज मैं इसलिए रहता हूँ कि यह जो पृथ्वी का आसन है यह मेरे विधाता राम का है और मैं राम के आसन के निचले भाग में रहना चाहता हूं। मैं राम के समान आसन नहीं बनाना चाहता।

इसलिए मैं कहता हूँ कि राम हो तो भरत जैसा विधाता भी होना

चाहिए। राम हो तो लक्ष्मण भी होना चाहिए।

निस्वार्थ-सेवा मूर्ति भ्राता लक्ष्मण

लक्ष्मण यथार्थ आर्य था। उनके जीवन की कितनी महत्ता मिलती है, माता सीता के चरणों को स्पर्श करने वाला। उसकी दृष्टि उसके किसी और स्थल पर नहीं जाती थी। राम ने एक समय लक्ष्मण से कहा कि तुम परमात्मा को जानने का प्रयत्न करो। लक्ष्मण ने कहा ''मैं अवश्य कर रहा हूँ। परन्तु भगवन्! मेरा जो कर्त्तव्य है, मेरा जो महादेव है वह मेरी सेवा है, वह परोपकार है। जब मैं परोपकार के शिखर पर पहुँच जाऊँगा तो महादेव की कृपा अवश्य हो जाएगी।'' (आठवां पुष्प २८-९-६३ ई.)

दृढ़ आत्म-विश्वासी उर्मिला

जब भगवान् राम, लक्ष्मण और सीता वन को जाने लगे तो लक्ष्मण ने अपनी पत्नी उर्मिला से कहा कि तुम भी वन को चलो। मैं राम की सेवा करूँगा, तुम सीता की सेवा करना। उस समय आत्म-विश्वासी उर्मिला ने कहा कि हे पतिदेव! जब तक आप आओगे मैं निर्मल दूध की भाँति संसार में रहूँगी। यदि मैं आपके साथ चली गई तो सेवा-भाव नष्ट हो जाएगा। सेवा-भाव नहीं रह सकता। क्योंकि जब मैं आपकी पत्नी बनकर चलूँगी तो सेवक नहीं हो सकते। इसलिए प्रभु! आप जाइए। राम और सीता की सेवा करना। मुझे आत्म-विश्वास है, मैं आपको १४ वर्ष पश्चात् ऐसी ही प्राप्त होऊँगी जैसी आप मुझे त्याग कर जा रहे हैं। इसी का नाम आत्म विश्वासी है। लक्ष्मण चले गए। (ग्यारहवां पुष्प १-८-६८ ई.)

संकट में सीता का आत्म-विश्वास

भयंकर वन में राम, लक्ष्मण और सीता पर्वतों की शैय्या पर विराजमान थे। राम और लक्ष्मण गाढ़ निद्रा में तल्लीन थे। पूर्णिमा का चन्द्रमा अपना प्रकाश दे रहा था। उस भयंकर वन में मृगराज आ गया। मृगराज के मन में यह विचार था कि इनको मैं पान करूँ। परन्तु माता सीता जाग रही थी। सीता ने यह विचारा कि यदि राम को जागरूक किया तो यह पाप है। लक्ष्मण को भी जागृत किया तो यह भी पाप है। क्योंकि जब मानव निद्रा में होता है तो उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और मन अन्तःकरण में होते हैं और अन्तःकरण का सन्म्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता है। इसलिए ब्रह्मा के द्वार से मानव को नहीं आना चाहिए। अब उसका आत्म-विश्वास जागृत हुआ। उसने प्रभु से याचना की कि हे भगवन्! यह मृगराज हमें आहार कर जाएगा। उस समय मृगराज से मन ही मन वेदना कर रही थी "हे मृगराज! मैं जानती हूँ कि हम तेरे राष्ट्र में हैं। लेकिन मार्ग का जो अधिराज होता है उसका कर्त्तव्य होता है कि वह सबकी रक्षा करे। वह सबका रक्षक होता है। हम तेरे राष्ट्र में हैं, हमारी रक्षा करो। तू इस मार्ग को त्याग और उस मार्ग को अपना। यह माता सीता के मन की वेदना आत्मा-विश्वास की थी। उसने मृगराज के मन को जा छुआ और उसने अपना मार्ग त्याग दिया। इसका नाम है आत्म-विश्वास। जो मानव इसको धारण कर लेता है उसके जीवन में किसी प्रकार का अन्धकार नहीं आता। (ग्यारहवां पुष्प १-८-६८ ई.)

सीता के मन पर अन्न का प्रभाव

भगवान् राम वन में चले गए तो वहाँ पर सीता और लक्ष्मण तीनों समिधाएँ एकत्रित करते थे और नाना प्रकार की औषधियाँ, सामग्री एकत्रित करके उनसे यज्ञ करते थे। एक समय राम से सीता ने आलस्य और प्रमाद में आकर कहा कि प्रभु! आज यज्ञ नहीं कर पाते। राम ने कहा ''सीते! ये शब्द तुम्हारे मुख से शोभा नहीं दे रहे हैं। क्योंकि यह जो तुम्हारा मुख है यह भी तो यज्ञ-वेदी है। हे देवी! आज हमें यज्ञ करना चाहिए; क्योंकि मानव का एक कर्म है यज्ञ। यज्ञ से ही मानव का मन पवित्र होता है। यज्ञ से इस संसार को विजय कर सकते हैं।'' यह सुनकर सीता लज्जित हो गई। लक्ष्मण ने कहा 'प्रभु! माता सीता ऐसा उच्चारण क्यों कर रही हैं? इसका मूल कारण क्या है? मैं इसको नहीं जान पाया। क्योंकि इनका विचार तो किसी काल में ऐसा नहीं बना।' उस समय उन्होंने यह विचार किया। महाराजा निषाद के राष्ट्र से, उनके राजगृह से उनके लिए भोजन एक समय आया। वह भोजन उन व्यक्तियों का था जिनके गृह में यज्ञ नहीं होता था। इसके परिणामस्वरूप वे विचार माता सीता के मन में समाहित हुए। उस अन्न का प्रभाव मन पर इतना प्रबल हो गया कि अशुद्ध विचारों का उद्गार उत्पन्न हो गया। उस समय लक्ष्मण ने कहा कि हमें ऐसा अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। उस अन्न का निर्णय किया गया। निषाद से कहा 'हे निषाद! तुम्हारे यहाँ अन्न कहाँ से आया था?' उन्होंने कहा ''प्रभु! यह अन्न मेरे यहाँ स्वर्णकार के गृह से आया था?' उस अन्न से यह मन दूषित हो गया होगा। इसमें मेरा दोष नहीं। राष्ट्र-गृह में इसी प्रकार का अन्न आया और वही मैंने

प्रदान कर दिया।'' यह विचार जब माता सीता के मन में आया तो उसने पांच दिवस तक अन्न का पान नहीं किया। केवल जल के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् छटे दिवस मन का शोधन हो गया। इस मन को शोधन करने का नाम सबसे महान् यज्ञ कहलाया गया है। (सालहवां पुष्प १६-१०-७१ ई.)

यज्ञोपवीत के रक्षक राम

भगवान् राम ने इस परमपवित्र की व्याख्या करते हुए अपने विधाता लक्ष्मण से कहा था कि ''लक्ष्मण! यह जो हम अपने कण्ठ में धारण कर रहे हैं, आज तुम्हें यह ज्ञान है कि हमने अपने ऐश्वर्य को क्यों त्यागा है। आज कोई मनुष्य यह कहता है कि माता कैकयी के आदेश का पालन किया है। कोई कुछ कह रहा है। परन्तु हमने राष्ट्र को इसलिए त्यागा है कि हमें इस परम-पवित्र की रक्षा करनी है, ऋणों से उऋण होना है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि मनुष्यों का और यथार्थ आर्यों का कर्त्तव्य है कि अपने ऐश्वर्य को त्याग करके मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। आज हमने राष्ट्र की भूमि को, ऐश्वर्य का त्यागा है, पर्वतों में अपनी शैय्या बनाई है, इसका कारण यज्ञोपवीत की रक्षा करना है। यहाँ रावण जैसे दैत्य बन चुके हैं जो मर्यादा से दूर चले गए हैं, वेदों के पंडित होते हुए भी दैत्य। हमें उन्हें शिक्षा देनी है तथा इस परम-पवित्र की रक्षा करनी है।'' माता सीता ने कहा कि महाराज! यह परम-पवित्र तो है परन्तु इसमें क्या विज्ञान है। इसकी रक्षा करना अनिवार्य क्यों है? राम ने कहा ''देवी! यह हमारे आर्यों का भूषण है। यह वह भूषण है जिसके लिए आत्माएँ,

चन्द्र और सूर्य मण्डलों से यहाँ आ करके इसको धारण करती हैं। इसकी रक्षा के लिए वे यहाँ आती हैं। हम इसकी रक्षा, विज्ञान, त्याग और तपस्या से कर सकते हैं। जब हमारे द्वारा त्याग-तपस्या नहीं, कर्त्तव्य नहीं, तो हम इसकी रक्षा किसी प्रकार भी नहीं कर सकते। जो परम पवित्र की रक्षा करता है वह परम पवित्र बन जाता है।'' (आठवां पुष्प २८-९-६३ ई.)

निषादराज को अहल्या के उद्धार का उपदेश

जब भगवान् राम ने अपनी संस्कृति का चक्र फैलाने के लिए अपने राष्ट्र को त्याग दिया था, उस समय अहल्या का कल्याण करने के लिए भगवान् राम ने निषाद से कहा था कि हे निषाद! अपने राष्ट्र को पवित्र बनाने के लिए यह जो अहल्या पड़ी है इसके मांस में बीज की स्थापना करके अपने राष्ट्र का उत्थान करो। जो भूमि वज्र के तुल्य पड़ी हो और विज्ञान से उसमें अन्न उत्पन्न हो सकता हो उस भूमि को अहल्या कहा जाता है। (चौथा पुष्प १८-४-६४ ई.)

समाज सुधारक राम

भगवान् राम के जीवन में जो उदारता और मानवता थी, जब उसको दृष्टिपात करते हैं तो राष्ट्रवाद स्मरण आने लगता है, समाजवाद स्मरण आने लगता है, समाज में जो प्रीति थी वह स्मरण आने लगती है। पर्वतों में ही रहने वाले राजाओं को जिन्हें यह कहकर ठुकरा दिया था कि तुम तुच्छ हो, शूद्र हो, भगवान राम ने उनको अपनाया। बिना उनको अपनाए राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बनता। जिन्हें दरिद्री कहते हैं और उन्हें त्याग देते हैं। उदार राजा

जब तक उन्हें नहीं अपनाता तब तक कल्याण नहीं होता, राष्ट्र और समाज में महान् सम्पदा नहीं आती। भगवान् राम अयोध्या से कोई किसी प्रकार प्रबलताएँ और सहायताएँ नहीं ले गए थे और इतने बड़े साम्राज्य से संग्राम किया। पर्वतों पर रहने वाले, जिन्हें शूद्र कहा जाता था, उन्हें अपनाया। निषाद जैसों को अपनाया और भी शूद्र व्यक्तियों को अपने कण्ठ से लगाकर, शबरी जैसी को अपनाया।

शबरी महान् दरिद्रता में रहती थी परन्तु प्रभु-चिन्तन करती थी। राम की भी भक्त थी। राम ने उसे माता कहकर उसके चरणों को छुआ। भगवान् राम को माता शबरी से इतनी प्रीति थी कि उसे यह ज्ञान था, आज राम मेरे आश्रम में आएँगे। वह झूठे फलों को लेकर राम के समीप आई और कहा ''लीजिए प्रभु!'' राम प्रेम से उसके चरणों को छू करके आनन्द से भोग लगाने लगे। ऐसे-ऐसे दरिद्रियों को अपना करके राम का जीवन आदर्शवादी माना जाता है। जब हम महत्ता की वेदी पर राम को लाते हैं तो राम हर प्रकार से ऊँचे प्रतीत होने लगते हैं। त्याग और तपस्या में उनकी उदारता बहुत प्रबल थी। (ग्यारहवां पुष्प २-८-६८ ई.)

एक समय शबरी महान् योगी रामचन्द्र जी से वन में मिलने आई, शबरी ने प्रश्न किया कि महाराज! धर्म की क्या महत्ता है, और धर्म क्या पदार्थ है? राम ने कहा 'हे शबरी! तेरा-मेरा एक कर्त्तव्य माना गया है, अर्थात् हमारे हृदय में धर्म की आस्था हो, अन्तःकरण और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म का सबसे बड़ा लक्षण माना गया है। मानव चाहे कितना ही वेदों का परिपक्व पण्डित हो, नम्रता के अभाव

में सब व्यर्थ है। इसलिए नम्रता मानव के धार्मिक बनने का सबसे बड़ा साधन है।' (दूसरा पुष्प ३-४-६२ ई.)

लक्ष्मण और हनुमान को उपदेश देते हुए राम ने कहा था कि भाई! देखो, जब तक धर्म की आस्था के साथ अन्तःकरण को छूने वाला कार्य पूर्ण नम्रता के साथ नहीं करेंगे तब तक हमारे धर्म का कोई महत्त्व नहीं। हम धर्म को केवल वाणी से मानें परन्तु हमारा हृदय अधूरा बना बैठा हो, हमारे हृदय में वह महत्व नहीं आए तो हमारी मानवता व्यर्थ है। ऐसी मानवता का कोई महत्व नहीं। (दूसरा पुष्प ३-४-६२ ई.)

रावण की बहन की नाक

राम कितनी परम-आत्मा, ऋषि-आत्मा, सर्यूमण्डलों की आत्मा, जिन्हांने यहाँ आकर पुनः उत्थान कर दिया और रावण के अभिमान को चूर करके, मर्यादा को बांधकर चले गए। उन पर दोष लगाते हैं कि उन्होंने रावण की बहन सोमतिती की नाक काट ली, यह कार्य तो मामूली क्षत्रिय भी नहीं कर सकता। यह तो हो सकता है कि उन्होंने कटु शब्द कह दिए हों और उसको अपमान मानकर नाक काटना कह दिया हो। (पाँचवां पुष्प १९-८-६२ ई.)

रावण की बहन का नाम सोमतिती था। वह दण्डक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने यह चाहा कि मैं राम को अपना पति चुनूं। राम ने कहा, "मेरा संस्कार तो हो चुका, तुम लक्ष्मण को अपना पति चुन लो।" यह वाक्य उनका समय के अनुकूल था। लक्ष्मण ने उससे कहा कि तुम्हारे माता-पिता, भाई, विधाता हों तो

उनसे कहो कि तुम्हारा संस्कार कर दें, हम तो सूक्ष्म क्षत्रिय बालक हैं, तुम हमारे द्वार क्यों आती हो? हम तुम्हारा संस्कार नहीं कर पाएँगे और क्रोध में आकर यह भी कहा कि तुम्हारे माता-पिता नष्ट हो गए? जब ऐसा कहा तो उसका अपमान हो गया। सोमतिती को अपने विधाता और राष्ट्र का बड़ा गौरव था, अपमान होने के नाते उसने अपनी नाक स्वयं काट ली। उसने षडयंत्र रचा और इसलिए रचा कि मेरा कुटुम्ब, परिवार मेरे इस अपमान को जान जाए और दोनों को नष्ट-भ्रष्ट कर दे। उसने ऊँचा षडयन्त्र उन दोनों को नष्ट करने के लिए रचा। किन्तु आगे ऐसा रचा कि रावण का परिवार ही नष्ट हो गया।

मनु महाराज के अनुकूल एवं वेदों में भी कुछ मन्त्र आते हैं जिनके अनुसार यह जो देवकन्या है, इसको जिस वस्तु की हठ हो जाती है और वह कार्य इसके लिए असम्भव हो जाता है तो वह स्वतः ऐसे कार्य कर लेती है। (पाँचवा पुष्प २०-१०-६४ ई.)

महान् योगी एवं वीर हनुमान

महाराज हनुमान पवन-पुत्र कहलाते थे। वे अंजना के पुत्र थे। महाराजा महीवृतकेतु की कन्या का नाम अंजना था। महाराजा महीन्द्र के राजकुमार पवन थे। हनुमान बाल्यकाल में यह विचारता रहता था तथा माता से पूछता कि यह सूर्य क्या पदार्थ है? माता उसे शिक्षा देती थी कि ''पुत्र! यह जो सूर्य है यह प्रकाशक है, प्रकाश का देने वाला है। नाना प्रकार की किरणें आकर हमको प्रकाश देती रहती हैं।'' माता जब यह विचार देती रहती तो एक समय बाल्यकाल में

इस बालक ने यह कहा कि ''माता! मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को मैं अपने में निगलना चाहता हूँ, अपने में धारण करना चाहता हूँ।'' उन्होंने कहा कि ''पुत्र! वह भी समय आएगा।'' माता के स्थल में होने वाला बालक हनुमान आगे सौर्य विद्या का विशेषज्ञ बना। माता की अनुपम शिक्षा थी। सूर्य-विज्ञान को जानने वाला, सूर्य की जितनी विद्या है, प्रकाश है उसे वह स्वयं अपने में निगलता रहता था।

जब वह ब्रह्मचारी ४५ वर्ष का हुआ तो महाराजा सुग्रीव की कन्या से उसका संस्कार हुआ। महाराजा सुग्रीव और बाली दोनों विधाता थे। उनकी कन्या से संस्कार हुआ तो उसके पश्चात् एक पुत्र को जन्म दे करके उस कन्या का निधन हो गया। निधन हो जाने के पश्चात् माता अंजना ने पुनः कहा कि 'पुत्र! तुम संस्कार कराओ।' उन्होंने कहा, हे मातेश्वरी! अब मैं परमात्मा के विज्ञान में जाना चाहता हूँ। अब मैं इस प्रकृतिवाद को जानना चाहता हूँ, मुझे संस्कार की इच्छा नहीं। क्योंकि पितृ-यज्ञ का मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया है। मेरे पितरों ने जो यज्ञ किया था, मुझे उत्पन्न किया, मैंने एक पुत्र को जन्म दे दिया। मेरी पत्नी समाप्त हो गई। उसका कार्य पूर्ण हो गया। उन्होंने अपने शरीर के प्राणों को अध्ययन करना प्रारम्भ किया।

एक समय वह काक भुशुण्ड जी के द्वार पर पहुँचे और उनसे कहा कि मुझे शिक्षा दीजिए। काक भुशुण्ड जी इस विद्या को जानते थे। वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ना भी जानते थे। पृथ्वी में, समुद्रों के आंगन में भी अपनी गति को जानते थे। वह उदान प्राण तथा नाग

प्राण दोनों का मिलान करते हुए कृकल, देवदत्त और उदान प्राण को मिलान कर वह अपने शरीर को अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने वाले थे। वह क्रिया हनुमान जी ने ऋषि के द्वार पर प्राप्त की। उस विद्या को पान करने वाले हनुमान जी अपने शरीर को ऊर्ध्व में भी बना लेते थे और आकुंचन कर लेते थे। जैसे एक योगी प्रकृतिवाद को, सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने अन्तरात्मा मे दृष्टिपात करता है, अपने मन और प्राण को धारण करके संसार में मन और प्राण की रचना को दृष्टिपात करता है, इसी प्रकार एक योगी, एक साधक अपने शरीर को इतना सूक्ष्म बना लेता है कि अपनी अस्थियों को, मन-प्राण को अर्पित करके, अपने शरीर को आकुंचन बना करके वह सुरसा जैसे मुखारविन्द में परिणत हो जाना, उससे बाहर आ जाना यह सब प्राणों की विशेषता है। (सत्ताईसवां पुष्प ४-५-७६ ई.)

हनुमान महान् योगी, महान् ब्रह्मचारी, महान् तार्किक तथा महाराजा राम के मन्त्री थे। उन्होंने सूर्य के महान् विज्ञान को जाना था, उसके एक-एक कण के महत्व को जाना था। वह विज्ञान उनके कण्ठ था। इसलिए यह कहना यथार्थ है कि हनुमान ने सूर्य को नहीं, उसके महान् गुणों को और विज्ञान को अपने मुखारविन्द में अर्पण कर लिया था। उसने यौगिक क्रियाओं से समुद्र को पार किया था। (सातवां पुष्प २२-८-६२ ई.)

महाराजा हनुमान उदान-प्राण से कूर्म्म और कृकल प्राण का मिलान करना जानते थे, जिस विधि से इस शरीर को स्थूल तथा सूक्ष्म किया जाता है। प्रकृति की पाँच प्रकार की गतियाँ मानी गई

हैं..आकुंचन, प्रसारण, ऊर्ध्वा, ध्रुवा, गमन। इन पाँच प्रकार की गतियों को जानने वाला योगेश्वर अपने को स्थूल रूपों में ला सकता है और सूक्ष्म में आकुंचन द्वारा बना सकता है। हनुमान अपने शरीर को आकुंचत करके सुरसा के मुख में परिणत हो गए थे। (सत्ताईसवां पुष्प २-५-७६ ई.)

राम द्वारा संस्कृति प्रसारणार्थ विजय अभियान

मैं गौरव के साथ कहा करता हूँ कि हे प्रभु! तू भगवान राम जैसी आत्मा को संसार में उत्पन्न कर। मुझे भगवान राम के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। भगवान राम ने राज्य के ऐश्वर्य को त्यागकर पर्वतों की शैय्या बनाई और ऋषि के आदेशों का पालन किया। संसार में अपने सदाचार और शिष्टाचार रूपी संस्कृति के चक्र को फैलाया तथा सब राजाओं को विजय किया। (चौथा पुष्प १७-४-६४ ई.)

भगवान राम ने वशिष्ठ मुनि से सर्वप्रथम यही कहा था कि मैं अपनी संस्कृति को, अपनी मानवता को इस विश्व में प्रसारण करना चाहता हूँ। वशिष्ठ ने कहा था कि हे राम! तुम कर सकते हो, क्योंकि रावण के राज्य का इस आँगन में आधिपत्य हो गया है। तुम इसे कैसे ऊँचा बना सकते हो? राम ने कहा, 'महाराज! मुझे आज्ञा दीजिए। मैं आपकी कृपा से यह कार्य कर सकता हूँ।' तब उस ब्राह्मण गुरु ने अपनी प्रतिभा से युक्त तथा ओज भरी वाणी से उपदेश दिए। राजा दशरथ ने जिन भीलों, द्रविड़ों और अपंगों को त्याग दिया था, भगवान राम ने उन्हीं को अपनाया और उन्हीं की सेना बनाई।

पवनपुत्र हनुमान को अपनाया, बाली के यहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया। सुग्रीव को अपनाकर रावण से संग्राम किया। (दसवां पुष्प ९-११-६८ ई.)

महर्षि बाल्मीकि ने अपनी लेखनीबद्ध करते हुए कहा कि भगवान राम को जब वन प्राप्त हुआ तो माता कैकेयी का दोष नहीं था, यह राजा दशरथ की आज्ञा नहीं थी, यह ऋषि-मुनियों की आज्ञा थी। बाल्यकाल में वशिष्ठ मुनि ने राम से कहा था कि हे राम! यह जो रावण आतताई आ रहा हे, जिसने अराजकता उत्पन्न कर दी है, उसको तुझे विजय करना है और अपनी संस्कृति का प्रचार करना है। भगवान राम ने भील और द्रविड़ जो भंयकर वनों में रहते थे उन्हें अपनाया और अपनाने के पश्चात् एक सुन्दर मार्ग लेकर चले। क्योंकि माता कैकेयी ने यह कहा था कि राष्ट्र की उन्नति होनी चाहिए। माता कैकेयी का दोष नहीं था। वशिष्ठ, विश्वामित्र, देवर्षि नारद ने, सोम और लोमश इत्यादि ऋषियों ने उसे निर्णय कराया था। यह एक प्रकार की ऋषि-मुनियों की, ब्राह्मणों की विचारधारा थी। (दूसरा पुष्प ६-३-६९ ई.)

राम के यहाँ नल-नील जैसे बड़े-बड़े वैज्ञानिक थे परन्तु लक्ष्मण जैसा महान् वैज्ञानिक उस काल में नहीं था। ऋषि-मुनियों की सहायता भी उनको प्राप्त होती रहती थी जैसे भारद्वाज, अन्वेषणी ऋषि, पाकुण ऋषि, पिप्पलाद, ऋकेतु, भीलनी आदि। भीलनी अपने समय की बहुत ऊँची वैज्ञानिक थी। राम की भक्ति के द्वारा बड़ी-बड़ी सुन्दरताएँ और कला-कृतियाँ उनके स्मरण थीं। इस प्रकार भगवान

राम ने इन्हें अपनाकर के और ऋषि-मुनियों से सलाह करके रावण से संग्राम किया और विजय प्राप्त की। (दसवां पुष्प ९-११-६८ ई.)

भगवान राम ने जब अपने राष्ट्र की भूमि को त्यागा और पर्वतों की शैय्या बनाई तो सबसे पूर्व वे निषाद के राष्ट्र में पहुँचे। उनके राष्ट्र में अपनी संस्कृति का प्रसार किया। आगे चले तो पिशाच थे, दुराचारी थे उन्हें धनुर्विद्या से, नाना प्रकार के अविष्कारों से नष्ट करते चले गए। उसके पश्चात् बाली को नष्ट किया जो चारों वेदों का पंडित था। परन्तु संस्कृति को नष्ट कर चुका था। (चौथा पुष्प १७-४-६४ ई.)

अपने छोटे विधाता की पत्नी को अपने गृह में प्रविष्ट कर लिया था। राम ने उन्हें नष्ट किया और अपनी ऊँची संस्कृति का प्रसार किया। (दूसरा पुष्प २-१०-६४ ई.)

सुग्रीव को वहाँ का राजा बनाया। आगे बढ़ते चले गए। रावण जो चारों वेदों का पंडित था और जिनके गुरु तत्व-मुनि महाराज थे। जिन्होंने ४८ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन किया और जो महान् प्रकाण्ड बुद्धिमान थे। परन्तु अपनी संस्कृति को नष्ट कर चुके थे। उसको नष्ट किया। उनके विधाता विभीषण को वहाँ का राज्य दिया। राज्य देकर अपनी संस्कृति का प्रसार किया। रावण के पुत्र नरांतक जो सोमभूम नाम के राष्ट्र में राज्य करते थे उसे नष्ट किया और अद्युत नाम के राजा को वहाँ का राज्य देकर संस्कृति का प्रसार किया। पातालपुरी पहुँचे जहाँ रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था। अहिरावण को नष्ट किया और हनुमान के पुत्र मकरध्वज को वहाँ का राज्य देकर और अपनी संस्कृति का प्रसार करते हुए अयोध्या को लौट आए।

मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि हे परमपिता परमात्मा! आज उस वैज्ञानिक की आवश्यकता है जिन्होंने बड़े-बड़े यन्त्रों का आविष्कार किया और संसार में अपनी संस्कृति को फैलाया। (चौथा पुष्प १७-४-६४ ई.)

भगवान् राम यथार्थ आर्य थे, जिनका आर्यत्व समस्त संसार में प्रत्यक्ष है। जब तक पृथ्वी अन्तरिक्ष है, जब तक परमात्मा की सृष्टि है तब तक संसार भगवान् राम की गाथा गाता चला जाएगा। (दसवाँ पुष्प २६-७-६३ ई.)

सीता की खोज

हनुमान ने माता सीता की खोज में जाने से पूर्व राम से पूछा कि "भगवन्! मैं कौन सी शक्ति से जाऊँ।" राम ने कहा था "तेरे में जो भय है, हृदय में जा साकल्य है उन सबको मेरे में अर्पण कर, अपने अहंकार को भी मेरे में अर्पण कर। मैंने वह शक्ति पाई है कि मैं उन पर विजय प्राप्त कर लूँगा।" (सातवां पुष्प २२-८-६२ ई.)

महाराजा हनुमान लंका में पहुँचे और वह अशोक वाटिका को नष्ट कर रहे थे तो उस समय रावण के पुत्र मेघनाद का जब कुछ वश न चला तो ब्रह्म फाँस में उसको फाँस लिया। उस समय हनुमान ने कहा था कि मैं ब्रह्मफाँस को नष्ट नहीं करना चाहता। क्योंकि मर्यादा नष्ट हो जाएगी। वैसे भौतिक-विज्ञान में ब्रह्मफाँस रूपी शस्त्र भी होता है; परन्तु यहाँ पर जिस ब्रह्मफाँस से हनुमान को फांसा था, वह केवल यज्ञोपवीत ही था। उन्होंने कहा था कि मैं इसको शान्त कर सकता हूँ परन्तु मुझे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आज्ञा नहीं है कि मैं

ब्रह्मफाँस को शान्त करूँ। यह मर्यादा नहीं कहती है, यह मेरा आर्य चिन्ह नहीं कहता। यदि मैंने इसको शान्त कर दिया तो मेरा आर्यत्व शान्त हो जाएगा। आर्य उसको कहते हैं जो शुद्ध और पवित्र होता है, जिसका जीवन वास्तव में सुन्दर होता है, जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है। (दसवां पुष्प २६-७-६३ ई.)

सीता का सतीत्व

माता सीता जैसा वैदिकवाद किसमें हो सकता है। रावण के द्वारा राष्ट्र अपना, प्रजा अपनी, एक सीता को वह अपना नहीं बना सके। क्योंकि उनके द्वारा महान् चरित्र की मात्रा थी। माता सीता का हृदय वैदिक कणों से गुंथा हुआ था। वह ऐसा सुन्दर गुथा हुआ था कि रावण उसे छू भी नहीं सकता था। माता सीता ने यह कहा था कि "हे रावण! मैं सती हूँ, मैं पतिव्रता हूँ, मेरा एक पति है। आज जो तुमने पाप से मेरे शरीर को छू भी लिया तो अनिष्ट होता चला जाएगा।" रावण में इतनी प्रबलता भी नहीं हुई कि वह माता सीता को छू भी सके। कैसी महत्ता उसके हृदय में थी। (ग्यारहवां पुष्प २-८-६८ ई.)

विभीषण, विलक्षण और महान् नीतिज्ञ

महर्षि बाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि जब राजा राम अपने महान् शिष्यगणों को लेकर, सुग्रीव की सेना को लेकर समुद्र तट पर जा पहुँचे, वहाँ उनके दो बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। जिनको नल और नील कहते थे। जो शिल्प-विद्या बहुत ही अच्छी प्रकार जानते थे। उन दोनों ने समुद्र का सेतु बांधना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् ऐसा कारण

बना जिससे रावण को विदित हो गया कि राम संग्राम करने को विराज रहा है। इस पर वह विचार करने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए।

सेतुबन्ध का निर्माण करने के पश्चात् रावण को यह सर्वत्र प्रतीत हो रहा था कि राम चला आ रहा है तेरे से संग्राम के लिए। परन्तु उनके जो विधाता थे विभीषण, उनका राम से मिलाप था। वह राम से स्नेह करने वाले थे और उस दुःखद रावण के आधिपत्य को स्वीकार नहीं कर पाते थे। वह रावण को पहले से, अपनी वार्ता से एक सीमा में स्थित किए हुए था। (चाबीसवां पुष्प १८-८-७२ ई.)

रावण ने अपने विधाता विभीषण को कण्ठ किया और मन्त्री से कहा ''जाओ, आज विभीषण को मेरे समक्ष लाओ। उनसे कुछ वार्ता उच्चारण करूँगा।'' वह मन्त्री जी विभीषण के द्वार जा पहुँचे। उस समय विभीषण ने कहा ''आज कैसा सौभाग्य है जो मेरे विधाता ने, जो परमात्मा के बड़े विरोधी हैं, मुझे कण्ठ किया है। मैं तो परमात्मा का बड़ा प्रिय हूँ।'' उस समय वह अपना सौभाग्य मानते हुए राजा रावण के समक्ष जा पहुँचे। राजा रावण ने कहा ''आइए विधाता! विराजिए।''

विभीषण ने कहा मेरे योग्य कौन सेवा है? विधाता! आप तो परमात्मा के विरोधी हैं। आपने आज परमात्मा के भक्त को अपने समक्ष बुलाया है, यह क्या बात है?

रावण ने कहा..नहीं..नहीं विधाता! मैं तो तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरी एक इच्छा है। आज राम मुझसे संग्राम करने आ रहा है।

पूर्व तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम प्रिय परमात्मा के भक्त हो, नित्यप्रति ओ३म का जाप किया करते हो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं राम से विजय पा सकता हूँ या नहीं?

विभीषण..हे भगवन्! आप सात जन्म धारण करेंगे तब भी राम से विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

रावण..यह कैसे हो सकता है?

विभीषण..विधाता! वह जो राम हैं, बड़े वैज्ञानिक हैं, बड़े बलवान हैं।

रावण..अरे! हम भी तो वैज्ञानिक हैं।

विभीषण..महाराज! आपके विज्ञान में और उनके विज्ञान में भिन्नता है।

रावण..क्या भिन्नता है?

विभीषण..हे विधाता? राम के द्वारा दोनों ही पदार्थ हैं, आत्मिक सत्ता भी और वैज्ञानिक..सत्ता भी। दोनों सत्ताओं से वह तुम्हें विजय कर सकता हे।

रावण..तो हमें क्या करना चाहिए?

विभीषण..यह तो पूर्व ही नियम है कि जिस राजा के राज्य में दुराचार होता है, या जो राजा किसी कन्या या देवी का हरण करता है, उस राजा का राज्य आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जाता हे। हे भगवन्। आपका तो विनाश होने वाला है, यह तो मुझे पूर्व ही विदित हो रहा है। यदि आप मेरी याचना स्वीकार करें तो विधाता! माता सीता को ले जाइये और राम के चरणों को जाकर स्पर्श

कीजिए। वे आपको अवश्य तथास्तु करेंगे।

रावण..यह सुनकर, क्रोध में आकर कहा कि ''अरे विधाता! तुम मेरे विधाता नहीं, शत्रु हो। क्या मैं अपने शत्रु के चरणों को स्पर्श करूँ।''

जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि उसी प्रकार की बन जाती है। रावण ने अपने पदों की ठोकर से अपने विधाता को ठुकराना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय विभीषण ने कहा..''विधाता! मैं तो आपके हित की बात कर रहा हूँ।

रावण..अरे! मैं हित की बात नहीं चाहता। जाओ, तुम भी वहीं चले जाओ, जिनकी आज तुम मुझसे प्रशंसा कर रहे हो।

उस समय जब रावण ने उन्हें अपने राष्ट्र में न रहने दिया तब वह बहते भये समुद्र..तट पर राम के समक्ष जा पहुँचे। राम ने उनका सब परिचय लिया। विभीषण ने अपने जीवन की जो महान् घटनाएँ थीं, उन सबका वर्णन किया और कहा कि 'महाराज! मैं आपकी शरण में आया हूँ।'' तब राम ने अपनी शरण दे दी।

वह वहाँ बड़े आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ समय पश्चात् राम ने विभीषण से कहा ''हे विधाता! मैं एक वार्ता जानना चाहता हूँ। आप रावण के विधाता हैं। मैं रावण से संग्राम करने जा रहा हूँ। क्या मैं उससे विजय पा सकूँगा?

विभीषण..हे विधाता! हे राम! आप मेरी अनुमति लेते हैं तो मेरी यह अनुमति है कि आप सात जन्म भी धारण करेंगे तो भी रावण से

विजय प्राप्त न कर सकेंगे।

राम..यह क्या है? क्यों विजय नहीं कर पाऊँगा? क्या विशेषता है उसमें?

विभीषण..हे राम! वास्तव में तो रावण के पुत्र नरांतक आदि बड़े बलवान हैं। इसके अतिरिक्त रावण स्वयं भी बड़ा ज्ञानी और बलवान तथा वैज्ञानिक है। उसके पुत्रों में भी यह विशेषताएँ हैं। राजा रावण का पुत्र नरांतक बड़ा वैज्ञानिक है। उसने विज्ञान के महान् यन्त्रों की खोज की है। वह तुम्हारा विनाश कर देगा। इन सबको भी त्याग दिया जाए इसके पश्चात् रावण के गुरु शिव महाराज हैं जो कैलाशपति हैं, जिनकी प्रजा बहुत ऊँची और वैज्ञानिक हे। ऐसा राजा जो रावण की सहायता करता हो तो उसको विजय क्यों न मिलेगी। हे राम! रावण के समक्ष चाहे जितने राम आ जाओ तब भी आप रावण से संग्राम में विजय नहीं पा सकोगे।

राम..हे विधाता! मुझे क्या करना चाहिए? मुझे तो विजय पानी हे।

विभीषण..आप अजयमेघ..यज्ञ कीजिए और यदि यज्ञ विधान द्वारा किया गया तो आपकी विजय अवश्य होगी।

राम..मैं अवश्य करूँगा। क्या शिव मुझसे प्रसन्न हो जाएँगे?

विभीषण..विधाता! यदि आप अजय मेघ..यज्ञ करेंगे और शिव को निमंत्रण के अनुकूल नियुक्त करोगे तो वह आप सबके समक्ष आ जाएँगे आप अवश्य विजय पा सकेंगे।

उस समय राम ने विभीषण के आदेशानुसार वहाँ सब सामग्री

जुटाना प्रारम्भ कर दिया। जब सब सामग्री, घृत आदि वहाँ एकत्रित होने लगा, बुद्धिमानों को आमंत्रित किया गया, उस समय विभीषण ने कहा 'हे राम! यदि यह सब सामग्री भी जुट जावे, परन्तु जब तक यज्ञ का ब्रह्मा रावण नहीं बनेगा तब तक आपका यज्ञ सफल नहीं होगा।

राम..विधाता! यह कैसे होगा? मेरा शत्रु मेरे समक्ष कैसे आएगा?

विभीषण..देखो! रावण चारों वेदों का पंडित हैं। यदि तुम निमंत्रण देने जाओगे तो वह अवश्य आकर तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण करेंगे। (दूसरा पुष्प ७-१-६२ ई.)

राम द्वारा अजयमेघ-यज्ञ

महर्षि बाल्मीकि जी ने ऐसा वर्णन किया है कि विभीषण वहाँ से अपने स्थान पर चले गए। वहाँ सब सामग्री जुट जाने के पश्चात् राम और लक्ष्मण ने रावण को निमांत्रण देने की योजना बनाई। दोनों वहाँ से बहते हुए रावण के द्वार जा पहुँचे। रावण ने इससे पूर्व राम को कदापि नहीं देखा था, इसलिए रावण को उनकी कोई पहचान न हो सकी। उस समय रावण अपने न्यायालय में विराजमान न्याय कर रहा था। उस समय के न्याय को पाकर राम ने लक्ष्मण से कहा ''रावण तो बड़ा नीतिज्ञ है। देखो! कैसे सुन्दर न्याय कर रहा है? इनको निमंत्रण दें तो कैसे दें? उस समय वहाँ कुछ समय तक शान्त विराजमान रहे। न्यायलय में जब उसका न्याय समाप्त हो गया तब वे उनके समक्ष पहुँचे।

रावण ने कहा..कहिए भगवन्! किस प्रकार बहते हुए आये हैं?

क्या याचना है?

राम..भगवन्! हम एक अजयमेघ..यज्ञ कर रहे हैं। वेदों के अनुकूल आप हमारे यज्ञ को पूर्ण कीजिए।

रावण..तथास्तु! जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसी ही किया जाएगा।

राम..भगवन् समुद्र-तट पर यज्ञ हो रहा है और आपको निमंत्रित कर चले हैं। हे विधाता! हम कल नहीं आ सकेंगे। तृतीय समय में आप स्वयं वहाँ विराजमान होने का कष्ट करें।

उस समय रावण ने राम की उस याचना को स्वीकार कर लिया। वहाँ से दोनों विधाता बहते हुए समुद्र-तट पर आ पहुँचे। हमने महर्षि बाल्मीकि के मुखारविन्द से ऐसा सुना है और हमारे महर्षि लोमश मुनि महाराज ने ऐसा देखा भी है कि जब राम और लक्ष्मण दोनों अपने स्थान पर पहुँच गए तो वहाँ उन्होंने यज्ञ की सब सामग्री घृत आदि को एकत्रित किया और बड़ी सुन्दर यज्ञशाला बनाई। ऐसी सुन्दर यज्ञशाला बनाई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा विदित होने लगा जैसे ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ पहुँचा हो। अब द्वितीय समय भी समाप्त हो गया। तृतीय समय आ पहुँचा अब रावण की प्रतीक्षा होने लगी।

कुछ समय के पश्चात् रावण भी अपने पुष्पक विमान में विद्यमान हो करके उस महान् भूमि पर आ पहुँचे जहाँ राम ने यज्ञशाला का निर्माण किया था। जब वह वहाँ पहुँचे तो दोनों विधाताओं ने उसका बड़ा स्वागत किया और राम ने उन्हें अजयमेघ-यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया। ब्रह्मा चुने जाने के पश्चात् जब वहाँ यज्ञोपवीत धारण किए

जाने लगे उस समय रावण ने उन सबका परिचय लिया। उसी समय उन्होंने कहा, ''भगवन्! हमें राम कहते हैं, हमें लक्ष्मण कहते हैं।'' जब उन्होंने अपना व्यक्तित्व उच्चारण किया तो रावण बड़े आश्चर्य में रह गया। ''अरे यह क्या हुआ, यह तो बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ।'' उस समय उन्होंने कहा, अरे! चलो, जब उन्होंने तुम्हें ब्रह्मा चुना है तो मेरा कर्त्तव्य है कि विधि-विधान से यज्ञ पूर्ण कराऊँ। उस समय उन्होंने कहा, 'धन्यवाद! तुम्हारी धर्मपत्नी कहाँ है?''

राम ने कहा..विधाता! मेरी धर्मपत्नी तो आपके गृह लंका में हैं।

रावण ने कहा..अरे! मैंने यज्ञ को विधान से नहीं किया तो मैं देवताओं का महापापी बन जाऊँगा, मुझे अजयमेघ-यज्ञ करने के लिए उन्होंने ब्रह्मा बनाया है। मुझे परमात्मा ने बुद्धि दी है। मेरा कर्त्तव्य केवल एक ही है कि मैं सीता को लाऊँ और यज्ञ को विधान से पूर्ण करूँ।

महर्षि बाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि वह वहाँ से अपने पुष्पक विमान में विद्यमान होकर लंका में सीता के द्वार पर जा पहुंँचे और सीता से कहा, ''हे सीते! तेरा स्वामी यज्ञ रचा रहा है, समुद्र-तट पर चलो।

सीता ने कहा..'हे रावण! आप नित्यप्रति मिथ्या ही उच्चारण किया करते हो, किसी समय सत्य भी उच्चारण किया करते हो।'

रावण..नहीं सीते! मुझे तेरे स्वामी ने उस यज्ञ का ब्रह्मा चुना है।

सीता ने जब यह आदेश पाया तो प्रसन्न हो गई और उसके पुष्पक विमान में विद्यमान हो उसी स्थान पर जा पहुँची जहाँ विशाल

अजयमेघ यज्ञ करने का विधान बनाया गया था, वहाँ जाकर बड़े आनन्द से सीता राम के दक्षिण भाग में विराजमान हो गयी और रावण अपने दक्षिण भाग में यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। इसके पश्चात् यज्ञ आरम्भ होने लगा। वहाँ आनन्दपूर्वक ऋत्विज चुने गए, अध्वर्यु आदि भी चुने गए, यज्ञोपवीत धारण किए गए और यज्ञ आरम्भ होने लगा। हमने ऐसा सुना है, महर्षि बाल्मीकि के अनुसार तथा महर्षि लोमश मुनि के निर्णय अनुसार, जिन्होंने यज्ञ को देखा था, कि वह यज्ञ इसी प्रकार चलता रहा।

जिस समय यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली थी उस समय सीता ने राम से कहा, ''हे राम! आप यज्ञ तो रच रहे हैं परन्तु रावण के लिए आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं।''

राम..हे सीते! मेरे पास क्या है, मैं उन्हें क्या दक्षिणा दूँ।

सीता..विधाता! यह तो बड़ा द्रव्यपति राजा है, इसके यहाँ तो स्वर्ण तक के गृह हैं, मणियों के ढेर लगे रहते हैं। तो यह कार्य कैसे पूर्ण होगा?

राम..तो मैं क्या करूँ?

उस समय सीता ने क्या किया? उसके पास एक कौड़ी-जूड़ा था, वह उसने राम को दिया और कहा, ''लीजिए महाराज! आप ब्रह्मा का स्वागत इससे कीजिए।'' सीता का यह कौड़ी-जूड़ा राम ने स्वीकार कर लिया।

यज्ञ चलता रहा पूर्णाहुति होने के पश्चात् वहाँ यथाशक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता दोनों उस कौड़ी-जूड़ा को लेकर रावण के

समक्ष जा पहुँचे। रावण ने कहा ''हे राम! मुझे विदित होता है जैसे यह कौड़ी-जूड़ा सीता का हो।'' उस समय सीता ने कहा, ''विधाता! यह कौड़ी-जूड़ा मेरा क्या है, यह तो शुभ कार्य है। यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय मेरे लिए आभूषण बनवाया था, आज यह आपके इस शुभ कार्य में आ गया, मेरा क्या है?'' उस समय रावण ने कहा, ''हे सीते! मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार है परन्तु मैं किसी के श्रृंगार को भ्रष्ट नहीं करना चाहता।''

जब रावण ने यह वाक्य कहा तो प्रजा सन्न हो गई और कहा ''अरे! रावण तो बड़ा बुद्धिमान है।' यज्ञ पूर्ण होने के पश्चात् रावण ने कहा, ''हे राम! विदित होता है कि तुम्हारी मनोकामनाएँ अवश्य पूरी होंगी।'' आशीर्वाद देकर सीता से कहा, 'हे सीते! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी लंका में चलो।''

सीता ने कहा..हे विधाता! आज से तो तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गए हो। मुझे तो यहाँ भी ऐसा और वहाँ भी ऐसा, भगवन्! मैं आपके द्वारा चलूँगी।''इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा कि सीते! तुम कहाँ जा रही हो? तब वह रावण के साथ पुष्पक विमान में विद्यमान हो गई। रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए सीता से कहा था, ''हे सीते! आज मुझे विदित होता है कि अब मेरे विनाश का समय आ गया है, मेरी लंका नष्ट..भ्रष्ट होने लगी है।''

सीता ने कहा, ''हे विधाता! आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो?''

रावण..''हे सीते! मेरी जो महान् प्रजा है, समाप्त होने वाली है।

जिसने शत्रु को अपना लिया और अपना करके, उसको ब्रह्मा बना करके उसकी आत्मिक ज्योति को खींच लिया। 'हे सीते! उसकी मनोकामना क्यों न पूरी होगी? आज मुझे विदित होता है कि मुझे यज्ञ पूर्ण नहीं करना था, यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया कि मेरी लंका में एक भी मानव नहीं रहेगा।'' यह वाक्य उच्चारण करते हुए रावण बड़ा शोकयुक्त हो गया। (दूसरा पुष्प ७-१-६२ ई.)

अंगद प्राण-विद्या का साधक

हनुमान तो थे ही, यही विद्या बाली के पुत्र अंगद पर पहुँची। राम ने अंगद से कहा कि ''हे अंगद! रावण के द्वार जाओ। कुछ सुलह हो जाए, उनके और हमारे विचारों में एकता आ जाए, संस्कृति का प्रसार हो जाए। जाओ, तुम उनको शिक्षा दो।'' जब अंगद रावण की सभा में पहुँचे तो वहाँ नाना वैज्ञानिक भी विराजमान थे, राजा रावण और उनके सर्वपुत्र विराजमान थे। उस राजसभा में अंगद का आगमन हुआ तो रावण ने कहा, ''आओ! तुम्हारा किस प्रकार से आगमन हुआ?'' अंगद ने कहा, ''प्रभु! मैं इसलिए आया हूँ कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि राम मैं और तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए। तुम्हारे यहाँ संस्कृति के प्रसार में अभाव आ गया है, अब मैं उस अभाव का शान्त करने आया हूँ। क्योंकि चरित्र की स्थापना करना राष्ट्र को कर्त्तव्य होता है। तुम्हारे राष्ट्र में चरित्रहीनता हो गयी है, तुम्हारा राष्ट्र उत्तम प्रतीत नहीं हो रहा है। इसलिए तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए, संस्कृति का प्रसार हो जाए, वैदिकता आ जाए, यौगिकता आ जाए, महत्ता आ जाए तो तुम्हारा

यह जो एक-दूसरे से विवाद है, रक्त बहाने की प्रवृत्ति समाप्त हो सकती है। इसको समाप्त करने के लिए मैं तुम्हारी राजसभा में आया हूँ।''

रावण ने कहा..यह तो तुम्हारा विचार यथार्थ है, परन्तु मेरे यहाँ क्या सूक्ष्मता है।

अंगद..तुम्हारे यहाँ चरित्र की सूक्ष्मता है। राजा के राष्ट्र में जब चरित्र नहीं होता तो संस्कृति का विनाश हो जाता है। इसलिए संस्कृति का विनाश नहीं होना चाहिए। संस्कृति का उत्थान करना है। संस्कृति यही कहती है कि मानस के आचार-व्यवहार को सुन्दर बनाया जाए, महत्ता में लाया जाए। एक-दूसरे की पुत्री की रक्षा होनी चाहिए। यह राजा के राष्ट्र की पद्धति कहाती है।

रावण..क्या मेरे राष्ट्र में विज्ञान नहीं है?

अंगद..हे रावण! तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान है, परन्तु विज्ञान का क्या बनता है? एक मंगल की यात्रा कर रहा है परन्तु मंगल की यात्रा का क्या बनेगा? जब तुम्हारे राष्ट्र में अग्निकाण्ड हो रहे हैं। हे रावण! तुम सूर्यमण्डल की यात्रा कर रहे हो, उस सूर्य की यात्रा होने से क्या बनेगा। जब तुम्हारे राष्ट्र में एक कन्या का जीवन सुरक्षित नहीं है। तुम्हारे राष्ट्र का क्या बनेगा?

रावण..यह तुम क्या उच्चारण कर रहे हो? तुम अपने पिता की परम्परा को शान्त कर गए हो।

अंगद..कदापि नहीं, मैं इसलिए आया हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र का और अयोध्या दोनों का समन्वय हो जाए। इस पर रावण मौन हो गया।

नरान्तक..हे पिता! क्या आप मौन हो गए हो, इसके मूल को हम नहीं जान सके हैं।

रावण..मैं इसलिए मौन हो गया हूँ कि यह क्या उच्चारण कर रहा है?

नरान्तक..भगवन्! इसको विचारा जाए। विचारते..विचारते यह आया कि यह दूत है, यह क्या कहता है?

अंगद..यदि भगवन्! राम से तुम अपने विचारों का समन्वय कर लोगे तो राम माता सीता को लेकर चले जाएँगे।

रावण..यह क्या उच्चारण कर रहा है, मैं धृष्ट नहीं हूँ।

अंगद..यही धृष्टता है संसार में, किसी दूसरे की कन्या को अपने में हरण करके लाना एक महान् धृष्टता है तुम्हारी। तुम्हें इस धृष्टता का ज्ञान नहीं हुआ है कि तुम परस्त्री गामी बन गए हो और जो राजा परस्त्री गामी होता है उस राजा के राष्ट्र में अग्नि के काण्ड हो जाते हैं।

रावण..यह कटु उच्चारण कर रहा है।

अंगद..मैं तुम्हें प्राण की एक क्रिया निश्चित कर रहा हूँ। यदि चरित्र की अरबरता है तो मेरा जो यह पग है इस पग को यदि तुम एक क्षण भर भी अपने स्थल से दूर कर दोगे तो उस समय मैं माता सीता को त्याग करके राम को अयोध्या ले जाऊँगा।

यही उनकी प्राण की क्रिया थी। सर्वप्राण को एक पग में ले गए और उदान प्राण, व्यान और अपान तीनों का मिलान करके नाग की पुट लगा करके चारों प्राणों का मिलान हो करके प्राण भी उसमें पुष्ट

हो गया तो वह शरीर विशाल बन गया, पग विशाल बन गया। उस प्राण के बल को तो राज-सभा में कोई ऐसा बलिष्ठ नहीं था जो उसके पग को एक क्षण भी अपनी स्थली से दूर कर सके। अंगद का पग जब एक क्षण समय भी दूर नहीं हुआ तो रावण उस समय स्वतः चला। परन्तु रावण के आते ही उन्होंने कहा कि यह अधिराज है, अधिराज से पगों को उठवाना सुन्दर नहीं है। उन्होंने अपने पग को अपनी स्थली पर नियुक्त कर लिया और कहा कि ''रावण! तुम्हें मेरे चरणों को स्पर्श करना है। यदि तुम राम के चरणों को स्पर्श करो तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हारे विचारों का समन्वय हो जाएगा।'' रावण मौन होकर अपनी स्थली पर विराजमान हो गया।

नरान्तक ने कहा : ''हे पिता! जिस राजा की सेना में प्राण के ऐसे-ऐसे विशेषज्ञ हों, ऐसी सेना को हम विजय नहीं कर सकेंगे। हम तो प्राणों को केवल विज्ञान में ही लाना जानते हैं परन्तु ये शिराओं में लाना जानते हैं। जो शिराओं में प्राणों को लाना जानता है, हे पितृ! उस सेना को कोई भी विजय नहीं कर सकता संसार में। (सत्ताईसवां पुष्प ४-५-७७ ई.)

कुम्भकरण के उद्गार

कुम्भकरण ने सबसे प्रथम रावण को कहा था कि राम से तुम संग्राम मत करो। राम से संग्राम करने से तुम्हें लाभ नहीं होगा। यह कुम्भकरण की शिक्षा थी, परन्तु क्योंकि रावण राष्ट्र का अधिकारी नहीं था। राजा रावण के राष्ट्र में कितना विज्ञान था, किन्तु वह विज्ञान बना क्या? उसका बना यह कि अन्त में लंका का विनाश हो गया,

परिवार नष्ट हो गया तथा मानवता अमानवता में परिवर्तित हो गई। जब पुत्रियों का श्रृंगार नष्ट किया जाता है उस काल में राजा के राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। रावण ने माता सीता के चरित्र को कुदृष्टिपात करना चाहा। उसका परिणाम यह हुआ कि माता सीता तो अडिग रही, उसका जीवन भ्रष्ट न हो सका। इतना वैज्ञानिक, इतना महान् राजा था, परन्तु माता सीता की वेदना ने रावण के परिवार को नष्ट कर दिया। उस समय कुम्भकरण ने रावण से कहा था कि ''हे विधाता! यह तुमने क्या किया? तुम माता सीता का हरण कर लाए। यह तुम्हारा कार्य नहीं था। यह राजाओं का कर्त्तव्य नहीं होता है। यदि मुझे यह विचार होता राष्ट्र का तो मैं अस्त्रो-शस्त्रों से, रावण! तुम्हें नष्ट कर देता।'' जब यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा ''तुम महान् कायर हो, मेरे विधाता नहीं हो।'' उन्होंने यही वाक्य जाना कि मैं क्या करूँ? मैं विधाता के साथ हूँ। (बाईसवां पुष्प २-८-७० ई.)

कुम्भकरण ने मृत्यु से पूर्व राजा रावण से कहा था कि 'हे विधाता! मेरे पूर्व जन्मों के बड़े अच्छे संस्कार थे जिनके कारण मुझे कुबेर की लंका में जन्म लेना पड़ा। आज पुलस्त्य ऋर्षि का वंशज होते हुए भी अपने जीवन का कोई अनुसन्धान नहीं किया। मैंने केवल आपको शान्त करने के लिए आपके राष्ट्रों के जीवों का भक्षण किया और कुछ नहीं किया। यह मेरे सारे जीवन का पाप अब मेरे समक्ष आ रहा है। महाराज! मैंने नाना जीवों का भक्षण किया है। आज मुझको उनका प्रत्यक्ष हो रहा है। इस शरीर को त्यागकर अगले जन्मों में जा रहा हूँ। आज जिस गति से मेरी मृत्यु हो रही है उससे

तो मुझे यह योनि प्राप्त होगी, जहाँ मुझे प्रकाश का अंकुर भी प्राप्त न होगा। इस जन्म से पूर्व के जन्मों में तो मैं मनुष्य बनता रहा, परन्तु अब तो वह योनि प्राप्त होगी जहाँ सूर्य का प्रकाश भी न मिलेगा (तीसरा पुष्प १७-७-६३ ई.)

रावण मृत्यु शैय्या पर

राजा रावण ने एक समय अपनी विद्या का अहंकार करते हुए कहा था कि ''मैं प्रकाण्ड पंडित हूँ। मैं इस महान् सृष्टि को अपने वश में करके एक यन्त्र के समान इसका नियन्त्रण कर सकता हूँ।'' (तीसरा पुष्प प्रथम कथा)

रावण जब मृत्यु शैय्या पर आ गया तब राम ने उससे राजनीतिक वार्त्ताओं को पाया था। रावण ने कहा कि भाई। मैंने कल ही कल में कुछ कार्य करने थे वे कल ही में समाप्त हो गए। (प्रथम पुष्प २-४-६२ ई.)

जब राजा रावण समाप्त होने लगा और उसके अन्तिम श्वॉस चल रहे थे तो उसने राजा राम से कहा था कि हे राम। अब तो मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ परन्तु मेरे दो-चार ऐसे कार्य थे जिनको मैं करने वाला था। १-एक तो यह था कि अग्नि में जो धुंआ उठता है वह न उठे, २-दूसरा यह था कि चन्द्रमा में जाने का मार्ग बना दूँ। ३-तीसरा यह था कि काल को वश में कर लूँ। परन्तु यह भी मेरे वश में न हो सका। ४-चौथा यह था कि पृथ्वी के नीचे अतल वितल और लोक हैं उनको जानूँ। जल में जो यह नाना दोष हैं इनकों यन्त्रों के द्वारा समाप्त करना चाहता था परन्तु न कर सका। अब तो मेरा अन्तिम समय आ

गया। भगवन् मैंने चन्द्रलोक को अच्छी प्रकार पाया है। मेरे राष्ट्र में यातायात बड़ा अच्छा है; विमान आदि भी अधिक हैं। मेरे राष्ट्र में वैज्ञानिक यन्त्र भी आपने देखे होंगे। उस समय राम ने कहा''भाई! अब तो आपका अन्तिम समय होने वाला है। यह कोई भी कार्य आपका पूर्ण न हो सकेगा।'' (तीसरा पुष्प ८-३-६२ ई.)

त्रेता के काल में, राम के तीखे बाणों से रावण जब मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हो गए, युद्ध क्षेत्र में उस समय भगवान् राम और लक्ष्मण दोनों विद्यमान थे। तब लक्ष्मण कहता है प्रभु! हम विजयी हो गए हैं। परन्तु राम कहते हैं, हे लक्ष्मण! हम विजयी नहीं हुए। क्योंकि रावण इतना नीतिज्ञ था, इतनी नीति को जानने वाला था, इतना वैज्ञानिक था, वेदों का अध्ययन करने वाला था और ऐसा प्रतीत होता है मुझे जैसे आज इस विश्व के व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है। राम ने जब ऐसा कहा तो उस समय लक्ष्मण कहते हैं कि आप ऐसे दुःखित क्यों कह रहे हैं? उन्होंने कहा कि जाओ। लक्ष्मण ने कहा, बहुत प्रिय। लक्ष्मण अपने अस्त्र ें-शस्त्रों से युक्त होता हुआ उस भूमि में जाता है, उस युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करता है। उनके मस्तिष्क के अग्र भाग में न आ करके पिछले भाग में विराजमान हो करके यह कहता है ''हे रावण! हे लंकापति! मैं कुछ राजनीति की वार्ता जानना चाहता हूँ। परन्तु रावण ने कोई वार्त्ता प्रकट नहीं की और मौन रहे। लक्ष्मण राम के समीप पहुँचे और राम से कहा प्रभु वे कोई वार्त्ता प्रकट नहीं कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मूर्छा में परिणत हो गए हैं, मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं।

राम ने लक्ष्मण से पूछा कि उस समय तुम्हारा स्थान किस आँगन में रहा। उन्होंने कहा कि उनके ऊर्ध्व आँगन में। उन्होंने कहा तुम नीतिज्ञ नहीं हो, वह महान् है, तुम उनके चरणों में विद्यमान हो जाओ। लक्ष्मण और राम दोनों का गमन होता है। दोनों जा करके उनके चरणों की वन्दना करके बोले, रावण! हम कुछ राजनीति की वार्त्ता को जानना चाहते हैं। हे राम! तुम राजनीति की वार्ता को जानना चाहते हो। हाँ, आप दो शब्द उच्चारण कर जाइए जिससे राज्यसभा में हम उन वाक्यों को निर्धारित कर सकें और उसका प्रसार कर सकें। उन्होंने कहा कि राम! मैं तुम्हें क्या उच्चारण कर सकता हूँ। अब तो मैं मृत्यु शैय्या पर विराजमान हूँ। तुम्हें यह प्रतीत है कि राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना ही चाहिए परन्तु विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। मैंने बहुत परम्परा में, आदि ब्रह्मा से जो मेरे गुरुदेव थे उनके चरणों में विराजमान हो करके यह कहा था कि अपने राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होने दूँगा। क्योंकि विज्ञान के दुरुपयोग होने पर राष्ट्र का विनाश हो जाता है। राष्ट्र अग्नि के मुख में प्रवेश कर जाता है। मैं वह नहीं कर पाया। मैं उसे अपने में धारण नही कर सका हूँ इसलिए हे राम! सबसे प्रथम तो यह वाक्य है कि यदि तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहोगे तो तुम्हारे यहाँ विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरुपयोग होने पर समाज अकर्मण्य बन जाता है, वह महान् कार्य नहीं कर पाता। इसलिए उस राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति होती है और वह राजा नष्ट हो जाता है। इसलिए आज मैं मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हूँ अन्यथा

मेरे राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग होता, चरित्र की तरंगें होती तो आज मेरी यह दशा न होती।

उसके पश्चात् राजा रावण ने कहा, हे राम! यदि तुम राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो तो राजा को आलस्य और प्रमाद नहीं होना चाहिए। राजा जब आलस्य और प्रमाद में आएगा, दूसरों की कन्याओं और पुत्रियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ करेगा तो जानो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। ये राजनीति की वार्त्ताएँ हैं। एक नीतिकार यह कहता है, रावण यह कहता है, हे राम! देखो आज मैं पराजित हूँ परन्तु मैंने अपने जीवन में, जब तक मेरा एक-एक श्वॉस गति करता रहा है उस समय तक मैंने तुम्हें लंका में प्रवेश नहीं होने दिया। क्योंकि मेरा भुजावल बलवान था। मैं यह चाहता था, अपनी विद्या के कारण स्वर्ण में सुगन्धि लाना चाहता था। यह जो स्वर्ण है इसमें सुगन्धि आ जाए तो यह महान् धातु बन जाएगा। मैं उसमें सुगन्धि न ला सका हूँ। क्योंकि सुगन्धि लाना वैज्ञानिकों का यह कर्त्तव्य था। नाना धातुओं को जानने का वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य था। परन्तु कोई बात नहीं, मेरी एक इच्छा यह थी कि स्वर्ग में मैं अपना एक स्थान चाहता हूँ। स्वर्ग में मेरा स्थान नहीं बन सका। मैं वेदाध्ययन करता रहा हूँ। स्वर्ग को जानता रहा, स्वर्ग की आभा में रमण करता रहा, परन्तु स्वर्ग को मैं नहीं ला सका।

स्वर्ग क्यों नहीं ला सका? क्योंकि मैं कहता रहा कि मैं स्वर्गकाल ला सकूँगा। इसलिए हे राम! जिस कार्य को तुम्हें करना है उसे स्वतः ही तत्काल कर लो अथवा उसे कल पर त्यागना एक मूर्खता

है। यह अकर्मण्यता है और पामरों का कर्त्तव्य है। इसलिए आज जो भी कर्म तुम्हें करना है उसे अभी करना चाहिए। यह आचार्यों का कथन है कि मानव को दुरिता (पापों में) में नहीं जाना चाहिए।

राम के चरणों को छुकर यह कहा कि प्रभु! धन्य है। आज मुझे दुःख हो रहा है। रावण कहता है, हे राम! तुम्हारे राष्ट्र में, तुम्हारे पाण्डित्य में सूक्ष्मता नहीं आनी चाहिए, व्याकरण का बोध होना चाहिए। व्याकरण का ज्ञान होना चाहिए जिससे तुम्हारे राष्ट्र में पाण्डित्य सदैव पनपता रहे, पाण्डित्य ऊँचा बनता रहे। उस पाण्डित्य से ही राष्ट्र और समाज की रक्षा होती है और याग जैसे ऊँचे-ऊँचे कर्मों की रक्षा होती है। मानव यदि सुगन्धि ला सकता है और दुर्गन्धि को नष्ट कर सकता है। इसलिए व्याकरण की संसार की आवश्यकता है। शब्दों का शोधन करना शब्दों में आना। वे ही शब्द थे रावण के, जो राम के हृदय में अंकित हो गए थे।

हे राम! तुमने यह लंका विजय कर ली है परन्तु यह लंका विजय नहीं। यह लंका है, आज तुम्हारे-मेरे सब आक्रमणों का, पराक्रमों का जो भेदन है वह विभीषण ने प्रदान किया। इसमें कोई द्वितीयता (संशय) नहीं है। आज मैं बड़ा प्रसन्न हूँ, क्योंकि मैंने अपने जीवन में दो पाप किए थे, जिसको मैं शरीर में धारण करता रहा हूँ। एक तो राम! वह राजा पामर होता है जो दूसरों की पत्नियों को हनन करके राष्ट्र में प्रवेश कराता है या कोई भी मानव द्वितीय पत्नी को अपने गृह में प्रवेश कराता है और उससे विलासिता की कल्पना करता है। जब मैं ब्रह्मा के आश्रम में अध्ययन करता था तो सबसे

प्रथम मैंने अपने आचार्य, गुरु की पुत्री पर आक्रमण किया था। वह मुझे श्राप दे गई थी, जब मैने आक्रमण किया और अपनी धृष्टता से जब उसकी मृत्यु होने लगी तो उसने यह कहा था कि हे वरुण ब्रह्मचारी! तू भी ऐसे विनाश को प्राप्त होगा, तेरा वंश समाप्त हो जाएगा। तो आज मैं दो पापों का अनुभव कर रहा हूँ। एक पाप मैंने गुरु कन्या पर और एक पाप वनचर में जो माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला, भयंकर वन में गति कर रहा हो, देखो उससे तो मैं उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो जाता तो मेरा दुर्भाग्य न जागरूक हो जाता। मृत्यु समय इन दोनों शब्दों की विवेचना करता हुआ, व्याकुल होता हुआ प्राणायाम करके रावण ने अपने शरीर को त्याग दिया। राम और लक्ष्मण अपने कक्ष में आ गए।

राम ने कहा, बोलो लक्ष्मण कैसा रहा? उन्होंने कहा, प्रभु! ये तो महापुरुष थे परन्तु अपने पापों के कर्मों से स्वतः मानव अपराधों को प्राप्त हो जाता है। (बत्तीसवां पुष्प ९-३-७७ ई.)

राम-रावण तुलना

रावण बलवान और वैज्ञानिक था, उस जैसा वैज्ञानिक अभी तक नहीं हुआ। राम वैज्ञानिक थे, यौगिक थे तथा उनमें आत्मिक बल था। रावण में आत्मिक बल नहीं था, इसीलिए राम को रावण से अधिक महत्ता दी जाती है। (सातवां पुष्प २२-८-६२ ई.)

राम, रावण से इसलिए बड़े वैज्ञानिक माने गए क्योंकि रावण ने अपने जीवन में यह नहीं विचारा कि परमात्मा ने यह शरीर मुझे क्यों दिया है? वह तो केवल यही विचारता रहता कि दूसरों के, ब्राह्मणों

के द्रव्य को अपने में आकर्षित करके अपनी आनन्दित वार्त्ताओं के भोग को भोगना। राम यह जानता था कि परमात्मा ने यह शरीर मुझको दिया है दूसरों की आज्ञा पालन करने के लिए तथा दूसरों की सेवा करने के लिए। उससे अपनी आध्यात्मिकता तथा यौगिकता से भी जाना कि परमात्मा ने मुझे यह शरीर माता-पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए दिया है। महाराजा राम ने कितना सुन्दर आज्ञा पालन किया कि वह कितने ऊँचे योगी, कितनी ऊँची महान् आत्मा वाले जिन्होंने संसार को पुनः मर्यादा में विकसित कर दिया। आज हम उन महान् आत्माओं के आभारी बन रहे हैं। कहाँ एक स्थान में राम का राज्य तिलक हो रहा था, कहाँ द्वितीय स्थान में माता अपनी वाणी से उच्चारण कर रही थी कि राम को वन जाना चाहिए। उस मर्यादा पुरुषोत्तम ने जान लिया कि मैं संसार में आया हूँ केवल माता-पिता की आज्ञा पालन करने के लिए और उनके कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिए। उसी समय राम वन के लिए नियुक्त हो गए और कहा, 'हे माता! मुझे आज्ञा दो, मैं अवश्य वन जा रहा हूँ।' माता ने आज्ञा दी, 'हे पुत्र! तुम अवश्य वन चले जाओ।' माता की आज्ञा पा करके राम ने पिता का वियोग नहीं जाना, केवल कर्त्तव्य जानकर वन चले गए। (पाँचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.)

लंका-विजय के पश्चात

महाराजा राम बहुत बड़े राजनीतिज्ञ तथा धर्मनीतिज्ञ थे। (दूसरा पुष्प ३-४-६२ ई.)

रावण को विजय करके राम जब लंका से चलने लगे तो उस

समय लंका का स्वामी विभीषण को नियुक्त किया। विभीषण ने चलते समय राम को कुछ उपहार देना चाहा। उस समय राम ने लक्ष्मण से कहा कि ''हे विधाता! यह मुझे कुछ उपहार देना चाहते हैं। तुम्हारी क्या इच्छा है?'' लक्ष्मण ने कहा, ''हे राम! आप चाहें तो ग्रहण कर लीजिए परन्तु न मर्यादा कहती है और न राज-धर्म यह कहता है कि जिसको आपने दान में दिया हो उस दान में से आप कुछ लेवें। यह आपके योग्य कदापि नहीं। राम ने लक्ष्मण के कथनानुसार उस उपहार को विभीषण को अर्पण कर दिया और कहा कि ''यह न मर्यादा कहती है और न धर्म ही कहता है। मैंने लंका विजय करके तुम्हें इसका राजा बनाया है, अपने राज्य का पालन करो, यह ही तुम्हारा सबसे विशेष कर्त्तव्य है।'' राजा राम ने मर्यादा में बंधकर ही ऐसा किया।(तीसरा पुष्प ८-३-६२ ई.)

दीपावली को दो दिवस रह गए थे, जिस दिवस वह राज्याभिषेक होना था, उस समय भरत ने यह कहा था कि प्रभु, कृष्णपक्ष है और शुक्लपक्ष में दीपावली आने वाली है, आपका राज्याभिषेक होगा। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। एक सभा एकत्रित की जिसमें नाना ऋषिवर और सर्व-भूमण्डल के राजा आज्ञा के अनुसार, एक सूचना के अनुसार आना प्रारम्भ हो गए। अपने-अपने वैज्ञानिक अप्रेत यन्त्रों के द्वारा अयोध्या में आ पहुँचे। पातालपुरी के मकरध्वज आ पहुँचे और लंका से विभीषण और भी उनके साथी थे और नाना राजा जहाँ भी घोष की आभा रमण करती थी वहाँ से राजा, ऋषि-मुनि अयोध्या में आने लगे। अयोध्या में एक भव्य सभा हुई और वह दीपावली का

दिवस आया। सब राजा-महाराजा एकत्रित हो रहे हैं, एकत्रित हो करके वहाँ दार्शनिकों का एक समूह भिन्न है, दार्शनिकों ने कहा कि याग होना चाहिए उस समय राम ने एक सूक्ष्मसा याग किया, याग करने के पश्चात् गायत्री छन्दों पर पठन-पाठन करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि अब अपना-अपना विचार प्रकट होना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र का जो याग है वह मुझे प्रदान किया जा रहा है, वास्तव में मैं इस योग्य नहीं हूँ जो मैं अपनी राष्ट्रीयता को अपनाने का प्रयास करूँ। मेरे में इतनी सत्ता कहाँ है? यह तो राष्ट्र प्रजा के आनन्द, प्रजा के वैभव की सुरक्षा के लिए होता है।

राम ने जब यह वाक्य कहा तो सब ऋषि-मुनि आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा कि हे राम! तुम्हें राष्ट्र का अधिकार क्यों नहीं है। उन्होंने कहा कि वास्तव में राष्ट्र के अधिकारी तो प्रभु ही होते हैं। क्योंकि वह इतने त्याग और तपस्या में रहते हैं। वे ही सर्वत्र ब्रह्माण्ड के नियन्ता हैं अथवा निर्माण करते हैं, उसका संचालन कर रहे हैं। परन्तु उसके पश्चात् भी उसमें लिप्त नहीं होते वास्तव में सर्वत्र राष्ट्रों का स्वामी तो परमपिता परमात्मा होता है। मुझे भी यह प्रजा का दायित्व दिया जा रहा है। प्रजा को एक कर्त्तव्य में लाने के लिए मुझे कार्य भार दिया जा रहा है। मैं इसको स्वीकार तो कर लूँगा। परन्तु मैं इसके योग्य नहीं हूँ। इतना उच्चारण करके वह मौन हो गए।

मुनिवरो देखो! मौन हो जाने के पश्चात् सभा में वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणधति विद्यमान थीं। महर्षि अत्रि और माता अनुसूइया विराजमान थीं। नाना राजा-महाराजा एकत्रित थे। महर्षि

वशिष्ठ मुनि महाराज की अध्यक्षता में वह राज-सभा एकत्रित हुई। सब ही राजा महाराजा एक ही आभा में थे, एक ही पंक्ति में थे। वशिष्ठ मुनि महाराज ने सबसे प्रथम यह कहा कि यदि किसी को विचार व्यक्त करना है तो कर सकता है। यह यज्ञशाला भी है और राष्ट्रीय वेदी भी है। परन्तु अपने-अपने विचार व्यक्त कर सकता है उस समय लंकापति विभीषण उपस्थित हुआ और कहा कि प्रभु मैं कुछ वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय, तुम्हारा जो वाक्य है वह सर्वोपरि है।

विभीषण जी कहते हैं कि आज हम इस अयोध्या में आ पधारे हैं। प्रथम समय लंका से आज हमारा गमन हुआ है। लंका में ही जन्म भी लिया, हमने अपनी लंका में भी प्रवेश किया। परन्तु मैं राम का प्रियव्रती रहा हूँ। मेरी इच्छा यह है कि अयोध्या का राष्ट्र अपनाकर के राम संसार के लिए गौरव बनेंगे। क्योंकि संसार उनके आदेश के अनुसार अपनी राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करेंगे। कोई भी राजा हो, वह किसी भी काल में राम के वचनों की अवहेलना नहीं करेंगे। मेरा तो यह संकल्प बन गया है कि मैं अपने जीवन में राम के वाक्यों की अवहेलना नहीं करूँगा। क्योंकि मैं एक राष्ट्रीयता को चाहता हूँ। मेरे विधाता के सम्मुख रावण को महर्षि कुकुट मुनि महाराज ने, भृगु जी ने और महात्मा पुलस्त्य ने, तीनों ने एक स्वर में एक वाक्य कहा था कि रावण! तुम लंका को अपनाने जा रहे हो, यह लंका बड़ी विदुषी रही है। क्योंकि इसका जो राष्ट्र है वह महान् रहा है इसमें जो भी राज्य आया उसने अपने चरित्र की सुगन्धि दे

करके और प्रजा को एक नवीन दर्शन दिया है। इसी प्रकार हमारी भी इच्छा है कि आप लंका को अपना रहे हो, कुबेर से उसको विजय कर लिया है। इच्छा यह है कि तुम अपनी लंका को चरित्र और मानवता से दूसरी सुरक्षा करना। विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होने देना है और एक चरित्र की शाला का निर्माण होना है। क्योंकि राजा के राष्ट्र में चार प्रकार की नियमावली होती हैं। एक नियमावली वह होती है जो राष्ट्रीयता को हितकर है। एक विवेकी पुरुषों की सभा होती है ब्राह्मण समाज की एक सभा होती है, उस सभा में विवेकी पुरुष होते हैं, बुद्धिमान रहते हैं संस्कृति का प्रसारण करने के लिए, समाज को शिक्षित बनाने के लिए, एक नियमावली तो यह होती है। द्वितीय नियमावली राजा के राष्ट्र में राष्ट्रीय कोष होता है वह बाह्य और आन्तरिक राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए, मानो कर्त्तव्य में लाने के लिए होता है और चतुर्थ जो हमारे यहाँ राष्ट्रीय कोष होता है वह ऐसा होता है मानो वह एकत्रित किया जाता है नित्य प्रति राष्ट्र में, शिक्षालय में कार्य में लाया जाता है। राष्ट्र के ये चार नियम होते हैं। विभीषण कहते हैं कि मेरे महापिता ने क्या, नाना आचार्यों ने रावण को यही शिक्षा दी। महात्मा भृगु ने क्या, पुलस्त्य ने क्या और भी नाना ऋषियों ने इस प्रकार की शिक्षा दी। परन्तु देखो उन वाक्यों को न मानते हुए आज वह समय है जो राजा रावण ने संसार को विजय किया था, उसमें प्राणी बड़े दुःखी हो रहे थे और दुःखित होने का कारण यही था कि चरित्र तो था नहीं। अभिमान विशेष आ गया था, क्रोध की मात्रा आ गयी थी। क्रोध, शील को समाप्त कर देता है।

कामना समाज के प्राण को हर लेती है। राष्ट्रीयता उसी काल में नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब उन्होंने यह वाक्य कहा तो वह वाक्य आज तक मुझे स्मरण आ रहा है। मैं इसीलिए आज्ञानुसार आज लंका से आ पहुँचा हूँ। मेरी इच्छा यही है कि राम जैसा महापुरुष यदि राष्ट्र का नायक बनेगा तो प्रत्येक राष्ट्रों को एक नवीन प्रकाश प्राप्त होगा और नवीन प्रकाश को ले करके राष्ट्र की, समाज की पद्धति ऊँची बनेगी। उन्होंने यह भी कहा था कि मैं सबसे प्रथम राम के वाक्यों का आदर करूँगा, सत्कार करूँगा और मैं इनके वाक्यों को अपने जीवन में लाने का प्रयास करूँगा। क्योंकि अपने जीवन में इन वाक्यों को लाना, उस आभा को लाना हमें राष्ट्र के गौरव को ऊँचा बनाना है। यह कह करके विभीषण मौन हो गए।

इतने में हनुमान के पुत्र मकरध्वज ने कहा कि प्रभु मैं भी कुछ वाक्य प्रकट कर सकता हूँ। महर्षि वशिष्ठ बोले कि जो तुम्हारी इच्छा हो प्रकट करो। उस समय मकरध्वज जी कहते हैं कि आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, आज मैं अपने पितरों में गति कर रहा हूँ, राम भी मेरे पितर ही हैं और लक्ष्मण भी पिता और मेरे पिता तो पिता हैं ही, और ऋषि मुनि तो महा पितर होते हैं। आज यह मेरा कैसा सौभाग्य है, मैं कैसी गोष्ठी में विराजमान हूँ, जहाँ मुझे पितरों के दर्शन हो रहे हैं। मैं इसलिए उपस्थित हुआ हूँ, कि मेरी जो इच्छा है, मेरी जो कामना है, वह केवल एक ही कामना है कि हम अपने जीवन में एक आभा को लाना चाहते हैं, पवित्रता को लाना चाहते हैं, उस पवित्रता के लिए प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कार्य में रत हो रहा है।

तो मेरे प्यारे! हमें यह विचारना है कि हम अपने जीवन में एक आभा की पद्धति को अपनाना चाहते हैं परन्तु राष्ट्रीयता का क्या सम्बन्ध है? राम से हमें नवजीवन प्राप्त होगा, त्याग और तपस्या का जीवन हमें सहकारिता से प्राप्त होता रहा है, उन्हीं की देन है। आज इतने बड़े राष्ट्र के स्वामी का भार मुझे प्रदान किया है आज मैं उसको अपनाने के लिए तत्पर हूँ मानो मैं त्याग और तपस्या को अपनाना चाहता हूँ। मेरी उत्सुकता बन गई है कि मैं अपने जीवन में राम द्वारा अयोध्या के राष्ट्र की जो भी नियमावली निर्मित होगी मैं उसकी अवहेलना नहीं करूँगा। यह उन्होंने वाक्य कहा था। इसी वाक्य के आधार पर मकरध्वज कहते हैं कि यह मुझे मेरे पिता की देन है। मानो मैं तपस्वी बन सकता हूँ। मेरे पिता महान तपस्वी रहे हैं, सूर्य विज्ञान के ज्ञाता रहे हैं, सूर्य विद्या को निगलने वाले रहे हैं। इसीलिए आज मेरा यह बड़ा सौभाग्य है। इस सौभाग्यशाला में मेरा ध्येय तो यह है कि उनके यहाँ धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। इस प्रकार की राम-राज्य की स्थापना होनी चाहिए। राम है तो उसको राम राज्य कहा जायेगा जहाँ विष्णु राज्य की स्थापना होती है। आज मैं राम-राज्य की स्थापना चाहता हूँ। इतना उच्चारण करके वह भी मौन हो गए।

इसके पश्चात् महाराजा शिव जो निमन्त्रण के अनुसार हिमालय की कन्दराओं से आ पहुँचे थे, ने सभापति से कहा कि महाराज! मैं भी कोई वाक्य उच्चारण कर सकता हूँ। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय भगवन्! हमारी तो यह इच्छा है कि आप जैसे महापुरुषों के वाक्य

हों। महाराजा शिव कहते हैं कि आज हमारा बड़ा सौभाग्य है, आज हम इस अयोध्या में विद्यमान हैं जिस अयोध्या का निर्माण भगवान मनु ने किया था। भगवान मनु का जीवन-संसार में सर्वोपरि राष्ट्रीय रहा था। उन्होंने राष्ट्र पद्धति का निर्माण किया और राष्ट्र पद्धति का निर्माण करने के पश्चात् उन्होंने महत्ता की एक आभा को ओत-प्रोत किया है, उस अयोध्या का निर्माण किया जो 'नवद्वारा अष्ठचक्रा' नगरी कहलाई जाती है, यह अयोध्या है। जिसमें राम विद्यमान हैं, आज हमारा सौभाग्य है। मुझे वह काल स्मरण है जिस काल में लंका को विजय करने के लिए एक मेरी ही सम्मति नहीं थी, महर्षि भारद्वाज की भी सम्मति थी कि लंका को विजय किया जाए और लंका में आर्यत्व का प्रसार होना चाहिए।

आर्यत्व किसे कहते है? आर्यतत्व उसे कहते हैं, जहाँ मानव अपने नियम, धर्म और मानवता को अपनाता है और सत्यता को अपनाता हुआ अपने राष्ट्र की पद्धति को ऊँचा बनाता है। समुद्र के तट पर जब मुझे इन्हांने निमन्त्रण दिया, जयन्त मुझे निमन्त्रण देने जा पहुँचे, और जैसे ही राम का नामोच्चारण किया तो मैं अपनी स्थली को त्याग करके पार्वती को साथ ले करके समुद्र के तट पर आ गया। समुद्र के तट पर आकर इन्होंने कहा था कि महाराज! मुझे क्या करना चाहिए। क्योंकि राम परम्परा से ही नीतिज्ञ हैं मानो यह त्याग और तपस्या में रमण करने वाले हैं। यह ये भी उच्चारण कर सकते थे कि मेरी सहायता करो, परन्तु कदापि नहीं। वह मेरा पूजन करने के पश्चात् पूजन का अभिप्राय क्या था कि मुझे उचित आसन दे करके

नाना औषधियों को एकत्रित करके, चन्दन आदि को खरल करके जब मुझे शिष्टाचार के साथ आसन दिया तो चरणों में ओत-प्रोत हो करके यह कहा कि आप अधिराज हैं अब ऐसे काल में मैं क्या करूँ? मेरी ऐसी इच्छा है मैंने ऐसा संकल्प किया कि आर्यत्व का प्रसार होना चाहिए, सत्य सनातन होना चाहिए। उस समय मैंने हर्ष ध्वनि करते हुए कहा कि हे राम! तुम्हारी इच्छा यह है कि मैं संग्राम करूँ, इसमें मेरी सम्मति है। जितना भी मेरा द्रव्य कोष है वह मैं तुम्हें प्रदान करूँगा। प्रायः मैं रावण का सखा हूँ, रावण ने मेरे यहाँ अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या भी पाई है। वह मेरा शिष्य भी कहलाता है परन्तु शिष्य इसलिए होता है कि वह चरित्र की स्थापना करने वाला हो। मानवता को लाने वाला हो, परन्तु वह मानवता नहीं ला सकता, सत्यता का प्रसार नहीं कर सकता तो मैं उस प्राणी के साथ रहने वाला जो त्याग और तपस्या में रत रहने वाला हो, अपने गृह को गृह नहीं स्वीकार करता वह केवल त्याग में रहता है। महापुरुषों की सेवा करता रहता है और दूरिता को नष्ट करने की भावना होती है इसलिए मैं राम तुम्हारे समीप हूँ। मेरा जितना भी कोष है अस्त्रों-शस्त्रों का यह मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। जब मैंने यह प्रदान कर दिया तो राम ने हर्ष ध्वनि की। मानो उसने पूजन किया और पूजन का अभिप्राय यही था कि मुझे मग्न (प्रसन्न) करना था। संसार के जितने भी राष्ट्र लंका से दूर हो रहे थे उन सर्व राष्ट्रों को अपनाने का प्रयास किया। क्यों किया? क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए त्याग और तपस्या में संसार के राष्ट्र के जीवन को व्यतीत करने के लिए राष्ट्र

की पद्धतियों का निर्माण होता है। मानवता ही महत्ता लाती है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि राम जिस भावना से तुमने लंका को विजय किया है और विजय करके उनके विधाता को प्रदान कर दिया है, वहाँ के प्राणियों को वहाँ का राष्ट्र दे दिया, यह कितना भव्यपाद है, विजय करके तुम इस पर अनुशासन भी कर सकते थे, अधिराज भी बन सकते थे परन्तु तुम्हारा जो हृदय है वह त्याग और तपस्या में इतना दक्ष था कि मैं आज आर्यत्व स्थापना करना चाहता हूँ परन्तु वह स्थापना तुम्हारी संसार में हो गई है अब तुम अयोध्या को अपनाओ। अयोध्या की नियमावली का जो निर्माण होगा उसे प्रत्येक राष्ट्र अपनाने के लिए तत्पर है।

जब महाराजा शिव ने यह कहा..शिव कहते हैं कि हे राम! देखो अयोध्यापुरी एक ऐसी पुरी है जिस अयोध्यापुरी में आने के पश्चात् हमारा हृदय, हमारी मानवता का ऐसा प्रतीक दृष्टिपात होता है इसको ऊँचा बनाना है। यह वाक्य कह करके तुम राष्ट्र को अपनाओ और वशिष्ठ जैसे ब्रह्मवेत्ता तुम्हारे राष्ट्र में संरक्षण करने वाले हैं ऐसे महापुरुषों की सेवा में नियुक्त रहो, राष्ट्र का पालन करो यही हमारी इच्छा है। यह वाक्य उच्चारण करके महाराजा शिव मौन हो गए।

इतने में मुद्गल ऋषि और महर्षि विश्वामित्र उपस्थित थे। महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि मैं ब्रह्मवेत्ता महर्षि वशिष्ठ से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना करना चाहता हूँ। वशिष्ठ कहते हैं कि हे विश्वामित्र! जो वाक्य तुम उच्चारण करना चाहते हो करो। महर्षि विश्वामित्र कहते हैं हे राम! हे उपस्थित महापुरुषों! वास्तव में इतने

तो योग्य हैं नहीं जो तुम्हारी सभा में कोई वाक्य उच्चारण करूँ। परन्तु मेरा एक विचार है कि मैंने सदैव अपने राष्ट्र को त्याग करके मैंने ब्रह्मा गुरु आदियों को प्रदान किया है मैंने नाना गायत्रणी छन्दों के नाना अनुष्ठान किए हैं और अनुष्ठान करने के पश्चात् मेरा मानवत्व ऊँचा रहा है। मेरी इच्छा यह है कि राम ऐसी शक्ति है, वह महानता है कि हमें राष्ट्रों को त्याग करके तपस्वी बने हैं। राम एक ऐसा है जो राष्ट्र का पालन भी कर सकता है क्योंकि मैं इनके हृदय को जानता हूँ कि कितने गुण हैं। कितने समय यह अपनी निद्रा से जाग्रत हो जाते हैं। क्रिया-क्रम इनका कैसे प्रारम्भ होता है, सदाचार की भावना इनके मनोनीत हृदय में सदैव ओत-प्रोत रहती है। विश्वामित्र कहते हैं कि हे राम! अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम जिस लक्ष्य को बाल्यकाल में प्रकट किया करते थे, तुम्हें प्रतीत है जब मैंने तुमको धनुर्याग पूर्ण कराया था उस समय तुमने क्या कहा था? तुमने यह कहा था कि गुरुदेव! यदि मैं राजा बनूँगा तो मैं इन शत्रुओं को समाप्त करूँगा जो धर्म के मर्म को नहीं जानते। उन्हें शिक्षा दूँगा और जो शिक्षा में पारायण नहीं होंगे ऐसे निपात्रें की, ऐसी राष्ट्र की परम्परा बनाई जाएगी। हे राम! आज वह समय आ गया है। आज यह परम्परा आ गयी है कि आज तुम्हारा राष्ट्र ऊँचा होना चाहिए, जिसमें ब्राह्मणों की पताका रहनी चाहिए। त्याग और तपस्या में मानव का जीवन रहता हुआ ब्रह्म को जानने वाले पुरुष होने चाहिएं। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता पुरुष होते हैं, दार्शनिक होते हैं, विचारक होते हैं उतना राष्ट्र में अन्धकार नहीं होता, उतना राष्ट्र में

प्रकाश होता है और जब राजा के राष्ट्र में से धार्मिक प्राणी चले जाते हैं, धैर्य के मर्म को जानने वाले प्राणी चले जाते हैं उस समय राजा की कोई पद्धति नहीं होती। समाज में अन्धकार आ जाता है नाना प्रकार की रूढ़ियाँ आ जाती हैं इसलिए हे राजन्! ऊँचे-ऊँचे ब्राह्मण होने चाहिएं, वेद के मर्म को जानने वाले होने चाहिएं जिससे राष्ट्र में रूढ़ि न बन जाए। जब राजा के राष्ट्र में रूढ़ि बन जाती है तो राजा ऊँचा शासक नहीं होता। राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। धर्म का पूजन होना चाहिए क्योंकि धर्म के लिए राष्ट्र होता है। क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण होता है, निर्वाचन होता है वह धर्म, मानवता और समाज को ऊँचा बनाने के लिए होता है। यदि राजा राष्ट्र में धर्म और मानवता की स्थापना नहीं दे सके तो ऐसा राजा नहीं होता, वह धर्म के मर्म को नहीं जानता। धर्म के मर्म को जानने वाला राजा चाहिए। जिसके साथ में एक महान् पद्धति हो और ऊँची पद्धति हो, वेद का प्रसार हो, ज्ञान का प्रकाश होना चाहिए, ज्ञान का प्रकाश होगा तो नाना रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी, जितनी रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी उतना समाज ऊँचा बनेगा। राजा का राष्ट्र पवित्र बनेगा। यह वाक्य ऋषि विष्वामित्र ने कहा। मैंने अपने जीवन में राष्ट्र को त्याग दिया, कई काल में अनुष्ठान किए। आज मैं ब्रह्मऋषि बन गया हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र में एक विवेकी परम्परा होनी चाहिए, विवेकी पुरुष होने चाहिएं, जितने भी विवेकी पुरुष होंगे उतना राष्ट्र भव्य बनता चला जाएगा। यह उच्चारण करके वे मौन हो गए।

इसके पश्चात् नाना राजाओं ने अपना उपदेश दिया। महर्षि वशिष्ठ

ने उपसंहार किया, और महर्षि वशिष्ठ बोले कि जो राजा-महाराजाओं ने, ऋषि-मुनियों ने जो आभा प्रकट की है मानो यहाँ विज्ञान की चर्चाएँ की हैं। अर्थात् विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए, इससे पूर्व महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था कि हे राम! मैं विज्ञान का बहुत विशेषज्ञ हूँ। तुम्हारे राष्ट्र में जो विज्ञान है मेरी तो इच्छा केवल यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरुपयोग होने से राष्ट्र का प्राण चला जाता है। राष्ट्र की तपस्या चली जाती है। वे विवेकी पुरुष नहीं होते, ब्रह्मवेत्ता पुरुष नहीं होते, यह धर्म नाना रूढ़ियों में परिणित हो करके भिन्न-भिन्न प्रकार की रक्त भरी क्रान्ति आने का सन्देह बना रहता है और अकर्त्तव्य का पालन करने वाले अधिकार चाहते हैं तो कर्त्तव्यवादी प्राणी नहीं रहते। मेरी आकांक्षा यही है कि यह जो अयोध्या है यह परम्परा से दृष्य रही है, यहाँ आदर्श रहा है, अपनी राष्ट्रीयता में रुचि रही है इसीलिए हमारी इच्छा यही है कि तुम्हारी जो राष्ट्रीय परम्परा है वह महान् और ऊँची बननी चाहिए और विज्ञान का दुरुपयोग न हो और रूढ़ियों का विनाश होना चाहिए। वशिष्ठ मुनि की अध्यक्षता में ये वाक्य उच्चारण करके भारद्वाज मौन हो गए।

अब वशिष्ठ जी उपस्थित हो करके कहते हैं, हे ब्रह्मवेत्ता! हिरण्यम् देवः हिरण्यम् पृथ्वी वृधा एवम् ब्रह्मलोकाः अप्याम् लोकाः उन्होंने कहा हे भगवन्! आप अपने वाक्यों में अमृत का पान कराइये। उससे पूर्व अरुणधति बोली कि प्रभु! मैं भी तो कुछ उच्चारण करना चाहती हूँ।

माता अरुणधती को भी आज्ञा दी गयी। अरुणधती कहती है कि

हे राम! मेरी इच्छा तो यह है कि राष्ट्र में किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होनी चाहिए। रावण के राज्य को तुम विजय करके आए हो, वहाँ तुमने यही दृष्टिपात किया होगा कि वहाँ सतियों के सतीत्व को हनन किया जाता था। परन्तु अयोध्या जो राष्ट्र है यह ऐसा राष्ट्र है कि जहाँ सतियों के सतीत्व की सदैव सुरक्षा रही है और सुरक्षा लाने वाले रहे हैं, मेरी इच्छा है कि तुम्हारे राष्ट्र में याग होने चाहिएं और यागों में मेरी पुत्रियों के चरित्र की चर्चा होनी चाहिए क्योंकि चरित्रों की सुरक्षा होना बहुत अनिवार्य है। जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियों का श्रृंगार हनन होने लगता है वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अग्नि का कांड बन सकता है। इसलिए मेरी इच्छा यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में देवियों का पूजन होना चाहिए। देवियों की सुरक्षा होनी चाहिए जिससे मानवता का प्रसार हो और महत्ता की उपलब्धि होती चली जाए जिससे तुम्हारा जीवन और मेरी पुत्रियों का जीवन ऊँचा बने, जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियाँ अपने सतीत्व को समाप्त करके आप अपने उदर की पूर्ति करती हैं ऐसा राष्ट्र कदापि भी प्रिय नहीं होता। हे राम! राजा के राष्ट्र में यदि मेरी पुत्रियों के श्रृंगार को हनन करने वाले मानव हों ऐसा राष्ट्र कोई प्रिय नहीं होता, ऐसे मानव राजा के राष्ट्र में नहीं रहने चाहिएं। यह वाक्य माता अरुणधति प्रकट कर रही थीं। माता अरुणधति ने राम को यह शिक्षा दी। राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया और श्रवण करके माता अरुणधति के चरणों को स्पर्श किया। चरणों को स्पर्श करने के पश्चात् वे मौन हो गईं। मौन होने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ उपस्थित हुए।

वशिष्ठ ने यह कहा कि हे राम! आज तुम्हारा राज्याभिषेक होने वाला है। अब तुम राज्याभिषेक के लिए तत्पर हो। मुझे तो केवल इन वाक्यों का उपसंहार करना है। उनका राज्याभिषेक किया गया। राजा-महाराजाओं ने राम से कहा उन्हें वह स्थली प्राप्त हो गई। राजस्थली प्राप्त हो जाने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि हे राजाओं! हे ऋषियों! राम का राज्याभिषेक हुआ। राम आज अपनी स्थली पर विद्यमान हैं, जितने तुमने वाक्य कहे हैं, वह सब सारगर्भित हैं और वाक्यों के ऊपर इस अयोध्या में पालन किया जाएगा और पालन करने के पश्चात् राम को भी यह सदैव ध्यान रहे कि राजा को वैश्य के वैभव को नहीं अपनाना चाहिए। जब राजा वैश्य की परम्परा को अपना लेता है, वैश्यपन राजा में आ जाता है तो राष्ट्र में महान् स्वार्थ आ जाता है और स्वार्थ के आ जाने से ही संसार में मृत्यु है। इसीलिए आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम प्रत्येक मानवता में अपने जीवन को ऊँचा बनाने के लिए सदैव तत्पर रहें तो यह वाक्य महर्षि वशिष्ठ ने नतमस्तिष्क होकर राम को कहा। सभा में उनका राज्याभिषेक हो गया।

नतमस्तिष्क होकर राम ने कहा, हे महापुरुषों! हे राजाओं! आज तुमने यह इतने बड़े राष्ट्र का भार मेरे भुजाओं में ओत-प्रोत कर दिया है। आज तुम्हारे विचारों से मेरा अन्तरात्मा गद्-गद् हो रहा है। मेरा हृदय तो यही चाहता है कि न्यायालयों में न्याय होना चाहिए। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिए, कर्त्तव्य की पद्धति को अपनाना यह हमारा कर्त्तव्य है और यहाँ एक समय विवेक सभा होनी चाहिए जो निर्वाचन

समय समय पर करते हैं।

देखो उन्होंने अपने राष्ट्र में नाना प्रकार की आभाओं को प्रकट करके राम ने यह कहा कि मैं सब राजाओं का, ऋषि-मुनियों का सेवक बन करके रहूँगा। उसके पश्चात् सभा का विसर्जन हो गया। राज्यसभा को अपनाकर के सब ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने आसन को प्रस्थान किया।

राम-राज्य की स्थापना

राम लंका को विजय करके और विभीषण को राज्य दे करके अयोध्या वापिस आ गए। अयोध्या में आकर राष्ट्र को स्थापित करने से पूर्व वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत हो गए। वहीं विषामित्र भी आ गए। दोनों महापुरुषों के चरणों को छूकर राम ने कहा, भगवन्! अब आप मुझे कोई ऐसा निश्चित मार्ग दीजिए जिससे मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकूँ, अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूँ। ऋषियों ने उत्तम-उत्तम शिक्षाएँ दीं। उन्होंने कहा कि हे राम! सबसे प्रथम वाक्य यह है कि तुम्हारे राष्ट्र में मिथ्यावाद नहीं होना चाहिए। प्रजा में जब मिथ्यावाद हो जाता है तो दूसरा मानव उसका अनुसरण करने लगता है और यह भी निश्चित है कि राजा को मिथ्यावादी नहीं होना चाहिए। जब राजा स्वयं मिथ्यावादी हो जाता है, अनुशासन की हीनता जिस राजा में हो जाती है, प्रजा उसका अनुसरण स्वयं करने लगती है। प्रजा में जब उसका अनुसरण हो जाता है तो राज्य में रक्तभरी क्रान्ति आ ही जाती है। विषामित्र जी ने कहा कि हे राम! हम सदैव जानते रहते हैं कि राम संसार में कितना चरित्रवान है,

कितनी उसके द्वारा मानवता है। ऐसे मानव जब संसार में अवतरित हो जाते हैं तो यह संसार महत्ता को प्राप्त होता रहता है। यह वाक्य सुनकर राम ने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं राष्ट्र का अधिकारी हूँ भी या नहीं? उस समय ऋषि ने कहा, यह तुम्हारा हृदय ही जानता है। यदि तुम्हारा हृदय उस वाक्य को उच्चारण करता है तो तुम राष्ट्र के अधिकारी हो। यदि वह इसको स्वीकार नहीं करता तो तुम अधिकारी बन ही नहीं पाओगे। तुम्हें हमारे ऊपर और अपने आत्मा के ऊपर विश्वास होना चाहिए। क्योंकि जो अपने कर्त्तव्यों को ईश्वर के ऊपर त्याग देता है उसका मानव-जीवन त्रुटियों से उपराम हो जाता है। वह मानव सदैव त्रुटियों में रमण करता रहता है जिसके द्वारा अभिमान आ जाता है, जो कर्त्तव्य को करता हुआ प्रभु को स्मरण करता रहता है और अपने कार्यों को प्रभु के लिए त्याग देता है, उस मानव के द्वारा प्रायः सदाचार आ ही जाता है। यह सुनकर राम नत-मस्तक हो गए। उन्होंने कहा, प्रभु! वास्तव में अपने महान् देव की याचना करता हुआ और आपकी शरण में रहता हुआ राष्ट्र का पालन करूँगा।

गुरु राजा का प्रभु होता है, परन्तु गुरु वह होना चाहिए जो पक्षपात से रहित हो, तपस्वी हो, आत्मवेत्ता हो, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला हो, महान् प्रभु की प्रतिभा को जानने वाला हो। गुरु-पद चिन्हों पर चलता हुआ वह राजा अपने राज्य को सदाचार के मार्ग पर ले जाता है। भगवान राम ने उनके वाक्यों को स्मरण करते हुए प्रजा में स्वयं भ्रमण किया।

प्रजा कैसी सुन्दर थी कि प्रत्येक गृह में यज्ञ हो रहे हैं, वेद-मन्त्रों की ध्वनि आ रही है, शंख-ध्वनि होती थी। शंख-ध्वनि रूपी वेद वाणी का अपनी संस्कृति का सर्वत्र संसार में भगवान राम ने प्रसार किया। सारी प्रजा कर्त्तव्य करने में संलग्न थी। कर्त्तव्यवाद का नाम ही धर्म है। जिसका अन्तःकरण जिस वाक्य को उच्चारण कर रहा है उस कार्य को कर्त्तव्यवाद कहलाया गया है।,

राम ने जब राष्ट्र में भ्रमण कर लिया तो महर्षि वशिष्ठ और माता अरुन्धति ने उनका राष्ट्र-अभिषेक किया और कहा कि अब तुम योग्य बन गए हो। तुमने राष्ट्र को उत्तम बनाने में अपने पूर्वजों के कर्त्तव्यों का पालन किया है। इसलिए हम तुम्हारा राष्ट्र अभिषेक कर रहे हैं। तुमने वन में रमण करके भीलों और द्रविड़ों को अपनाया है और आर्यबल को बढ़ाया है, इस राष्ट्र को विशाल बनाया है, अपनी संस्कृति का प्रसार किया है।

जिसके द्वारा निष्ठा होती है, चरित्र होता है, मानवता होती है और प्रभु पर उसका विश्वास होता है, आत्मनिष्ठा जिनके द्वारा होती है उनका जगत् मित्र बन जाता है। भगवान् राम का यह संसार मित्र बन गया। मित्र बन जाने पर रावण आततायी को समाप्त करने के पश्चात् भगवान् राम अयोध्या के स्वामित्व को प्राप्त हुए। इसी को राम-राज्य कहते हैं। राम-राज्य का अभिप्राय यह है कि जहाँ प्रजा में प्रभु का स्मरण हो और अपने धर्म को जानने वाले प्राणी हों। क्योंकि धर्म की रक्षा के लिए ही राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र में कोई कन्या दुराचारी न हो, मार्ग में जाने वाले प्राणी उसे माता के तुल्य,

भौजाई के तुल्य दृष्टिपात करने वाले हों, धर्म के मर्म को जानने वाले हों, उस राजा का राष्ट्र शुद्ध होता है। (चौबीसवां पुष्प २४-३-७० ई.)

भगवान् राम ने अयोध्या वासियों से कहा था अयोध्या वासियो! आज मैं रावण को विजय करके अयोध्या में आ पहुँचा हूँ। यदि मुझे अयोध्या का नरेश बनाना चाहते हो तो तुम्हें अपने सदाचार, मानवता और वेद की प्रतिभा को अपनाना होगा, संसार के लोगों को संस्कृति से ओत-प्रोत करना होगा। अन्यथा मेरा राजा रावण और मेघनाद जैसे त्यागी राजाओं को नष्ट करने का कोई अभिप्राय शुद्ध रूप से नहीं हो सकेगा, क्योंकि संस्कृति के बिना मेरे जीवन में सार्थकता नहीं आ सकेगी। जब तक भील, द्रविड़ इत्यादियों को अपनाया नहीं जाएगा तब तक मेरा अयोध्या राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा। तब प्रजा ने इसको स्वीकार किया। राष्ट्र में वह प्रतिभा तथा जागरूकता आ गयी जिसके जागरूक होने के पश्चात् भगवान् राम का राष्ट्र पवित्रता में परिणत हो गया, सदाचारिता में परिणत हो गया था। (बाईसवाँ पुष्प २९-१०-७० ई.)

भगवान् राम जब राष्ट्रीय नियम बनाने लगे तो सबसे प्रथम यह परम्परा बनाई कि सबसे प्रथम तो यज्ञ होने चाहिएं, सुगन्धि होनी चाहिए। ये दोनों ही राष्ट्र और समाज को ऊँचा बना सकती हैं मानव के द्वारा राष्ट्र रहे या न रहे परन्तु सदाचार और मानवता अवश्य रहनी चाहिए। द्वितीय नियम यह बनाया था कि मेरे राष्ट्र में किसी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिए। इससे पूर्वकाल में भी नहीं होती थी। परन्तु

नियम यह था कि किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए। ''अहिंसा परमोधर्मः'' होना चाहिए। वह धर्म, शिष्टाचार और मानवता के लाने का सदैव प्रयास किया करते थे। (चौबीसवां पुष्प २८-१०-७३ ई.)

भगवान राम के यहाँ जब राष्ट्र की स्थापना हुई लंका को विजय करने के पश्चात् तो उन्होंने अपना राष्ट्रीय नियम बनाया, एक कर्म बनाया जो उनके रघुवंश में, नाना प्रणालियों में, नाना प्रकार की नियमावली रही। मध्यकाल में वह कुछ शन्तना को प्राप्त हो गयी। परन्तु, भगवान राम ने, महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों ने उन नियमावलियों को पुनः से धारण कराने का प्रयास किया। वह चारों विधाता नित्यप्रत अपनी यज्ञशाला में याग कर रहे थे जब चारों विधाता याग कर रहे थे तो ऋषियों का आगमन हुआ। ऋषि अपने-अपने उचित आसनों पर विद्यमान हो गए। परन्तु राम ने जब याग समाप्त किया। याग समाप्त करने के पश्चात् नाना मन्त्रीगण विद्यमान हैं। वह अपने मन्त्रीगणों को यह उपदेश दे रहे थे कि राष्ट्र को उन्नत बनाना हमारा कर्त्तव्य है। राष्ट्र ज्ञान और विज्ञान की तरंगों को धारण करने वाला हो। ऐसा भगवान राम का उपदेश चल रहा था। प्रत्येक प्राणी का जीवन त्याग और तपस्यामयी हो। विद्यालयों में त्यागी और तपस्वी ही पति-पत्नी शिक्षा देने में कुशलता को प्राप्त हो सकते हैं।

जब नियम बनाया गया तो सबसे प्रथम यह नियमावली थी राष्ट्र और समाज का चारित्रिक जो निर्माण होता वह विद्यालयों में होता है। तो इसीलिए उन्होंने विचारा कि विद्यालय पवित्र होने चाहिएं। तो

उनके यहाँ नाना ऋषिवर पत्नी सहित शिक्षा प्रदान कर रहे थे। राम के काल में कन्याओं का विद्यालय, ब्रह्मचारियों का विद्यालय जो गृह को त्याग करके ज्येष्ठ पुत्र को, वधु को, अपने गृह का सर्वत्र त्याग करके, प्रसन्नता से त्याग करने के पश्चात् जब विवेक से गृह को त्यागा जाता है तो वह विद्यालयों में अपने अनुभव ब्रह्मचारियों को जब प्रकट करते, ब्रह्मचारी सुसज्जित हो जाते। ब्रह्मचारिणी मानो विद्यालय में पवित्र बन रही हैं क्योंकि वह गृह को त्याग करके त्यागमयी, तपस्यामयी और यागमयी जीवन को बनाकर वह ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर रही हैं। क्योंकि जहाँ मन की प्रवृत्ति स्थिर रहती है, मन में एक ओज की धारा रहती है। ज्ञान को जितना भी दूसरों को प्रदान करता है उसकी उतनी ही उपलब्धि होती रहती है। ज्ञान में प्रसन्नता आती रहती है, विज्ञान में भी यही गति मानी गयी है।

परन्तु जब यह नियम बनाया गया तो वह नियमावली राजा के राष्ट्र में चल रही थी। राम प्रातःकालीन याग करते और याग के ऊपर मानो इनका कुछ उपदेश होता और वह यह कहा करते थे हे लक्ष्मण! यह राष्ट्र हमारा पवित्र होना चाहिए और राष्ट्र प्रिय वही होता है, पवित्र वही होता है जिस राजा के राष्ट्र में कोई एक-दूसरे का ऋणी न हो। यहाँ ऋण कई प्रकार के माने हैं। एक ऋण तो वह कहलाता है जिसको हमारे यहाँ पितृ-ऋण कहते हैं क्योंकि पितृं की सेवा करना, पितृं को ऊँचा बनाना यह पितृ याग कहलाता है। यह मानो नाना प्रकार की आभा में मानव रमण करता रहता है। परन्तु

पितृं को नहीं विचार पाता क्योंकि सबसे महान् जो हमारा पितृ है वह हमारा चैतन्य देव है जो नाना प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता रहता है जीवन को सुसज्जित बनाता रहता है। तो भगवान राम कहते हैं हमारे राष्ट्र में कोई एक-दूसरे का ऋणी नहीं होना चाहिए प्रत्येक मानव उऋण होना चाहिए, जिससे हम अपना कार्य सुचारू-रूप से कर सकें और प्रजा को सुखद बना सकें। भगवान् राम के उच्चारण करने के पश्चात ब्रह्मचारी भी मौन रहते और यज्ञशाला में जो मन्त्रीगण थे वह मौन थे। अपना विचार प्रारम्भ हो रहा था। राम कहते थे कि मानव का जीवन त्यागमयी होना चाहिए। जब तक त्यागमयी जीवन नहीं होगा तब तक मानव का जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनता, किसी भी काल में महान् नहीं बनता और जीवन त्यागमयी और याज्ञिक होना चाहिए।

भगवान् राम ने यह दृष्टिपात किया कि ऋषि भी विद्यमान हैं यह भी पूज्य होते हैं। अपने विचारों को शान्त करके यही उन्होंने अपना विचार दिया कि सब प्रजा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करे। एक-दूसरे का मानव ऋणी रह ही नहीं सकता। ऋणी उस काल में रहता है जब मानव नाना प्रकार की विडम्बना से युक्त होता है। नाना प्रकार की विडम्बना वाला जो मनवृत कहलाता है वह इस संसार को, गृह को या राष्ट्र को स्वर्ग नहीं बना सकता। स्वर्ग वही प्राणी ला सकता हे जिसका चारित्रिक निर्माण हो, महान् और पवित्र हो। वही मानव साधना के क्षेत्र में पगवेश कर सकता है। हमारे यहाँ याग के सन्म्बन्ध में नाना प्रकार की आभाएँ, नाना ब्रह्मवेत्ता आए उनका सर्वत्र एक

मन्तव्य रहा है कि संसार को ऊँचा बनाने के लिए महान् विचारों की आवश्यकता रहती है, पवित्रता की आवश्यकता रहती है। तो इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है, आज हम अपने मानव जीवन को यागमय बनाना चाहते हैं। तो वैश्मपायण इत्यादि विद्यमान थे। राम ने अपना उपदेश समाप्त किया। राम ऋषियों के चरणों को स्पर्श करके बोले, कहो भगवन् आज प्रातःकालीन मेरे आश्रम में आपका आगमन कैसे हुआ? महर्षि विभाण्डक मुनि बोले कि महाराज हम इसलिए आए हैं कि तुम्हारे राष्ट्र में एक याग होना चाहिए। हम एक याग की कल्पना करके आए हैं। संकल्पवादी बनकर आए हें कि राम के द्वारा एक याग हो सकता हे। राम बोले बहुत प्रिय, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो याग की रचना करो। याग होना चाहिए।

उस समय राम का आदेश पाते ही नाना ब्रह्मचारी, नाना ऋषिवर, ब्राह्मण समाज याग के रचाने के लिए नाना सामग्री एकत्रित करने लगे। जब नाना सामग्री एकत्रित हो गई तो वह याग के लिए अपने आसन से प्रस्थान करने लगे। याग प्रारम्भ हो रहा है। याग में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में वह याग हुआ। वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बने। अध्वर्यु उदगाता देखो नाना अपने आसनों को अपनाते हुए जब याग का आरम्भ होने चला। प्रारम्भ होने के पश्चात् भगवान राम मौन हो गए। यजमान की सूक्ष्मता थी इतने में महर्षि बाल्मीकि मुनि महाराज माता सीता के सहित भ्रमण करते यज्ञशाला में आ पहुँचे। क्योंकि हमारे यहाँ रघुवंश की परम्परागतों से एक नियमावली बनी हुई थी

कि जो भी सन्तान कन्या के, राज लक्ष्मियों के यहाँ जन्म लेती उनका विद्यालयों में, आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में उनकी पालना होती थी। जब सीता महर्षि बाल्मीकि आश्रम में जो जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वह आयुर्वेद के मर्म को जानने वाला था। सीता का वहाँ पदार्पण हुआ और पदार्पण होने के पश्चात् ब्रह्मवृत देवःयज्ञ एक महान कर्म तो होता है, विचित्र कार्य तो होता है परन्तु महर्षि बाल्मीकि भी सीता के सहित यज्ञ में आ पधारे और याग होने लगा।

जब याग प्रारम्भ होने लगा तो देवता प्रसन्न होने लगे। क्योंकि देवताओं को सबसे प्रथम आह्वान किया जाता है। स्वस्ति के द्वारा आह्वान करता है। मानव अपने अन्तःकरण से आह्वान करके कहता है आओ देवताओ! तुम देवपूजा करते हुए देववत् को प्राप्त हो जाओ। ऐसा वह उच्चारण कर रहे थे। देखो जब महर्षि बाल्मीकि भी विद्यमान हो गए और याग प्रारम्भ का वेदमन्त्र जब उन्होंने उच्चारण किया। द्वितीय किया, तृतीय किया। इसी प्रकार जब छठा मन्त्र उच्चारण किया तो राम कहते हैं यहीं याग को शान्त कर दो। उन्होंने कहा, क्यों महाराज? राम ने ऋषियों से कहा कि महाराज वेदमन्त्र यह कहता है यह जो यज्ञशाला है महापुरुषों का विमान कहलाता है और इस विमान पर विद्यमान होकर जब याग करता है तो वह देवतत्व को प्राप्त होता है। परन्तु जब यह नाना प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की जाने लगीं तो ब्रह्मवृत्त देवः शान्त हो गए और कहा कि मुझे यह निर्णय कराओ कि यजमान का विमान अन्तरिक्ष में कैसे जाता है? यह कैसे बनता है? हम यह जानना चाहते हैं। देखो नाना ब्राह्मण

मौन हो गए। क्योंकि ब्राह्मण उस प्रक्रिया को क्रिया से नहीं जानते थे। जब यजमान ने ऐसा कहा तो नाना ऋषिवर मौन रहे क्योंकि दर्शनों की भाषा में तो वह निर्णय दे सकते थे। परन्तु वह चाहते थे कि विज्ञान की महत्ता होनी चाहिए। विज्ञान इस सन्म्बन्ध में क्या कहता है? वह शान्त हो गए।

इतने में महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारिणी शबरी ने यह विचारा कि चलो आज महापुरुष के यहाँ याग हो रहा है। जब इतने में भारद्वाज का पदार्पण हुआ तो भारद्वाज मुनि महाराज ने दृष्टिपात किया कि सभा शून्य है। यज्ञशाला में प्राणी शून्य हैं। यजमान भी शून्य गति को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा कि महाराज! आप मौन क्यों हैं? राम कहते हैं कि मैंने यह निश्चय किया है मुझे यह निर्णय कराओ कि मेरा यह याग ऊँचा होना चाहिए, याग में सफलता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु मुझे सफलता का कोई आकार प्रतीत नहीं हो रहा। वह बाले कि क्यों? वह बोले कि मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है, स्वतः हो रहा है परन्तु कोई वाक्य नहीं। मेरा यह प्रतीत मिथ्या भी हो सकता है। ''यज्ञम् ब्रह्मेः'' जब महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा तो राम कहते हैं, महाराज! मेरी यह कामना है, मेरी यह इच्छा है कि मैं इस यज्ञशाला को यजमान का विमान दृष्टिपात करना चाहता हूँ। यह वाक्य उच्चारण किया और मौन हो गए। परन्तु महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारिणी शबरी को आदेश दिया और वह भ्रमण करते हुए अपने आश्रम में आए।

नाना प्रकार के यन्त्रों को स्थिर करके वहाँ से उन्होंने गमन किया

और अयोध्या में आ गए, जहाँ राम यज्ञशाला में यजमान की उपाधि से सुशोभित हो रहे थे, उद्गाता उद्गान गा रहा है, अध्वर्यु अपनी स्वरध्वनि में प्रवेश कर रहा है। भिन्न-भिन्न विचाराधाराएँ मानव के मस्तिष्कों में क्या संसार इसके सन्म्बन्ध से विचारता रहता है और चिन्तन करता रहता है कि हमारा जीवन कैसे महान् और पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। यज्ञम् ब्रह्मेः ऋषि ने कहा, राम! तुम अब याग करो। राम ज्योंहि यज्ञशाला में आहुति देने लगे त्यों ही इतने में ब्रह्मचारियों ने नाना प्रकार के तन्तुओं को कटिबद्ध कर दिया और याग उन्हें दृष्टिपात आने लगा मानो उनकी विज्ञानशाला में जो नाना प्रकार के यन्त्र विद्यमान थे उन यन्त्रों में यह विशेषता थी कि शब्द के साथ में जो चित्र आता है वह कहाँ जाता है, किस गति को प्राप्त होता है? वह उन यन्त्रों में स्वतः दृष्टिपात होता था। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यन्त्रों में राम का, सीता का चित्र नाना अध्वर्यु उद्गाता जो भी स्वाहा कहता था उसका चित्र बन करके द्यु-लोक में राम को दृष्टिपात होने लगा। उस समय भारद्वाज मुनि कहते हैं, हे राजन्! यह हमने कुछ विज्ञान तुम्हें दृष्टिपात कराया है। नाना प्रकार का विज्ञान मानव के मस्तिष्क में रहता है, विचारों में रहता है।

आजका हमारा वेद का ऋषि यही कहता है कि हे मानव! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपने कार्य-कलापों में तुम्हें परिणत रहना चाहिए। नाना प्रकार के यन्त्र चित्रावली में, दृष्टिपात आने लगे, तो राम मौन हो गए। महर्षि भारद्वाज मुनि कहते हैं, राम!

यह तुम्हें ज्ञान होना चाहिए। यह तुम्हें प्रतीत रहना चाहिए, कोई भी मानव इतनी आभा में, इतनी वृत्तियों में रमण नहीं करना चाहिए, परन्तु उसको शनैः-शनैः जीवन को ऊँचा ले जाना चाहिए। परन्तु जब ऐसा वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वह बोले, महाराज! हम आपके वाक्यों को स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि नाना प्रकार की जो कृति हैं, नाना प्रकार की जो भाषिताएँ हैं यही तो मानव को एक सूत्र में ला देती हैं, एक ही सूत्र में मानव को पिरो देती हैं। ऋषि की विज्ञानशाला के यन्त्रों में नाना प्रकार के चित्र दृष्टिपात होते थे। (उनतीसवां पुष्प ३०-४-७७ ई.)

लव-कुश

जब भगवान राम ने यह विचारा कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "हे लक्ष्मण! सीता को महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में त्याग करके आओ, क्योंकि वह नदी का तट है, उसी पर स्वच्छ वायुमण्डल में पत्नी जन्म देगी तो राष्ट्र का कल्याण होगा। लक्ष्मण सीता को ले करके बाल्मीकि आश्रम में गया। बाल्मीकि आयुर्वेद के महान् पण्डित थे, आयुर्वेद की औषधियों का पान कराते। (ईक्कीसवां पुष्प)

बाल्मीकि आश्रम में सीता के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म के पश्चात् बड़े आनन्द से ऋषि-आश्रम में रहा करता था। ऋषि उस बालक को लव के नाम से उच्चारण करने लगे। कुछ समय के पश्चात् ऐसा कारण हुआ कि महर्षि सुरन्धित की एक कन्या थी जिसका नाम सुमित्र था। वह ऋषि कन्या थी परन्तु किसी कारणवश

किसी 'अस्तुत्य शब्रोणो' से वह गर्भवती रह गयी। कुछ समय के पश्चात् उसके बालक हुआ और वह उस बालक को कुशा पर रखकर उसे बाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़कर अपने आश्रम चली गयी। जब सीता पवित्र जलपान ग्रहण करने के लिए गई तो उसे यह बालक प्राप्त हो गया। माता सीता ने उस बालक को अपने कण्ठ लगाया और एक लोरी उस बालक को तथा एक लोरी अपने पुत्र को देने लगी। ये दो पुत्र सीता के कहलाते हैं। लव जो इनके गर्भ से उत्पन्न हुआ तथा कुश जो कुशा से प्राप्त हुआ।

सुमित्रा ऋषि कन्या थी। एक ब्रहित नाम के ब्रह्मचारी सुरन्धित ऋषि के आश्रम में आए और सुमित्रा से दृष्टिपात हुआ। वह अग्रही हो गयी। वह कन्या गायत्री पाठ भी करती थी। मनुष्य में दोष आ सकते हैं, इस कन्या में भी किसी कारणवश दोष आ गया।

ये दोनों बालक ऋषि की सेवा करते थे। महर्षि बाल्मीकि इन्हें अस्त्र -शस्त्र की शिक्षा देते थे। (पांचवां पुष्प २२-१०-६४ ई.) बाल्मीकि आश्रम में बालक युवा होने लगे, आयुर्वेद की विद्या में पारायण हो गए। जब महाराजा राम ने अश्वमेघ यज्ञ किया तो उस यज्ञ में अश्वमेघ के घोड़े को छोड़ने का प्रचलन था। जैसा नियम है उसको किसी ने अंकित नहीं किया परन्तु उन दोनों पुत्रों ने अंकित कर लिया। माता सीता ने उनसे कहा, 'हे पुत्र! भगवान राम तुम्हारे पिता तथा मेरे स्वामी का यह अश्व नाम का पशु है, यह अश्वमेघ-यज्ञ का है, बाल्मीकि पर उसका निमन्त्रण आया है।' तब उन्होंने कहा कि अब हम बालक शिक्षा में उत्तीर्ण हो गए हैं। राम के महामन्त्री हनुमान

तथा लक्ष्मण थे, ये दोनों भ्रमण करते हुए बाल्मीकि आश्रम में आए और उन दोनों पुत्रों को लेकर माता सीता से प्रार्थना की कि हे माँ! अब तू राष्ट्र-गृह में चल। तू राजलक्ष्मी है, हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया है, क्योंकि जब यह बालक तुम्हारे गर्भ में था, तुम्हारी जो गति थी, तुम्हारे हृदय का जो एक रुग्ण भाग था, शरीर का एक भाग रुग्ण हो गया था, तो हमने इस भय से कि तुम्हारा रोग शान्त हो जाएगा, बाल्मीकि-आश्रम में छोड़ा था, अब वह पूर्ण हो गया है। अब तू राष्ट्र-गृह में प्रविष्ट हो। माता-सीता ने उस वाक्य को स्वीकार कर लिया महामन्त्री हनुमान और वे दोनों बालक गमन करते हुए अयोध्या में आए। अयोध्या में आकर सीता ने राम के चरणों को स्पर्श किया। स्पर्श करके राजेश्वरी-यज्ञ हुआ। उस यज्ञ में राम और सीता दोनों यजमान बने और यज्ञ पूर्ण हुआ। पूर्ण हो जाने के पश्चात् सीता ने कहा कि हे भगवन्! अब तुम्हारा यह यज्ञ पूर्ण हो गया है। आचार्य कुल से मैंने पुत्रेष्टि यज्ञ भी पूर्ण कर लिया। अब मुझे भान होता है कि सातवें दिन मेरी मृत्यु हो जाएगी।

उसने यज्ञ की पूर्णाहुति के सातवें दिन शरीर त्यागा। उसके सातवें दिन भगवान् राम ने शरीर त्यागा। पाँचों ने बारी-बारी शरीर त्याग दिया। सीता ने शरीर को स्थूलता से प्राणायात के द्वारा त्यागा। पृथ्वी में समाहित होना या जल में प्रवाहित होना आत्महत्या है और पाप है। चारों भाईयों ने भी प्राणायाम के द्वारा ही शरीर को त्यागा था। प्राणायाम के द्वारा शरीर को त्यागना महाउत्तम कहलाया गया है। (पच्चीसवां पुष्प १-८-७३ ई.)

६ छठा अध्याय-महाभारत के पात्रों का चरित्र-चित्रण

योगेश्वर भगवान् कृष्ण

जितने भी महापुरुष होते हैं उनका कहीं पर्वतों में जन्म हुआ, कहीं कारागार में हुआ। इसी प्रकार की प्रतिभा प्राप्त होती रही है। (बारहवां पुष्प ४-९-६९ ई.)

भगवान् कृष्ण का जन्म ऊँचे-ऊँचे भवनों में नहीं हुआ, महाराजा कंस के कारागार में हुआ।

महाराजा कंस ऊग्रसेन के पुत्र थे। महाराजा कंस के हृदय में अभिमान की मात्रा अधिक थी। अभिमान होने के नाते महाराजा कृष्ण के माता-पिता देवकी और वसुदेव को अपने कारागार मे बन्द कर लिया था। क्योंकि उन्होंने एक समय नारद मुनि से कहा कि महाराज! मेरी मृत्यु कैसे होगी? उन्होंने कहा कि तुम्हारी जो बहन है, इसी के गर्भ से सातवें स्थान में एक पुत्र का जन्म होगा। वही तेरी मृत्यु का कारण बनेगा।

उस समय महाराजा कंस ने विचारा कि मैं उस पुत्र को जन्म होते ही नष्ट कर दूँगा और मृत्यु को आने ही नहीं दूँगा जब मेरी मृत्यु उसी की भुजों से है। उसने अपनी बहन देवकी और वसुदेव को अपने कारागार में स्थिर कर लिया। वह कारागार में रहे। जो भी शिशु गर्भ से उत्पन्न होता, उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। स्वयं भी इसी प्रतिभा का बन गया। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो, क्या नहीं कर सकता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कन्याओं

को नष्ट करने लगा।

जब सातवें की आशाकृति हुई तो महाराजा कंस के अत्याचारों से समाज में बड़ी क्रान्ति आई और क्रान्तिवादियों ने यह कहा कि, अरे! क्या करें? यह तो इसने अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर लिया? वह क्यों नहीं हमें मृत्यु दण्ड देगा। वे परमात्मा से यह याचना करने लगे कि हे प्रभु! तू इनकी रक्षा कर। सातवां जो जन्म है, इनके गर्भ से उत्पन्न होने वाला शिशु है उसकी रक्षा कर। प्रजा की आत्मा की जो एक ध्वनि थी, परमपिता परमात्मा ने यह स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जिस दिन उसका जन्म होने वाला था उसी दिन वे यमुना पर जा पहुँचे, माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए और यशोदा से कहाः

''भोजक प्रचेः अक्रतानम् पुत्रोः गर्तानि पुत्र अन्य कृतानि अकतिति''

उन्होंने कहा कि मैं गर्भवती हूँ। यदि मेरी पुत्री होगी तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। दोनों की एक प्रकार संकल्पना बन गई। उन दोनों का संकल्प हो गया। (बारहवां पुष्प ४-९-६९ ई.)

जहाँ राजा कंस के हृदय में वेदना थी कि जन्म होते ही उसको नष्ट कर दिया जाएगा। परन्तु वसुदेव एवम् माता देवकी प्रभु का चिन्तन कर रहे थे और उनके हृदय में एक वेदना जागृत हुई। वसुदेव ने कहा हे देवी! हम इस कारागार में अपने पुत्र को जन्म दे सकते हैं तो बिना समय के उसकी मृत्यु कोई नहीं कर सकता। माता

देवकी व वसुदेव ने वैज्ञानिक रूपों से कृष्ण का जन्म दिया। (ग्यारहवां पुष्प २९-७-६७ ई.)

जब जन्म हुआ तो उस समय कारागार पर जितने भी सेवक थे वे गूढ़ निद्रा में सो गए। क्योंकि जिसको प्रभु जीवन देता है और जो पवित्र आत्मा हो तो उसको कौन नष्ट कर सकता है संसार में। क्या आज कोई मानव प्रयत्नशील रहे कि अमुक व्यक्ति को नष्ट कर सकता हूँ तो कर नहीं सकता। जो सेवक थे जब सो गए। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को लेकर एक स्वच्छ एवम् स्वेत्तम से सपात्र में ले करके उन्हें यमुना पार करना था। यमनु को पार करते हुए उसने यशोदा के द्वार पर उस पुत्र को त्याग दिया और यशोदा के कन्या का जन्म हुआ। यशोदा ने उसे देवकी को सौंप दिया। देवकी ने उसे स्वीकार कर लिया।

दिवस होते ही कंस ने कहा ''क्या पुत्र है या पुत्री''? उन्होंने कहा कि महाराज! ''पुत्री है।'' कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस हुए थे कि नारद मुनि पुनः आ गए। देवऋषि नारद ने कहा ''कहिए भगवन्!'' कंस ने कहा ''महाराज मैंने तो सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है।'' उन्होंने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का कारण तो बन गया है। वह तो यशोदा माता के यहाँ चला गया है, वह नष्ट नहीं हो सकेगा। यह वाक्य कंस ने श्रवण किया और उन्होंने नाना योद्धा क्षत्रियों को एकत्रित किया और उनसे कहा कि जाओ उसे नष्ट करो। परन्तु वह कैसे नष्ट हो सकता था।

महापुरुषों की महिमा अलौकिक होती है। उनका जीवन भी

अलौकिक होता है और उनके नेत्रों की और सब इन्द्रियों की प्रतिभा भी अलौकिक होती है। उनकी अलौकिकता को कोई नष्ट नहीं कर सकता। कंस के सेवकों ने अनेकों को नष्ट कर दिया परन्तु वह स्वयं ज्यों का त्यों रहा। गृहों में जितना भी दही और घृत था वह महाराज कंस के यहाँ जाता था। भगवान् कृष्ण ने कहा कि घृत गृहों में रहना चाहिए या मुझे उसे पान कराओ। मेरे पान कराने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक गृह में इसको प्रवृष्टि होना चाहिए। यह राजा के यहाँ इस प्रकार का कर नहीं जाना चाहिए।

बाल्यकाल में उसकी इतनी तीव्र बुद्धि थी। वह सब कार्य विद्वता से करते थे। जहाँ उनका जीवन इतना बलिष्ठ और इतना चातुर्यता में था, उतना ही उनका यौगिकता में गमन था। वह सोलह कलाओं को जानते थे। षोडश कलाएँ क्या होती हैं? मानो वह ज्ञान में पारंगत होता है। जो षोडश कलाओं को जानता है।

सबसे प्रथम कला का नाम प्राचीदिग्, दक्षिणादिग्, प्रतीचिदिग्, उदिचि दिग्, चार ये कलाएँ मानी गयी है। पृथ्वी कला, वायु कला, अन्तरिक्ष कला और समुद्र कला, चार कलाएं ये थीं और तृतीय स्थान में सूर्य कला, चन्द्रकला, अग्नि कला, और विद्युत कला, चार कलाएँ ये थीं। जिनको जानने के लिए भगवान कृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। जैसे विद्युत है, अग्नि है और अन्तरिक्ष इनमें जितनी प्रतिभा होती है उसको जानते थे। इसके पश्चात् मन कला, चक्षुश् कला, श्रोत्र कला, और घ्राण कला, इन सबको वे जानते थे। ये षोडश कलाएँ कहलाई जाती हैं, जिनको भगवान् कृष्ण अच्छी तरह जानते थे।

इसीलिए योग में उनकी गति थी और राष्ट्रीय विधान में भी उनकी प्रगति महान् विशाल रहती थी। जो षोडश कलाओं के जानने वाला महापुरुष होता है, वह इस संसार में महान् कहलाया जाता है। आज हमें उन महान् विचारों को विलक्षण बनाना है जिससे हमारा जीवन उन्नत बनने के लिए तत्पर होता चला जाए।

भगवान् कृष्ण उन षोडश कलाओं को जानकर नित्य-प्रति साधना के साधक रहते थे और राष्ट्रीय विधान में भी राष्ट्रीयवेत्ता रहते थे। प्रातः काल में जब रात्रि रहती थी, तारामण्डल अपना प्रकाश लिए होते थे रात्रि के गर्भ में, उस समय अपने स्थान को त्याग देना और चिन्तन करना, निदिध्यासन करना, मानो यौगिक प्रक्रियाओं पर विचार-विनिमय करना, विशालता को विचारना। जैसे प्राचीदिग् है, दक्षिणदिग् है, प्रतीची दिग् है, उदीचीदिग् है। इन चारों दिशाओं को जानने का प्रयास करते रहते थे। इनमें कितना व्यापकवाद है, एक दूसरी दिशा में कितनी सुगठितता है। जैसे पृथ्वी है, इसमें कितने खनिज हैं, खाद्य हैं? इन सबको विचार-विनिमय करना और वायु मे कितनी तरंगे हैं? कितने वेग से भ्रमण करती हैं, किस समय क्या-क्या करती हैं, यह सब विचार करना उनका कार्य था। समुद्र को जानने का प्रयास करते रहते कि समुद्र में कितने प्रकार के प्राणी रहते हैं। किस प्रकार से उत्थान होता है। यह सब कुछ जानने का प्रयत्न करते रहते थे। इन बारह कलाओं के ऊपर संयमी कैसे बन सकते हैं। उन्होंने अपने विचारों में एक लेखनीबद्ध की थी। उन्होंने कहा था 'यदि हम अपनी चारों कलाओं को अच्छी प्रकार नहीं जानेंगे

तब तक इन पर संयम नहीं कर पाएँगे। वे चारों कलाएँ कौन सी हैं? सबसे प्रथम (१) मन कला, (२) चक्षु कला, (३) श्रोत कला, (४) घ्राण कला। इन चारों कलाओं का ज्ञान होने के पश्चात् हम संसार के ब्रह्मवेत्ता, संसार के विज्ञानवेत्ता, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों में एक विशालता को प्राप्त हो सकते हैं। इन सब कलाओं को जानने वाला संसार में एक महान् योगी कहलाता है। किस प्रकार का योगी? आज कोई यह उच्चारण करने लगता है कि मैं चन्द्रमा में, मंगल में और बृहस्पति में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण करना चाहता हूँ। तो ऐसे जो महापुरुष षोडश कलाओं को जानने वाले होते हैं। क्योंकि इन षोडश कलाओं में से ही परमाणुओं की उद्बुधता होती रहती है। परमाणुओं की उद्बुधता होने के नाते ही भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं। इन परमाणुओं को सुगठित करना यह सब महापुरुषों का कर्त्तव्य है। इन परमाणुओं पर उनका अधिपत्य हो जाता है। अधिपत्य हो जाने के पश्चात् वह भौतिकवाद हो चाहे अध्यात्मिकवाद हो चाहे उनमें अधूरापन किसी भी काल में नहीं रह सकता। (बारहवां पुष्प ४-९-६९ ई.)

वह कितने बड़े विज्ञान में रमण करते थे। कितना विज्ञान उनके समीप था। वे जानते थे कि पृथ्वी में क्या है, अन्तरिक्ष के परमाणु क्या कर रहे हैं। जो मानव विज्ञान के आश्रित हो करके वायु-मण्डल को जानने लगता है वही तो संसार में विज्ञानवेत्ता कहलाया जाता है। (बारहवां पुष्प ५-३-६९ ई.)

भगवान कृष्ण १६ कलाओं को जानते थे। (दसवां पुष्प ४-५-६८

ई.)

महाराजा कृष्ण ने १६ कलाओं का नेवले को वर्णन करते हुए कहा था कि प्रत्येक मानव षोडश कलाओं का बना है। जो इन्हें जान लेता है वह १६ कलाधारी हो जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्तःकरण तथा मधुवार्त्ता, ये १६ हैं।(तीसरा पुष्प ७-३-६२ ई.)

आज (जन्माष्टमी) का वह पुनीत सुन्दर दिवस है जब भगवान् कृष्ण का इस पृथ्वी मण्डल पर आगमन हुआ था। वास्तव में यह मोक्ष से परावर्तित आत्माएँ संसार में आती हैं और परोपकार करके यहाँ से चली जाती हैं। वह सामज के लिए और भी कोई कर्म करते हैं वह कर्म उन्हें व्यापता नहीं है। क्योंकि उनका विचार, उनकी प्रतिभा साधारण कर्म से उपराम होती है। इसलिए मानव को आश्चर्यजनक प्रतीत होता है उनका जीवन। उनके जीवन में यही विशेषता होती है कि वे साधारण से अलौकिक पुरुष कहलाते हैं। क्योंकि वे दृष्टिपात करते हुए भी दृष्टिपात नहीं किया करते हैं। वे भोगों को भोगते हुए भी भोग नहीं किया करते हैं। क्योंकि महापुरुष की यह एक विशेषता है। समाज के हित के लिए जो कार्य होते हैं उनमें वह दूसरों को मिथ्या प्रतीत होता है। परन्तु वह मिथ्या उनको व्यापता नहीं है। क्योंकि उनका जो जीवन है, उनकी जो अलौकिक विचारधारा है वह अपनी कोई विचारधारा नहीं होती। वह जो उनका पूर्व संस्कार का संकल्प होता है और संकल्प करके करते हैं और उसी संकल्प के आधार से उनके जीवन में एक अलौकिकता होती

है। इसीलिए उन्हें भगवान् इत्यादि की उपाधियाँ प्राप्त हो जाती हैं। (बारहवां पुष्प ४-६-६९ ई.)

कृष्ण के समय में कितना दुराचार आ चुका था, कितना विज्ञान आ चुका था। परन्तु उनके जीवन को छू न सका। वह संसार में कुछ करके जाएँगे। देवयान उसको कहते हैं जहाँ देव आत्माएँ रमण करती रहती हैं। (चौथा पुष्प २८-७-६३ ई.)

कृष्ण के पिछले जन्मों का विवरण

भगवान कृष्ण के पिछले जन्मों का वर्णन मिलता है। भगवान कृष्ण इस जन्म से पहले मध्यूनपान ऋषि महाराज थे। मध्यूनपान ऋषि जब देवयान में रमण करते थे तो संसार को देखा करते थे कि यहाँ क्या हो रहा है? यह कौन सी प्रगति को जा रहा है? जब यहाँ वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार किया जा रहा था और राजा कंस के महापापों से महापाप छा रहा था उस काल में मध्यूनपान ऋषि ने माता देवकी के यहाँ आ करके उस महान् कष्ट-यात्रा में माता के गर्भस्थल में धारण होकर माता यशोदा के गृह में पहुँचे, उन्होंने आ करके संसार को ऊँचा बनाया। (चौथा पुष्प २८-७-६३ ई.)

वैवस्वत जो भगवान मनु जी हुए हैं, वे भगवान मनु द्वितीय काल में हुए, परन्तु उससे पूर्व काल में वह स्वायम्भु मनु महाराज के नाम से हुए। सर्व-सृष्टि में चौदह मनवन्तर होते हैं और चौदह मनु होते हैं। एक-एक मनु एक-एक मनवन्तर में आता है। चार अरब, बत्तीस करोड़, कुछ वर्षों की सृष्टि की अवस्था होती है। परन्तु उन अवस्थाओं में चौदह मनु होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में जो प्रथम मनु

था वह भगवान कृष्णा ''रूपां वृत्ति अस्ति आत्मा ब्रह्मे कृति'' मानो वही आत्मा थी जिन्होंने सूर्य और इक्ष्वाकु को ज्ञान दिया। क्योंकि सूर्य और इक्ष्वाकु जो हुए सर्वप्रथम मन्वन्तर में हुए। इसी प्रकार द्वितीय मनु हुए, तृतीय मनु हुए। इसी प्रकार अब यह सातवां मन्वन्तर प्रारम्भ हो रहा है। इस समय जो चल रहा है वह सातवां मन्वन्तर चल रहा है। यह भी कुछ काल में समाप्त हो जाएगा और आठवाँ आरम्भ हो जाएगा। इसी प्रकार चौदह मन्वन्तर होते हैं। एक मन्वन्तर की आयु धृति मानी गयी है। वह ब्रह्म का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र भी बड़ा विलक्षण माना गया है। ब्रह्म की एक रात्रि, एक कल्प के समान होती है। एक कल्प के समान एक दिवस होता है। इसी प्रकार ब्रह्म की आयु सौ वर्ष होने के पश्चात् वह सृष्टि का प्रारम्भ समाप्त हो जाता है। (बारहवां पुष्प ४-९-६९ ई.)

जिस समय उन्होंने इक्ष्वाकु को ज्ञान दिया, महाराजा सूर्य को ज्ञान दिया तो उस समय भगवान कृष्णा की आत्मा ही मनु जी की आत्मा थी। कृष्णा का आत्मा मनु जी के शरीर में प्रविष्ट हो रहा था उस काल में। भगवान मनु ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय विधान को बनाया और विधान बनाते हुए उन्होंने कहा कि''धर्म और मानवता की रक्षा करना राष्ट्र का परम उद्देश्य है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती है, उस राष्ट्र और पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए।''

इसी आत्मा का सर्वप्रथम जन्म मनु का हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने महाराजा सूर्य और इक्ष्वाकु को ज्ञान दिया। क्योंकि भगवान

मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। सूर्य नाम का राजा था। उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। उन्हीं को उन्होंने यह ज्ञान की विचारधाराएँ और राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और ब्रह्म-ज्ञान दे करके वह अपने परम-धाम को प्राप्त हो गए थे। (बारहवां पुष्प ३-९-६९ ई.)

भगवान कृष्ण की विद्वता

महाराज कृष्ण सोलह हजार वेद की ऋचाएँ जानते थे। जिनको अलंकारिक रूप से सोलह हजार गोपिकाएँ कहा जाता है। वह एकान्त स्थान में वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे और उन गापिका रूपी ऋचाओं से विनोद किया करते थे। उससे उन्होंने संसार के ज्ञान-विज्ञान का जाना था। (तीसरा पुष्प ८-३-६२ ई.)

वह हर समय उन ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे। उनकी पत्नी रुक्मिणी उनसे कहा करती थी कि प्रभु! आप तो हर समय उन वेद-रूपी गोपिकाओं में रमण करते रहते हैं। उस समय भगवान कृष्ण कहा करते थे कि हे देवी! परमात्मा ने इस वेद-रूपी अमूल्य प्रकाश को जानने के लिए मुझे उत्पन्न किया है। आज इस प्रकाश को जानना है, जिसको जानकर मानव मुग्ध हो जाता है और उसके द्वारा वेद की भावनाएँ उत्पन्न होकर संसार-सागर से पार हो जाता है। (चौथा पुष्प १८-४-६४ ई.)

भगवान कृष्ण का गृहस्थ जीवन

भगवान कृष्ण गृह आश्रम में प्रविष्ट हुए तो नित्य प्राणायाम करते

रहने से उनके प्रधुम्न जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। (ग्यारहवां पुष्प २१-७-६३ ई.)

जिस समय महाराजा कृष्णा की पत्नी से प्रधुम्न बालक उत्पन्न हो गया उसके पश्चात महाराजा कृष्णा ने कहा था कि मैं ब्रह्मचारी बनने जा रहा हूँ। उस समय जन्म-जन्मान्तरों के योगी ने ऐसा किया कि उन्होंने बारह वर्ष तक अपने जीवन का अनुसन्धान किया। द्वापर के पश्चात् किसी ने अपने जीवन का ऐसा मन्थन नहीं किया। उसके एक-एक रोम में ऐसी ज्योति उत्पन्न होती थी जैसे सूर्य की किरणों होती हैं।(सातवां पुष्प २२-८-६२ ई.)

भगवान कृष्णा परजन्य ब्रह्मचारी थे। (चौथा पुष्प १८-४-६४ ई.)

भगवान कृष्णा के जीवन में कितनी कठिनाईयाँ आईं किन्तु उन्होंने अपने जीवन में कोई पाप-कर्म नहीं किया। उनका जीवन ऐसा रहा जैसे सुगन्धा। (ग्यारहवां पुष्प ३१-७-६८ ई.)

भगवान कृष्णा प्रातः-सायंकाल यज्ञ करते थे। एक समय यज्ञ पर अध्ययन कर रहे थे कि उनकी देवी रुक्मिणी आ गयी। उन्होंने कहा, 'प्रभु! आप क्या कर रहे हैं?'' उन्होंने कहा, ''देवी! मैं यज्ञ पर विचार-विनिमय कर रहा हूँ। मैंने जो प्रातः सुगन्धि की है उस सुगन्धि में कितनी तरंगे हैं और कितनी गति है, उसका अध्ययन कर रहा हूँ।'' रुक्मिणी ने कहा, ''यह भी कोई विचार है? मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे हृदय में, मेरे विचार में कितनी तरंगें होंगी?'' कृष्णा ने कहा, ''देवी! तुम्हारे हृदय में जो तरंगें हैं इनका निवारण किया जा सकता है, इनकी गणना भी की जा सकती है। जब तक तुम्हारे

वाक्य में अभिमान है तब तक यज्ञस्वरूप को नहीं जान पाओगी।'' रुक्मिणी मौन हो गई, उनका हृदय इतना परिवर्तित हो गया कि वे स्वयं पति के समीप विराजमान होकर यज्ञ किया करती थी और उनको रात्रि-रात्रि व्यतीत हो जाती थी, यज्ञ के ऊपर अनुसन्धान करते रहते थे। (तेरहवां पुष्प १६-१०-७१ ई.)

एक समय रुक्मिणी ने भगवान कृष्ण से कहा, ''हे भगवन्! मैं ब्रह्मचर्य को जानना चाहती हूँ। यह ब्रह्मचर्य क्या है? क्या हम भी ब्रह्मचारी बन सकते हैं? भगवान कृष्ण ने कहा, हे देवी! संसार में सभी ब्रह्मचारी बन सकते हैं। जो अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते वे ब्रह्मचारी नहीं कहलाते। (दसवां पुष्प २१-७-६३ ई.)

महाराजा कृष्ण से रुक्मिणी ने पूछा, ''भगवान्! गौ हम किसको कहते हैं?'' कृष्ण ने कहा, ''हे देवी! गौ नाम हमारी इन्द्रियों का है। गौ नाम उस पशु का भी है जो दूध देती है। गौ नाम सूर्य की किरणों का है, चन्द्रमा की कान्ति का नाम भी गौ है, गौ नाम पृथ्वी का भी है।''

भगवान कृष्ण गौ-रक्षक के रूप में

मुझे महाराजा कृष्ण का जीवन स्मरण है वह व्यापकता से संसार को दृष्टिपात करते थे। उनका जीवन, उनकी मानवीयता कितनी व्यापकता में थी कि गऊओं के आँगन में रमण कर रहे हैं, गऊओं का पालन कर रहे हैं, ध्वनि आ रही है तो गऊएँ उनके आँगन को चली आ रही हैं। उस मानव के हृदय में कितनी उदारता होगी जिनसे पशु भी स्नेह करते हैं। (तेरहवां पुष्प ११-५-६७ ई.)

भगवान कृष्णा ने एक समय एक वाक्य कहा था कि ''जहाँ समाज में गऊओं की रक्षा होती है, गऊ नाम के पशु की रक्षा करनी है, गौ नाम इन्द्रियों की रक्षा करनी है, वहाँ राष्ट्रीय विचारधारा और मानव पद्धति को विलक्षण बनाना है।'' भगवान कृष्णा मार्ग से आते तो एक ध्वनि किया करते थे और उनकी ध्वनि के आधार पर मानो एक नाद होता था और गऊएँ प्रसन्न होकर दूध देने के लिए तत्पर हो जाती थीं। वे गऊएं जब तत्पर हो जातीं तो उस समय उनके दुग्ध को पान किया जाता था। जब पशु प्रसन्न होकर दुग्ध को देता है तो वह स्वामी के लिए बुद्धिवर्द्धक होता है। आज कोई मनुष्य पशु के दुग्ध को लेना चाहता है परन्तु पशु के हृदय में वेदना नहीं है कि मैं उसको दुग्ध प्रदान करूँ। तो आचार्य कहते हैं, भगवान कृष्णा ने भी कहा है कि दुग्ध रक्त के तुल्य होता है। वह दुग्ध मानव के मस्तिष्क को कदापि उन्नत नहीं बना सकता। क्योंकि मानव का जो मस्तिष्क है वह उसकी प्रसन्नता से सुगठित रहता है। भगवान कृष्णा ने कहा कि सबसे प्रथम पशु को प्रसन्न किया जाए। वह उनकी रक्षा करने में कितने दक्ष रहते थे, मार्ग में जाते रहते, वेदों का अध्ययन आरम्भ रहता, गऊओं की रक्षा होती रहती। दोनों प्रकार की रक्षा करना उनका परम कर्त्तव्य था। सबसे प्रथम गऊ नाम के पशु की, क्योंकि उससे राष्ट्रीय परम्परा ऊँची बनती है। राष्ट्रीय सम्पदा क्या है? राष्ट्र में दुग्ध देने वाला पशु है। उसी से मानव की बुद्धि ऊँची बनी रहती है। मानव की बुद्धि में ऊर्ध्वागति आती है। ऐसे उत्तम पशु की राजा के राष्ट्र में रक्षा करना यह सबका परम-कर्त्तव्य हो जाता है। (बारहवां

पुष्प ३-९-६९ ई.)

भगवान कृष्ण अर्जुन के गुरु के रूप में

एक समय भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों समुद्र के तट पर अपनी द्वारका पुरी में विराजमान थे। उस समय अर्जुन बोले "महाराज! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जितनी तरंगें हैं समुद्र में, उन तंरगों से ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र दूषित हो गया है" भगवान् कृष्ण बोले "इसका मूल कारण तुम जानते हो?" उन्होंने कहा "हम नहीं जानते।" कृष्ण ने कहा "हे अर्जुन तुम्हें यह प्रतीत है कि राष्ट्रवाद कितना दूषित हो रहा है" अर्जुन ने कहा "हाँ भगवन्! यह तो प्रतीत है।" कृष्ण ने कहा "जिस समय राष्ट्रवाद की परम्परा अक्षम्य हो जाती है, उस समय प्रायः वातावरण अशुद्ध हो जाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि जिस समय विश्व संग्राम होते हैं, रक्तभरी क्रान्तियाँ आती हैं उस समय प्रकृति के लक्षण परिवर्तित हो जाते हैं।" अर्जुन ने कहा "भगवन्! मैं तो इसको नहीं जानता।" कृष्ण ने कहा "उस समय पृथ्वी का वातावरण अशुद्ध हो जाता है। यह समुद्र उस काल में दूषित होता है जब हम देवताओं के ऋण से उऋण नहीं होते। देवताओं के ऋण से उऋण होना अनिवार्य है। जब मानव दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि करता रहता है, सुगन्धि नहीं करता, कहीं दूषित विचारों से दुर्गन्धि करता है, कहीं पदार्थ को अशुद्ध बना करके दुर्गन्धि में स्थापित कर देता है। वह जब सुगन्धि नहीं देता तो सुगन्धि समाप्त हो जाती है, दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि हो जाती है तो प्रायः समुद्रों में अशुद्धवाद आ जाता है, समुद्रों का जो जलप्रवाह है उसमें दूषितवाद

की तरंग ओत-प्रोत हो जाती है। हे अर्जुन! आज तो तुम्हें ये तरंगें दूषित होती दृष्टिपात आ रही हैं उसका अभिप्राय यह है कि जिससे संग्राम होना है और जो समाज का दूषितवाद है वह नष्ट होना है।'' (पच्चीसवां पुष्प पृ.-४९)

जिस समय कुरुक्षेत्र में कौरव-पाण्डव दोनों सेनाओं के मध्य में कृष्ण विराजमान थे, अर्जुन सखा उनके सहित थे। महाराजा अर्जुन दोनों पक्षों को दृष्टिपात करके शोकातुर हो गए। जब शोक में लवलीन हो गए तो उस समय भगवान् कृष्ण ने कहा था कि हे अर्जुन! यह मोह तुम्हें इस प्रकार क्यों आया है? कर्त्तव्यवाद को जो मानव मोह के वशीभूत हो करके त्याग देता है उस मानव का यह लोक और परलोक दोनों ही नहीं रहा करते। इसलिए आज तुम शोकातुर न हो। आज तुम अपने कर्त्तव्य और क्षत्रियपन को न त्यागो। (बारहवां पुष्प ३-९-६९ ई.)

उस समय भगवान् कृष्ण ने अपनी यौगिक सत्ता के द्वारा अपने मन को उसके अन्तःकरण में प्रवेश कर दिया और यह कहा कि ''यह जो मन को मोह हो गया है इस मन के मोह को शान्त कर देखो। उन्होंने केवल ढाई घड़ी (एक घन्टे) के उपदेश में उसके हृदय को विदीर्ण करके उस स्थिति पर लाने का प्रयास किया कि यह तो मेरा कर्त्तव्यवाद है। (सत्तईसवां पुष्प २-३-७० ई.)

भगवान कृष्ण द्वारा निष्काम कर्म

महाराजा कृष्ण ने अर्जुन से कहा था ''हे अर्जुन! तू आज मुझे प्राप्त हो। जो भी कार्य करना है वह निष्काम कर।'' इसकी व्याख्या

यह है कि..जिज्ञासु जब गुरु के पास जाता है तो गुरु कहता है कि हे बालक! यदि तुझे जिज्ञासु बनना है तो जो तेरे पास है वह मुझे दे। मेरे समीप होकर और अर्पण होकर कार्य कर। इस प्रकार गुरु-शिष्य के सन्म्बन्ध के नाते कृष्ण ने यही कहा था कि तुझे महान् कार्य करना है, महान बनना है तो अपने जीवन के सभी शाकल्य योजनाएँ और संकल्प-विकल्प मेरे अर्पण कर और निष्काम कार्य कर। आज जिनका तू मोह कर रहा है वे तो पूर्व ही नष्ट हो चुके हैं। ये आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायेंगे। इन आदेशों को मानकर अर्जुन ने युद्ध किया। (सातवां पुष्प २२-८-६२ ई.)

सर्वज्ञता

भगवान् कृष्ण ने बार-बार कहा है कि "मैं सर्वज्ञ हूँ, सर्वशक्तिमान् हूँ।" इसका अभिप्राय यह है कि जिन गुरुओं से उस विद्या को जाना है, जिससे आत्मतत्त्व को जाना जाता है वह गुरु कहा करता है कि मैंने सब कुछ जाना है। परमात्मा ने मुझे वह शक्ति प्रदान की है कि तेरे पापों को अवश्य नष्ट कर दूँगा। (सातवाँ पुष्प २२-८-६२ ई.)

कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि मैं सब प्रकृति को जानता हूँ। परन्तु मुझे तो वह कर्म करना है जिससे यह संसार ऊँचा बने। (चौथा पुष्प २८-७-६३ ई.)

विगत जन्मों की स्मृति

जब अर्जुन ने यह कहा कि महाराज! आपने जो यह कहा कि "सूर्या अग्रते अवभ्राकृति" कि सूर्य और इक्ष्वाकु को मैंने यह ज्ञान दिया, तो प्रभु! सूर्य तो परम्परागत का है और इक्ष्वाकु को बहुत

समय हो गया और आपका जन्म तो हमें ऊर्ध्वा प्रतीत होता है। उस समय भगवान् कृष्णा ने एक ही वाक्य कण्ठ किया था कि हे अर्जुन! मैं उन जन्मों को जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता। (बारहवां पुष्प ३-९-६९)

विराट स्वरूप

भगवान कृष्णा और अर्जुन दोनों का सम्वाद हो रहा था..''आत्मा का जो शक है, आत्मा का जो प्रकाश है उससे दूसरों को प्रकाशित होने का नाम विराट स्वरूप है।'' वही अर्जुन को दिखाया था। क्योंकि ऋषियों का ऐसा वचन है कि ब्रह्माण्ड में जो गति हो रही है वह शरीर में भी गति हो रही है। शरीर में अग्नि है, पंचमहाभूत हैं और पंचमहाभूतों में यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है, यह ब्रह्माण्ड अपनी-अपनी आभाओं में आमन्त्रित हो रहा है। इसी प्रकार अग्नि की आत्मा इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा स्थिर किए रहता है। मानव का जो शरीर है यह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है, इसका आत्मा स्थिर किए रहता है। जैसे आत्मा इन पंचमहाभूतों को स्थिर करता है। इनको दृष्टिपात करने का नाम ही विराट स्वरूप माना गया है।

जब अर्जुन को अज्ञान छा गया तो कृष्णा ने कहा कि ''मैं अग्नि हूँ, मैं ही मरुत हूँ।'' नाना प्रकार से 'मैं' का प्रतिपादन भगवान कृष्णा ने किया, इसका मूल कारण यह था कि जब गुरु-शिष्य में शिष्य को अज्ञान छा जाता है तो गुरु कहता है कि हे शिष्य! तुझे अज्ञानता छा गई है। तू अपने को मेरे में दृष्टिपात कर। इस संसार को मेरे में दृष्टिपात कर। तेरा अज्ञान समाप्त हो जाएगा। क्योंकि ब्रह्माण्ड और

पिण्ड की कल्पना से जब ब्रह्माण्ड को पिण्ड में दृष्टिपात करता है तो उसकी निष्ठा हो जाती है। जब सर्वत्र में दृष्टिपात करता है तो उसका अज्ञान समाप्त हो जाता है। (सत्ताईसवां पुष्प १७-५-७५ ई.)

भगवान कृष्णा को परमात्मा कहना असंगत है

महाराजा कृष्णा महान् परमयोगी थे जिन्होंने प्रभु की महत्ता को जाना था। किन्तु आज के मानव ने उन्हें भगवान कहकर उनके महत्त्व को समाप्त कर दिया। भगवान शब्द का प्रयोग यदि आदर के रूप में किया जाए तो उचित भी है। किन्तु परमात्मा नहीं माना जा सकता। महाभारत में भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य आदि को छल व नीति से मरवा दिया। यह परमात्मा का कराया युद्ध कैसे हो सकता है? वास्तव में महाराजा कृष्णा इतने परम महान् थे, उस अन्धकार में, उस वैज्ञानिक संग्राम को कराने में इतने पूर्ण थे कि जैसा समय होता वैसा वह धर्म-नीति के अनुकूल करते, यह उनकी नीति थी। यदि उस काल में कृष्णा न होते तो यह संसार न होता। क्योंकि उस समय ऐसे यन्त्र बन चुके थे जिनके प्रहार से यह सारा संसार समाप्त हो जाता। कृष्णा ने उस वैज्ञानिक रेखा को जाना था जिससे उन परमाणुओं का प्रभाव बाहर न जा सके।

महाराजा कृष्णा के सोलह हजार रानियाँ थीं। वह शिशुपाल से युद्ध करके रुक्मिणी को ले आए थे। उनके परिवार का कोई सदस्य इस कार्य से सहमत नहीं था। यह महत्ता तो ठीक इसी प्रकार की है जैसे यवन युवतियों को ले जाते थे, क्या यह परमात्मा की महत्ता है। (पांचवा पुष्प १९-८-६२ ई.)

महाराजा कृष्ण को भगवान के रूप में मान लेने से या पूर्ण ब्रह्म मान लेने से उनकी महत्ता में विच्छेद आ जाता है। क्योंकि परमात्मा का नियम यह नहीं कहता। यदि परमात्मा स्वयं ही अपने नियमों को तोड़ने लगे तो उसकी महत्ता ही नष्ट हो जाती है। परमात्मा को जन्म धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि जिस वस्तु का निर्माण वह निराकार होते हुए कर सकता है, उसका विनाश भी उसी स्थिति में कर सकता है। वह सर्वशक्तिमान है। यदि भगवान कृष्ण वृक्षों से मनुष्य को उत्पन्न करने लगते तो मनावोत्पत्ति को माता-पिता से कराने की क्या आवश्यकता थी।

महाराजा कृष्ण योगेश्वर थे, महान तथा विचित्र थे। अपने समय में बहुत बड़े बुद्धिमान थे तथा वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनका आत्मा इतना प्रबल था कि दूसरों का आत्मा उनके आत्मा से प्रभावित होकर उनके आदेशों पर चलने लगता था। वे विराट रूप दिखाना जानते थे। योगी इस पंचभौतिक शरीर में रहते हुए विराट रूप दिखा सकते हैं, इससे दर्शक चकित हो जाता है। उसकी चंचल मानसिक प्रवृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। दर्शक का अज्ञान समाप्त हो जाता है। उन्होंने अर्जुन से कहा था..हे अर्जुन! अपने जीवन की योजना मेरे अर्पण कर दे तब तुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी। इस प्रकार निष्काम वृत्ति से काम करने का उपदेश दिया। (तीसरा पुष्प १७-७-६३ ई.)

अवतार यह नहीं होता कि परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके आ जाए। बल्कि अवतार उसे कहते हैं जो परमात्मा के निकट जाने वाली आत्मा हो। लोक-कल्याण के लिए जन्म लेती हो, उसे

अवतरण कहते हैं। यही अर्थ स्वीकार करना चाहिए। (छठा पुष्प २५-७-६६ ई.)

महाभारत का नियंता कृष्ण

महाभारत का इतना विशाल संग्राम केवल महाराजा कृष्ण का ही कर्त्तव्य था। जैसी राजनीति देखी, जैसा समय देखा उसके अनुकूल व्यवहार किया। यह केवल उन्हीं की योग्यता थी। महाभारत के काल में महाराजा विराट के यहाँ एक ऐसा यन्त्र था कि जिसके एक ही प्रहार से नौ अक्षौहिणी सेना समाप्त करके वापिस उनके पास आ जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र थे जिनके प्रहार से पृथ्वी में विशाल खड्ड हो जाते थे। बड़े-बड़े जलाशयों को सुखाकर भूमि में बदल देते थे। जहाँ भौतिक विज्ञान के ऐसे-ऐसे यन्त्र का निर्माण कर एक-दूसरे को नष्ट करने की योजना बनाई जा रही थी वहाँ महाराजा कृष्ण ही ऐसे योगी थे जिन्होंने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु जब कुछ न हुआ तो तब महाभारत का युद्ध कराया। यह कितना विशाल संग्राम था कि आज मानव चकित होता चला जा रहा हे। इस संग्राम में सभी बुद्धिमान व वैज्ञानिक समाप्त हो गए। जैसा मानव का समय होता है उसी के अनुकूल वातावरण बन जाता है। यह मानव के आँगन में आने वाला विषय नहीं, यह तो केवल परमात्मा की महत्ता है, जिसके आदेश से यह कार्य चल रहा है। (तीसरा पुष्प प्र० कथा)

आदित्य ब्रह्मचारी मृत्युञ्जय भीष्म पितामह

द्वापर में महाराजा गंगेतुराज की गंगोत्री नामक सुन्दर कन्या थी।

उसका विवाह राजा शान्तनु के साथ हुआ था, वे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। राजा शान्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न हुए, सबके सब समाप्त हो गए। महाराजा शान्तनु को बड़ी चिन्ता हुई। कोई उनके राष्ट्र को सम्भालने वाला न रहा। कुछ काल के पश्चात् बड़ा सुन्दर आठवां बालक उत्पन्न हुआ। बाल्यवस्था में ब्राह्मणों ने उसका नाम गंगशील नियुक्त किया। गंगशील बाल्यवस्था में ही बड़ा तेजस्वी तथा बड़ा चतुर था। राजा शान्तनु के कुल-पुरोहित तथा राष्ट्र-पुरोहित महर्षि पारा मुनि के गृह पर मुनि से शिक्षा पाने लगा। बालक की तीव्र बुद्धि तथा शील से बड़े प्रसन्न हुए। पारा मुनि गंगशील को कौडिल्य ब्रह्मचारी कहने लगे, यह नाम उन्होंने इसलिए रखा था कि वे आत्मा के विषय में अत्याधिक परिश्रम किया करते थे, ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन किया करते थे। कुछ समय के पश्चात् गंगोत्री माता का स्वर्गवास होने लगा। मृत्यु समय राजा शान्तनु और कौडिल्य ब्रह्मचारी उपस्थित थे। माता ने पुत्र से कहा कि इस समय अन्तिम सांस चल रहे हैं, मेरा जीवन समाप्त होने वाला है, परलोक को जाने वाली हूँ। मेरा आदेश है कि जब तक तू जीवित रहे अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना जिससे तुझे मृत्युकाल छू भी न सके। अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बनना। तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है। मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा, जब तू महान् ब्रह्मचारी बन करके अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनाएगा। माता गंगोत्री ने अपने एकमात्र पुत्र भीष्म से कहा कि तू ब्रह्मचर्य से हीन होकर संसार का कीड़ा न बनना। तू राष्ट्र के सूर्य के

समान तेजस्वी बन। जैसे सूर्य प्रातःकाल उदय होकर तीनों लोकों को तपायमान करता है, महान् रात्रि के अन्धकार को समाप्त करके अपने दिव्य प्रकाश से मानव को उच्च बना देता है, उसी प्रकार से पुत्र तू भी ऐसा महान् तेजस्वी बन। यदि तूने मेरे गर्भ से जन्मधारण किया है, तू भी ऐसा महान् बन, जिससे अपना यह सारा राष्ट्र उच्च बने, महान् बने। राष्ट्र तेरा नहीं हैं, यह परमात्मा का दिया हुआ है। पुत्र! यदि तूने इसी शरीर को और इस राष्ट्र को दूषित किया तो तेरा जीवन न होने के तुल्य है।

उसने अपने पतिदेव से कहा, हे पतिदेव! मेरा मृत्युकाल आ रहा है, मेरे कुछ ही सांस रहे हैं, मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ। हे भगवन्! आप मेरे स्वामी हैं, यह मेरा बालक है। परमात्मा की दया से न जाने कहाँ-कहाँ और कैसे हम तीनों का सन्म्बन्ध बन गया है, यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए, मैं आपकी धर्मपत्नी बन गयी। हम तीनों के मेल का सन्मत होने का इतना ही काल परमात्मा ने दिया था। अब मुझे आज्ञा दो, मैं परलोक जा रही हूँ। अच्छा भगवन्! मेरा एक आदेश है। वास्तव में पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे, पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं। उसने कहा, हे पतिदेव! यदि आपको संसार की इच्छा जागृत हो जाए तो आप द्वितीय संस्कार करा लेना। आपने संस्कार न कराया और कुविचार आपके बन गए, आपने राष्ट्र के किसी भी व्यक्ति की देवकन्या को, किसी भी मधुमति को, किसी प्रकार से भ्रष्ट कर दिया तो भगवन्! यह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। हे

पति! आप भ्रष्ट न हो जाना। भगवन्! यदि आप अपने मार्ग से भ्रष्ट हुए तो इस संसार की मृत्यु हो जाएगी, राष्ट्र समाप्त हो जाएगा। हे विधाता! आपको परमात्मा ने पूर्व जन्म के उच्चकर्मों के आधार पर इतने बड़े साम्राज्य का राजा बनाया हुआ है। आपको राजा के पद पर चुना है तो आप भी राष्ट्र को न भ्रष्ट करना। यदि आपके भ्रष्टाचार के कारण राष्ट्र में भ्रष्टाचार फैल गया तो यह आपका राष्ट्र नहीं रहेगा। आपका राष्ट्र दूषित हो जाएगा। भगवन्! मृत्यु समय मेरा यही आदेश है। आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे अनुरोध को अवश्य स्वीकार करें। भगवन्! परमात्मा की कृपा से जनता ने आपके चरित्र को स्वच्छ समझकर आपको राजा के पद के लिए चुना। आपको राजाधिराज बनाया। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहें तो जैसा परमात्मा ने स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है वैसे ही परमात्मा के समक्ष अर्पित कर देना। हे भगवन्! यदि आपने अपने रहते हुए अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया, स्वयं चरित्र से दूषित हो गए तो आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे। माता गंगोत्री ने ऐसा आदेश देकर नमस्कार करके अपने प्राणों को त्याग दिया।

राजा शान्तनु ने बड़े आनन्दपूर्वक नाना उत्तम सामग्री संचित करके नाना ब्राह्मणों के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञ कुण्ड में धर्म पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार वेद मन्त्रों के पाठ करके किया। राजा शान्तनु बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।

उस महान् ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर आदेश माता से पाया। वह

कौडिल्य ब्रह्मचारी आगे चलकर भीष्म नाम से पुकारे गए। आगे वही भीष्म पितामह बन गए। कैसा सुन्दर वह ब्रह्मचारी था। जिस समय महाभारत संग्राम में अर्जुन जो शस्त्रों का प्रहार उनके ऊपर करते थे तो शस्त्र भी दूर भागते थे। उनकी त्वचा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। उस समय अर्जुन ने एक वाक्य कहा था हे भगवन्! हे पितामह! आपने कौन सा पदार्थ पाया है कि जिससे मेरे अस्त्र -शस्त्र भी आप पर असर नहीं करते। उस समय भीष्म पितामह ने कहा था कि हे पुत्र! हे बालक मैंने माता के आदेश द्वारा उस अवस्था को पाया है जिससे मैं मृत्यु विजयी बन गया हूँ। मैं चाहूँगा तो मेरी मृत्यु होगी अन्यथा मेरी मृत्यु कदापि न होगी। (प्रथम पुष्प २-४-६२ ई.)

वह कौडिल्य ब्रह्मचारी जिसको गंगशील कहते थे, मछोदरी के समक्ष जा पहुँचे। उसने कहा कि भगवन्! आप अपनी कन्या को किसी को अर्पण कर दीजिए। मेरे पिता तुम्हारी कन्या को विवाहित करना चाहते हैं। उस समय उन्होंने कहा कि कौडिल्य ब्रह्मचारी! तुम्हारे पिता संस्कार तो करा सकते हैं परन्तु मेरी कन्या की जो सन्तान होगी वह राज्य की अधिकारी नहीं होगी। इसलिए हम इस कन्या को कदापि नहीं देंगे। उस समय गंगशील ने कहा कि महाराज! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं संस्कार नहीं कराऊँगा और राज्य को कदापि नहीं भोगूंगा। उस समय उसने कहा कि महाराज! आप नहीं भोगेंगे तो आपकी जो सन्तान उत्पन्न होगी। ब्रह्मचारी ने कहा महाराज! आप भी मेरे पिता हैं, वह भी मेरे पिता हैं। मैं सर्वांग जीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। संस्कार नहीं कराऊँगा। उस समय कौडिल्य

ब्रह्मचारी ने यह नियम बना लिया, यह प्रतिज्ञा कर ली कि संस्कार नहीं कराऊँगा और न राज्य का अधिकारी बनूँगा। जो तुम्हारी कन्या की सन्तान होगी वही राज्य की स्वामी बनेगी। तब मछोदरी ने अपनी कन्या का संस्कार महाराजा शान्तनु के साथ करा। वह कन्या बड़ी सुन्दर और महान् थी। कुछ समय पश्चात् उस मछोदरी के दो बालक उत्पन्न हुए जो चित्रांगद तथा विचित्र वीर्य थे। उसके पश्चात् महाराजा शान्तनु की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय राजा शान्तनु ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाकर कहा कि पुत्रों! जो तुमने प्रतिज्ञा की उसको भंग न करना। अब मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं। जैसे तुम्हारी माता गंगोत्री ने कहा था जीवन भर ब्रह्मचारी रहना, मेरा गर्भाशय तभी ऊँचा बनेगा। मेरा राष्ट्र भी तभी उच्च बनेगा तो मेरी भी इच्छा है सब पुत्रों को शिक्षा देकर राजा ने मछोदरी से कहा कि हे पत्नी! इस समय मेरा मृत्यु काल है और मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। यह तेरा राष्ट्र है और ये तेरे पुत्र हैं, इस राष्ट्र में जितनी प्रजा है, वह सब तेरे पुत्र समान है यह उच्चारण करके राजा शान्तनु मृत्यु को प्राप्त हुए। बड़े आनन्द पूर्वक उनका अन्त्येष्टि संस्कार हुआ।

उस कौडिल्य ब्रह्मचारी ने चित्रांगद तथा विचित्र वीर्य दोनों को राष्ट्र का स्वामी बना दिया और वे राज्य का पालन करने लगे। उसके पश्चात् एक ऐसा काल आया जब उस मधुस्थल में यह कौडिल्य ब्रह्मचारी माता मछोदरी को नित्यप्रति षास्त्र शिक्षा दिया करते थे, तो उस समय उन दोनों पुत्रों के मन में पाप आया कि यह कौडिल्य ब्रह्मचारी इसके समक्ष रहा करता है। जब उनके मन में यह पाप

आया तो एक रात्रि में गुप्त स्थल में विराजमान होकर उस षास्त्र वार्ताओं को सुनने लगे। तो उस रात्रि के समय ऐसा हुआ कि माता मछोदरी उस वार्ता को सुनते-सुनते निद्रा में लीन हो गयी और निद्रा में उनका पग आसन से नीचे आ गया। उस बालक ब्रह्मचारी ने सोचा कि ऐसे माता को रात भर बड़ा कष्ट रहेगा और यदि तुमने भुजाओं से उठाकर ठीक किया तो वह बड़ा भारी पाप होगा। तो सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। तब ब्रह्मचारी ने अपने मस्तिष्क से माता की भुजा को खींचकर यथास्थान किया। दोनों पुत्र पुलकित हो गए और उन्होंने कहा हम तो बड़े पापी हैं, रात समाप्त होने पर कौडिल्य ब्रह्मचारी के चरणों से लिपट गए और पूछा भगवन्! जिससे मन का पाप हो जाए उसे क्या करना चाहिए। कौडिल्य ब्रह्मचारी ने कहा यह वेदोक्त वाणी है। यदि मानव से मनसा पाप हो जाए तो उसे अपने को अग्नि में दाह करना चाहिए। उसमें दाह कर अपने को समाप्त कर दे। तो उस समय उन्होंने प्रकट किया कि हमसे मनसा पाप हो गया है और हम अग्नि में प्रविष्ट होने जा रहे हैं। उस समय कौडिल्य ब्रह्मचारी ने उपदेश दिया कि अरे राष्ट्र पुत्रो! यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं। अग्नि भी दो प्रकार की होती है एक भौतिक और दूसरी ज्ञानाग्नि। तुम अग्नि में क्यों प्रविष्ट हो रहे हो। अपने ज्ञान रूपी अग्नि में मानस पाप को धारण करके भस्म कर दो। जब यह ज्ञानाग्नि तुम्हारे समक्ष आएगी तो उसको स्पर्श करते ही और ज्ञानाग्नि में डुबकी लगाने पर ही देखोगे कि तुम पवित्र हो गए हो। मनसा पाप उसमें भस्म होकर समाप्त हो जाएगा। तो बुद्धि द्वारा तुम उस ज्ञानाग्नि

को धारण करो। उन दोनों ने ब्रह्मचारी की वार्ता को स्वीकार कर लिया। राष्ट्र का पालन करने लगे। यह विचित्र बालक है।

कुछ समय पश्चात् उनकी धर्म पत्नी से दो बालक उत्पन्न हुए। एक को पाण्डु कहते थे दूसरे को धृतराष्ट्र कहते थे। धृतराष्ट्र जन्मान्ध था। विचित्र वीर्य युद्ध में समाप्त हो गए।

महाभारत का संग्राम हो रहा है। संग्राम होते हुए जब अर्जुन के तीखे वाणों से, अस्त्रों-शस्त्रों से पिता भीष्म मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हैं। वह शैय्या किसकी है। वाणों की शैय्या पर विद्यमान हैं। उसका मस्तिष्क नीचे को हो गया उस समय पितामह भीष्म कहते हैं संग्राम में ही कि अरे! कोई है कि जो मेरे ब्रह्मपद् को ऊँचा बना दे? इस मस्तिष्क को ब्रह्मपद् कहते हैं। इस शरीर में एक ब्रह्मपद् है, जहाँ मनुष्य को ज्ञान की उत्पत्ति होती है। उसे ब्रह्मपद् कहा जाता है, जिसे मस्तिष्क कहा जाता है। कण्ठ से ऊपरले भाग को ब्रह्मपद् कहा जाता है। वह ब्रह्मपद् नीचे को हो गया था। घोषणा की थी कि कौन पुत्र है, मेरे यहाँ जो ब्रह्मपद् को ऊँचा बना दे। दुर्योधन नाना अस्त्रों-शस्त्रों को त्यागकर वहाँ वस्त्रों के ऊँचे-ऊँचे व्रत (तकिए) ले करके आए। उन्होंने कहा अरे दुर्योधन! यह मेरा तकिया नहीं है। यह सिर के नीचे रहने वाला आसन नहीं है। उन्होंने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन! मेरे ब्रह्मपद् को ऊँचा करो। तो उन्होंने अपने गांडीव धनुष को ले करके अपने तीखे वाण से उनके मस्तिष्क के पिछले भाग को छेदन करके ब्रह्मपद् ऊँचा बना दिया। वाणों की शैय्या पर विराजमान है, वही उनका बिछौना है, वही आसन बना

हुआ है।

माता कुन्ती

राजा कुन्तेश्वर की कन्या कुन्ती थी। वह कन्या महान् सुशील थी राजा को इच्छा हुई कि इसको इस प्रकार शिक्षा दी जाए जिससे यह ज्ञानवान और सुयोग्य हो क्योंकि बिना ज्ञान कोई सुयोग्य नहीं बन सकता। तब राजा ने खोज की और भृगु ऋषि के पास पहुँचे और पूछा वृद्ध महान् आत्माओं से कोई शिक्षा पा सकते हैं। उस समय में, राष्ट्र में महान् वन था। उस भयंकर वन में वरुण नाम के ब्रह्मचारी रहा करते थे परन्तु इतनी अवस्था होने से पर्जन्य नाम के ब्रह्मचारी आदित्य नाम से कहे जाते थे। उस समय उनकी आयु २८४ वर्ष की थी। राजा ने सोचा मेरी कन्या यहाँ हर प्रकार की शिक्षा पा सकती है। उसने ऋषि से निवेदन किया और अपनी इच्छा को बताया कि मैं अपनी कन्या को आपके आश्रम में नियुक्त करना चाहता हूँ। ऋषि ने कहा कि हमें स्वीकार है। वह कन्या आश्रम में रहने लगी। ऋषि ने बाल्यवस्था में व्याकरण का पूर्ण ज्ञान दिया और बाद में सब विद्याओं का बोध कराया। कुछ ही काल में वह कन्या विद्या से सम्पन्न हो गई और फिर यौवन को प्राप्त हुई और बहुत तेजस्वी ब्रह्मचारिणी सब विद्याओं से पारंगत हो गई।

महादानी कर्ण

उस समय कुछ ऐसा कारण हुआ कि वहाँ श्वेत मुनि आ पहुँचे। श्वेत नाम के ब्रह्मचारी ने सोचा वह उस समय पुत्र थे। महान् तेजस्वी थे। परन्तु यह माया मानव को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है और कहाँ

तक इसको तुच्छ बना देती है। उस महान् ब्रह्मचारी ने उस महर्षि के आश्रम में जब उस युवा सुशील कन्या को देखा तो उनके मन में तीव्र गति पैदा हुई और उसके मन की जो आकृति थी उस अवस्था में जब उस कन्या ने उस तेजस्वी ब्रह्मचारी बालक को देखा तो उस काल में ऋतुमती थी उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा और पुनः जब कुछ काल पश्चात् कन्या को अनुभव हुआ कि उनसे ऋषि भूमि में कितना बड़ा पाप हुआ है। उस समय उसने ऐसा नियम बनाया कि १२ वर्ष तक कोई अन्न का भक्षण नहीं करूँगा। तब यह पाप शान्त होगा। क्योंकि यह महान् पाप जो मेरे अन्तःकरण में विराजमान हो गया है। आगे जन्मों में न जाने किन-किन योनियों में प्रविष्ट होना पड़ेगा। इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि मुझे उपवास करना चाहिए और पर्वतों में भ्रमण करना चाहिए। वास्तव में उस पाप की उन्होंने जो अन्तःकरण द्वारा हो गया है, क्षमा माँग ली और पर्वतों आदि का भ्रमण उपवास रखकर आरम्भ कर दिया।

अब उस ब्रह्मचारिणी को ज्ञात हुआ कि तुमने पाप किया है तो सोचने लगी कि क्या करना चाहिए। ज्ञान के कारण मन से पाप निकल गया था। इसीलिए अपने गुरु से सब बताया और उनसे पूछा भगवन्! अब मैं क्या करूँ? गुरु ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ? अब ऐसा करो कि जब बालक उत्पन्न हो तो उसको ऐसी शिक्षा दो कि वह योग्य बन सके। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। उस कन्या ने गुरु आदेशानुसार जब गर्भ में बालक था तभी से सूर्य का जाप आरम्भ कर दिया और याचना आरम्भ कर दी। बालक महान्, बलवान,

योग्य, विद्वान हो उस कन्या के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई जैसे सूर्य अपने ताप से इन तीनों लोकों में उज्ज्वल है वैसा ही यह बालक हो। उस कन्या के कुछ समय पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। उसने गुरु जी को बताया कि अब जब पिता के गृह में जाऊँगी तो बड़ा पाप होगा अब मुझे क्या करना चाहिए। गुरु जी ने कहा तो पुत्री! तुम कुशा का आसन बनाओ उस पर पुत्र को प्रविष्ट करके गंगा में तिलांजली दे दो। उस समय उस देवी ने उस बालक को भीतर आसन लगा, प्रविष्ट करा गंगा में तिलांजली दे दी और कहा, हे गंगा! यह बालक तेरा है मेरा नहीं। वह बालक बहते-बहते उसी श्वेत मुनि के पास, जो गंगा के किनारे था देखा गया। उनके शिष्य मण्डल ने कुशा से उस बालक को निकाल कर अपने गुरु जो श्वेत नाम के थे उनके पास ले गए। उसी ब्रह्मचारी द्वारा उस बालक की शिक्षा हुई।

जब कुन्ती ने गुरु की आज्ञा के अनुसार कलंक को गंगा में त्याग दिया, तो गुरु ने आदेश दिया कि अब तुम एक वर्ष तक कोई अन्न भक्षण के रहित भगवान् से प्रार्थना करो जिससे इस पाप से क्षमा पाओगी। उस देवी ने एक वर्ष पर्यन्त वनस्पति आदि का आहार किया और अन्न का त्याग कर गायत्री का जाप तथा वादन किया उससे उसका पाप क्षमा हो गया। (प्रथम पुष्प ४-४-६२ ई.)

महाराजा युधिष्ठिर

मानव को उन्नति और अवनति दी गई है। युधिष्ठिर लाक्षागृह में से बच गए और अपने कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहे। उनका भाग्य कर्म उच्च

था कि महाभारत के संग्राम में विजयी हुए। आज महाराज युधिष्ठिर धर्म पुत्र के नाम से कहे जाते हैं। यह उनके महान् उच्चकर्म की महत्ता थी। (प्रथम पुष्प ६-४-६२ ई.)

माद्री स्वयंवर

महाराजा पाण्डु की महारानी कुन्ती के तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं। उनको ज्ञान से ऐसी शिक्षा दी कि वे महान् बने।

एक काल था जब मदनि राजा के यहाँ मधु कन्या थी। उसका स्वयंवर हुआ। राजाओं को निमन्त्रण भेजे गए कि मेरी कन्या का स्वयंवर है। उस महान् राजा के यहाँ बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने एक मछली को बनाया और उसको ऐसे यन्त्र में रखा जिसमें कुछ ऐसी महत्ता थी कि एक क्षण भर के समय में मानव ११ पलक मार सकता है उतने में वह मछली चक्र में १०८ परिक्रमा करती। सब राजाओं को निमन्त्रण मिला और वहाँ एकत्रित हुए। महाराज पाण्डु को भी निमंत्रण मिला। उसको लेकर महाराजा पाण्डु भी महाराज गंगशील के समक्ष उपस्थित हुए। निवेदन किया कि मैं महाराज के अनुकूल निमन्त्रण पर जा रहा हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊँ अन्यथा नहीं। महाराज गंगशील ने कहा..वहाँ जाकर क्या करोगे? वहाँ तो कन्या स्वयंवर है और तुम पत्नीवान हो। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम जाओ। वह कन्या तुमको स्वयंवर में वरण कर संस्कार कराएगी सो मेरी तो इच्छा नहीं कि तुम वहाँ जाओ। महाराज पाण्डु ने कहा कि वह संस्कार न करवाऊँ, परन्तु जो निमन्त्रण आया है उस पर पहुँचना हमारा कर्त्तव्य है।

महाराज पाण्डु वहाँ पहुँचे जहाँ नाना राजा-महाराजा विराजमान थे। उनका बड़ा सत्कार हुआ। तब समय पर सबने मछली भेदन का प्रयत्न किया। परन्तु कोई सफल न हुआ, तो महाराजा पाण्डु को कहा गया कि आप भेदन करें। महाराजा पाण्डु ने कहा कि महाराज! मेरा तो संस्कार हो चुका है और यदि मैंने मछली का भेदन कर दिया तो इस कन्या से संस्कार करना पड़ेगा, मेरा यह कर्त्तव्य नहीं। वेद शास्त्रों के विरुद्ध है। मेरे पिता की आज्ञा है मैं कोई कार्य वेद शास्त्रों के विरुद्ध नहीं करूंगा। तब सब राजाओं ने महाराजा से निवेदन किया तो महाराजा पाण्डु ने अपने अस्त्रों-शस्त्रों को लेकर मछली को छेदन कर दिया। छेदन होने पर महाराजा मदनि ने बड़ी नम्रता से कहा कि महाराज! मेरी कन्या को स्वीकार करें। महाराज पाण्डु ने कहा कि मेरा कर्त्तव्य मछली को छेदन करना था, सो मैंने किया। इस पर राजाओं ने पाण्डव महाराज से कहा कि आपने कर्त्तव्य पालन कर स्वयंवर की प्रतिज्ञा को पूर्ण किया है तो आपको कन्या को स्वीकार करना ही पड़ेगा। तब पाण्डव महाराज को स्वीकार करना ही पड़ा।

तब माता-पिता ने कहा कि हमारा कितना सौभाग्य है कि जिसकी कन्या ब्रह्मचारियों के कुल में जाए और वेद-ज्ञानियों के कुल से हमारी कन्या का संयोग हो, हमारा अहोभाग्य है। तब महाराजा पाण्डु ने बड़े सत्कारपूर्वक उस कन्या को ग्रहण किया। परन्तु मन में सोच रहे थे कि मैं अपनी पत्नी को, पिता को क्या कहूँगा। पत्नी जब पूछेगी कि आपने द्वितीय संस्कार करा लिया है तो क्या उत्तर दूंगा? इस प्रकार सोचते हुए वे कौडिल्य ब्रह्मचारी गंगशील के समक्ष जा पहुँचे

और पूछने पर स्वयंवर का विवरण कहा और कहा कि अब मैं क्या करूँ? तो गंगशील महाराज ने कहा कि यह शास्त्रों के विरुद्ध है पर तुम ऐसा करो कि अपनी पत्नी की तथा सबकी अनुमति लो। यदि तुम्हारी धर्मपत्नी आज्ञा दे तो अवश्य अपने गृह में इस कन्या को प्रविष्ट करो, उसका गृह पृथक् होना चाहिए, यह राष्ट्र का नियम है। पर यदि तुम्हारी धर्मपत्नी चाहे तो गृह में प्रवेश करो और आनन्द लो। उस समय महाराजा रानी के समक्ष पहुँचे। उसने उनको स्मरण दिया और पूछा कि भगवन्! आपका हृदय क्यों दुःखित है? तब उन्होंने कहा कि तुम्हारी अनुमति लेने के लिए उपस्थित हुआ हूँ और संस्कार का सब विवरण कहा तो महारानी कुन्ती ने कहा कि आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं, आप निःसंकोच होओ, यह कहा कि निर्द्वन्द्व होकर उस कन्या को ले आइए, यह तो हमारा अहोभाग्य है, हम दोनों एक माता की पुत्री के समान रहेंगी। उस माता ने आदेश दिया कि मेरे तीन पुत्र है और व्यास महर्षि की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया है और उस गृह में आनन्दपूर्वक प्रवेश किया और कन्या को आदेश दिया कि वेद-शास्त्रों के अनुकूल पुत्र उत्पन्न करना जो सबको सुख पहुंचाने वाला हो। कुछ काल पश्चात् उसके गर्भस्थापन हुआ और नकुल की उत्पत्ति हुई और कुछ समय पश्चात् महाराज पाण्डव मन्त्रियों सहित भ्रमण करते हुए व्यास मुनि के तथा महर्षि उदकेतु मुनि के समक्ष जा पहुँचे। उस समय वह स्वाध्याय कर रहे थे। जब विनाश काल आता है तो बुद्धि का भ्रंश हो जाता हे, 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'। ऐसा कहा जाता है कि उस समय

उन्होंने अपने अस्त्र -शस्त्रों का प्रयोग किया तो वह शस्त्र ऋषि के अन्दर प्रविष्ट हुआ और हृदयस्थल में जा पहुंचा तो उस समय ऋषियों ने अपने वाक्यों में कहा कि अरे पापी राजा! तेरा विनाश हो। उस समय ऋषियों ने अपने वाक्यों में कहा कि अपनी दृष्टि से देख कि तुमने ऋषि को इस प्रकार नष्ट किया है, तुम्हारी अपनी पत्नी तुम्हारी मृत्यु का कारण बन जाएगी।

जब महाराजा पाण्डु को यह पता लगा तो वह सोचने लगे कि मैं पत्नी के द्वार जाऊँगा ही नहीं क्योंकि मृत्यु हो जाएगी। मैंने सर्व-संसार का ऐश्वर्य एवं सुख प्राप्त कर लिया है। पत्नी के समक्ष न जाने का नियम बना लिया। कुछ समय पश्चात् महारानी कुन्ती जो बुद्धिमती थी, सब कुछ जान गयी किन्तु महाराज पाण्डु समय की गति से माद्री के समक्ष जा पहुँचे, उसके गर्भ स्थापन हुआ। महाराज पाण्डु मृत्यु को प्राप्त हो गए। कुछ काल पश्चात् उनका पांचवां पुत्र महारानी माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ, जिसे सहदेव कहते हैं। (पहला पुष्प ६-४-६२ ई.)

राजपुत्रों की शिक्षा

महाभारत काल में भीष्म पितामह के गुरु परशुराम थे, भीष्म ने जब राजकुमारों को शिक्षा देने को कहा तो उसने कहा कि इनमें केवल आठ ब्रह्मचारी शिक्षा देने योग्य हैं, मैं इनको शिक्षा प्रदान कर सकता हूँ। भीष्म ने कहा कि मेरे लिए सब राजकुमार एक तुल्य हैं। परशुराम से कहा कि आप हस्तिनापुर के राष्ट्र को अपना लीजिए। परशुराम ने कहा मुझे राष्ट्र नहीं चाहिए। मैं राष्ट्र को उसी समय

अपना सकता हूँ जब ब्रह्मचारियों को योग्य बना दूँ। जिनको ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं है उनको शिक्षा देने में मेरी अपकीर्ति होगी तथा मेरी महत्ता समाप्त हो जाएगी। अन्त में द्रोण ने द्वेष के कारण इन्हें शिक्षा दी। उसका परिणाम यह हुआ कि ज्ञान-विज्ञान द्वापर काल में समाप्त हो गया। (अठारहवां पुष्प १३-४-७२ ई.)

जब आचार्य कुल में द्रोणाचार्य के द्वारा महाराजा युधिष्ठिर आदि शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, एक समय आचार्य ने यह जानना चाहा कि इनमें कौन सुन्दर है। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि ''हे युधिष्ठिर! जाओ, संसार में तुम अपने से दुर्जन की जानकारी करो। संसार में तुमसे अधिक दुर्जन कौन है?'' महाराजा युधिष्ठर ने संसार में भ्रमण करना आरम्भ किया। उन्होंने अपने राष्ट्र में, दूसरे राष्ट्रों में दृष्टिपात किया। दृष्टिपात करके अपने पूज्य गुरुदेव के समीप आ गए। गुरुदेव से कहा ''भगवन् संसार में मेरे से दुर्जन मुझे कोई प्राप्त नहीं होता। क्योंकि मैं एक ऐसा दुर्जन हूँ कि जिसकी जानकारी मुझे अब तक नहीं हो सकी।'' इसी प्रकार उन्होंने दुर्योधन से कहा कि ''हे दुर्योधन! जाओ पुत्र, तुम संसार में अपने से कोई ऊँचा जान करके आओ। तुमसे संसार में कौन ऊँचा है? कौन बुद्धिमान है?'' उस समय दुर्योधन ने भ्रमण करना आरम्भ किया। वे सर्वत्र राष्ट्रों में भ्रमण करके गुरु के पास आए। गुरु ने कहा, ''बोलो पुत्रवत्!'' उन्होंने कहा 'प्रभु! मेरे से बुद्धिमान मुझे कोई प्रतीत नहीं हुआ।' कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में जो अपने को बुद्धिमान स्वीकार करता है, वह बुद्धिमान वास्तव में नहीं होता। संसार में वह मानव गम्भीर

होता है जिसके द्वारा अपने से दुर्जन संसार में कोई दृष्टिपात नहीं आता। वे व्यक्ति महान् बना करते हैं। जो मानव यह स्वीकार करता है कि मैं बुद्धिमान हूँ; मेरे से ऊँचा कोई जगत् में है ही नहीं, वह मानव अपनी एक प्रक्रिया को भी नहीं जानता क्योंकि 'मैं' का उच्चारण अभिमान पूर्ण होता है उसमें प्रकृति के तत्त्व होते हैं। जितना भी 'मैं' वाद है यह बना ही अभिमान की मात्राओं से है। (तेईसवां पुष्प ४-१०-७१ ई.)

गुरु द्रोण ने अर्जुन से कहा था कि "हे अर्जुन! तुम्हें यह वृक्ष दृष्टिपात आ रहे हैं।

अर्जुन..कदापि नहीं, भगवन्!

द्रोण..मैं दृष्टिपात आ रहा हूँ?

अर्जुन..नहीं, भगवन्!

द्रोण..और क्या दृष्टिपात आ रहा है?

अर्जुन..मुझे तो पक्षी का जो नेत्र है वह दृष्टिपात आ रहा है।

जब मानव अपना एक लक्ष्य बना लेता है और लक्ष्य बना करके उसे वही दृष्टिपात आता है तो वह रजोगुण और तमोगुण को नहीं लेता। वह रजोगुण और तमोगुण में से भी सत्यता को अपने में धारण कर लेता है। जब सत्यता को एकत्रित करता रहता है तो परिणाम यह होता है कि उसे सत्य ही सत्य दृष्टिपात आता है। (सत्ताईसवां पुष्प २-३-७६ ई.)

द्रौपदी महती विदुषी एवम् तपस्विनी

द्रौपदी का जीवन बाल्यकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक भी दिवस

ऐसा नहीं था, जब प्रातःकाल में वह यज्ञ न करती हो। एक भी दिवस ऐसा नहीं था जब वह वेदों का अध्ययन नहीं करती थी। जब पाण्डावों को वन प्राप्त हुआ था उस समय जब तक वे वन में रहे, जैसा वेदों में आया "अवभ्रा गौत्र नमों ब्रह्मचर्यव्रता।" उसके अनुसार वह विदुषी १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करती रही और अर्जुन से भी यह कहा "हे भगवन्! हमारा जीवन ब्रह्मचर्ययुक्त होना चाहिए।" वह सदैव तपस्विनी कहलाती थी। उनका आदर ऋषि-मुनि करते थे। जिसमें तप नहीं होता उसका कोई आदर नहीं करते, कोई महापुरुष उनका आदर नहीं करते। भगवान कृष्णा उसके लिए स्वीकार करते थे कि वह मेरी पूज्या हैं। उन्होंने जीवन में वेद का अध्ययन किया, वेदों के ऊपर उनकी विचारधाराएँ चलती थीं। वे अनुसन्धानवेत्ता थीं, इसीलिए ऋषि लोग महारानी द्रौपदी का स्वागत करते थे। जब भगवान् कृष्णा का उनसे मिलन होता तो वह उनके चरणों को स्पर्श करते थे, क्योंकि यह उनके तप का प्रभाव था। (चौबीसवां पुष्प २८-१०-७३ ई.)

स्वयंवर वर्णन

महाभारत काल में पूर्व ही जब लाक्षागृह का निर्माण हुआ था, तो विदुर की सहायता से पाँचों विधाता वहाँ से जीवित बचकर चले गए। वे भ्रमण करते हुए पांचाल राष्ट्र में जा पहुँचे। वहाँ महाराजा द्रुपद के यहाँ स्वयंवर होने वाला था। उनकी एक कन्या थी। उन्होंने अपने मन में यह संकल्प किया था कि मेरी पुत्री का अर्जुन के द्वारा संस्कार होना चाहिए। उनके अपने गृह में यह चर्चाएँ होती रहती। स्वयंवर की

भावना राजा के हृदय में भगवान् कृष्ण की प्रेरणा से प्रतिष्ठित हुई। भगवान् ने यह कहा कि ''हे राजन्! तुम स्वयंवर करो, तभी तुम्हारी मनोकामना पूरी हो सकती है। ऐसा नहीं हो सकता कि पाण्डव पुत्रों की मृत्यु हो जाए। मेरा हृदय नहीं कहता। जब तुम स्वयंवर करोगे तो हो सकता है कि तुम्हारी इस विशाल सभा में कहीं से पाण्डव-पुत्र भी भ्रमण करते हुए आ जाएँ।'' यह निर्णय दे करके भगवान् कृष्ण ने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजा दुरपद के वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र तैयार किया। वह एक चक्र था, उस चक्र में एक मछली थी। उसमें एक सूक्ष्म सा छिद्र था। उस छिद्र में शस्त्रों से मछली के नेत्र को छेद करना था। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो नेत्रों को छेदन कर सकता है वह मेरी कन्या से संस्कार कर सकता है। यह चक्र एक क्षण समय में ७ हजार ५ सौ बार चक्र पूर्ण करता था। उसमें एक छिद्र था जिसमें से होकर मछली के नेत्र को छेदन करना था।

उस समारोह में जहाँ नाना राजा आए हुए थे वहाँ ये पाँचों पाण्डव भी कुन्ती के सहित आ पधारे। माता कुन्ती से यह कहा गया कि हे माता! हम तो इस स्वयंवर को दृष्टिपात करेंगे। माता ने कहा नहीं, पुत्र! ऐसा न करो। क्योंकि यह महान् कार्य है। राजा-महाराजाओं का कार्य है। तुम्हारे द्वारा न अस्त्र है न शस्त्र है। तुम वहाँ क्या करोगे? अर्जुन ने कहा नहीं माता! आपके लिए हम एक स्थान नियुक्त कर देंगे। उन्होंने माता को एक कुम्भकार के यहाँ ठहरा दिया। कहा जाता है कि जब वे इस सभा में आए तो माता कुन्ती ने

कहा था, हे पुत्रों! संग्राम हो या विवाद हो तुम उसमें भाग न लेना। उस समय अर्जुन बोले माता यह कार्य हमारा है। कैसे तुम वाक्य उच्चारण कर रही हो। मेरा तो यह अभिमान है मेरा तो यह कर्त्तव्य है, मुझे तो यह अधिकार है कि मुझे उस मछली का छेदन करना है। उस समय माता ने कहा, नहीं पुत्र! वे जो तुम्हारे विधाता दुर्योधन आदि हैं उन्हें आघात करने का अवसर प्राप्त न हो, ऐसा सोचो, विचारो, उन्होंने कहा नहीं मातेश्वरी! ऐसा नहीं होगा। माता ने अपने पुत्रों की अन्तरात्मा को समझ यह कहा, हे मेरे पुत्रों! तुम वास्तव में मेरे पुत्र हो। क्षत्रिया जो माता होती है वह पुत्रों के लिए कदापि भी कायरता की वार्त्ता नहीं करती। वे सदैव साहस देती रहती है और वीरता के, मन्तव्य के अपने विचार प्रकट करती रहती है।

माता कुन्ती ने अपने पुत्रों को गर्भाशय में ही बलिष्ठ बनाया था। जिस समय अर्जुन माता के गर्भ में था तो उन्होंने इन्द्र से उपासना की थी, कर्म देवता की उपासना की, वायु की उपासना की। जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर माता के गर्भ में था तो नौ माह तक धर्म का आचरण किया। सत्यवादी रही, सदैव दर्शनों एवं उपनिषदों का अध्ययन करती रहीं। विचार-विनिमय यह कि जब माता इस प्रकार की होती है तो उन्हें संग्रामों में भी कोई भय नहीं होता। वे क्षत्रिया होती हैं। ऊर्ध्वागति में उनका गर्भाशय हर्ष ध्वनि करता रहता है। ऐसा कहा जाता है कि जिस समय माता ने आश्वासन दिया तो भीम और अर्जुन ने यह कहा..माता जो कुछ हम कर पाएंगे वह हमारा विषय है, आपका विषय नहीं है। आप हमें दृष्टिपात करती रहना। जब तुम

ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करा सकती हो और मुझे दैत्य को प्रदान कर सकती हो तो क्या माता हम स्वयंवर में जाकर शान्त हो जाएं, यह कैसे हो सकता है?

यह वार्ता हुई और वे वहाँ से भ्रमण करते हुए स्वयंवर में आ पहुँचे, जहाँ राजा बारी-बारी से मछली का छेदन करने का प्रयास कर रहे थे। कर्ण ने यह विचारा कि मैं इसे छेदन करूँगा। महारानी द्रौपदी ने यह कहा कि हे कर्ण! तुम्हें इसका अधिकार नहीं है। महारानी कन्या की वार्ता श्रवण करने के पश्चात् कर्ण ने कहा कि हे देवी! यह तुम क्या उच्चारण कर रही हो? मुझे क्यों अधिकार नहीं है? उन्होंने कहा कि तुम्हारा जो जन्म है उसका प्रतीत नहीं कि तुम किस प्रकार उत्पन्न हुए हो। इसलिए तुम्हें अधिकार नहीं दूँगी। जब विदुषी ने यह वार्ता प्रकट की तो उन्होंने वहीं अपने अस्त्रों को त्याग दिया और क्रोधित होकर अपने कक्ष में जा विराजे।

जब कोई क्षत्रिय ऐसा न रहा तो महाराजा दुरपद ने नाना वार्ताएँ प्रकट कीं। उस समय भीम ने विधाता धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि अब नहीं रहा जाता कि मैं इस मछली का छेदन न करूँ। अर्जुन ने भी यही शब्द कहा और जब धर्मराज की वार्ता को न स्वीकार करते हुए, उन्होंने तरकश को अपने आँगन में धारण कर लिया जिसे महाराज कर्ण ने सभा में त्याग दिया था उसे ले करके जब मछली को छेदन करने के लिए जल में निहार रहे थे और मछली का चक्र ऊर्ध्वागति में चल रहा था। जब उन्होंने अपने अस्त्र -शस्त्रों का प्रहार किया तो मछली का छेदन हो गया। छेदन हो जाने के पश्चात्

महाराजा दुर्योधन ने यह विचारा कि ये तो पाण्डव हैं। दुर्योधन के दल के साथ उनका संग्राम होने लगा। पाँचों पाण्डवों ने सर्व राजाओं को परास्त कर दिया। परास्त करने के पश्चात् महारानी द्रौपदी को अपनी स्थली पर ले आए जहाँ माता कुन्ती विराजमान थी। माता कुन्ती द्रौपदी को देखकर हर्ष ध्वनि करने लगी। उन्होंने कहा, पुत्र तुमने वही किया जा मेरी इच्छा थी। उन्होंने कहा कि माता! यह तो वास्तव में तुम्हारी इच्छा नहीं थी। परन्तु हमारे जो प्रारब्ध हैं, हमारे जो संस्कार हैं उसे कौन नष्ट कर सकता है।

राजा द्रुपद ने यह जान लिया कि ये पांचों साधु हैं। जो ऋषि रूप में विराजमान हैं। उनके स्थल को उनके वस्त्रों को दृष्टिपात किया गया। प्रातःकाल में पाँचों विधाता आते और महाराजा दुरपद की सभा में विराजमान होते और सायंकाल को चले जाते। परन्तु यह निर्णय करना उनके लिए दुष्कर हो गया कि यह क्या है? मैं उनको जान नहीं पाता। कुछ समय के पश्चात् महाराजा कृष्ण आ पहुँचे। महाराजा कृष्ण ने कहा, तुमने अब तक नहीं जाना। ये वहीं पाँचों पाण्डव पुत्र हैं। इतना उच्चारण करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। महाराजा दुरपद जब उनसे परिचय लने लगे तो उन्होंने कहा मुझे धर्मराज कहते हैं। अर्जुन ने कहा मुझे अर्जुन कहा जाता है। बारी-बारी सबने अपना परिचय दिया। माता कुन्ती को राष्ट्र गृह में प्रविष्ट कराया गया। निमन्त्रण दे करके उनका संस्कार हुआ।

महारानी द्रौपदी का संस्कार अर्जुन के साथ हुआ। परन्तु आजकल पाँचों पाण्डवों की अर्धांगनी भी वही कही जाती है। पाँचों

पतियों का अभिप्राय यह है कि पति उसे कहते हैं जो रक्षा करने वाला हो, वे पांचों ही उसकी रक्षा करते थे। (चौबीसवां पुष्प २७-१०-७३ ई.)

पाँचों पाण्डवों के विवाह संस्कार

धर्मराज युधिष्ठिर का विवाह महाराजा श्वेतकेतु की कन्या से हुआ था। महाराजा अर्जुन के कुछ और भी संस्कार हुए थे। परन्तु वे केवल सन्तान तक ही सीमित रहते थे। जैसे वह पातालपुरी में अस्त्रो-शस्त्रों की विद्या को ग्रहण करने के लिए पहुँचे वहाँ उनका सन्म्बन्ध उलूपी से हुआ। उन्होंने केवल एक सन्तान को जन्म दिया, जिसको वभ्रुवाहन कहा जाता है। महाराजा भीम का हिडम्बा के साथ संस्कार हुआ। देवनाग ऋषि की कन्या के साथ नकुल का विवाह हुआ। अवधूत नाम के राजा की कन्या रोहिणी का संस्कार सहदेव के साथ हुआ। इसी प्रकार पाँचों की अपनी पत्नियाँ थीं। पाँचों अपने-अपने कक्ष में रहते थे। परन्तु जब पाण्डवों को वन प्राप्त हुआ तब द्रौपदी ही उनके साथ में थी। क्योंकि वह जानती थी कि यह मेरी सहायता करते हैं। तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इनके द्वारा तपस्वी बनूँ। ऐसी मुझे तपस्या करनी है। जैसे इनका आपातकाल, मेरा भी आपातकाल होना चाहिए। (चौदहवां पुष्प २७-१०-७३ ई.)

विदुषी द्रौपदी

वह इतनी विदुषी थी, इतनी महती वेद में रमण करने वाली थी उन्होंने महर्षि सामन्तक महाराज से वेदों की शिक्षा का अध्ययन किया था। वह विदुषी सदैव अपनी मानवता में रमण करती रहती

थी। वह सदैव वेदों का गान गाती रहती थी। एक समय मध्य रात्रि का समय था। अर्जुन और द्रौपदी देनों विराजमान थे। उन्होंने एक वेद मन्त्र उच्चारण किया और उच्चारण करते हुए द्रौपदी ने कहा कि प्रभु! आपको प्रतीत है कि यह वेदार्थ क्या कह रहा है। उन्होंने कहा कि देवी! मैं तो नहीं जानता। जब उन्होंने कहा कि यह वेद का मन्त्र कह रहा है कि इस समय वैज्ञानिक बनना चाहिए, अर्जुन ने वार्त्ता को स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि भगवन्! वेदमन्त्र कह रहा है कि हे मानव! तू वैज्ञानिक बनकर अग्नि का अग्न्याधान कर। जब अग्नि का अग्न्याधान करेगा तो वे जो परमाणु अन्तरिक्ष में जाते हैं, नग्न बन करके देवताओं की छवि बनते हैं। उस अन्धकार को जानता हुआ तू संसार में वैज्ञानिक बन। वह सदैव उपदेश करती रहती थी और उसका परिणाम यह हुआ कि उस पत्नी ने, उस विदुषी ने अर्जुन को वैज्ञानिक बना दिया। (चौबीसवां पुष्प २७-१०-७३ ई.)

यज्ञ पर कृष्णा-द्रौपदी संवाद

एक समय भगवान कृष्ण ने भयंकर वनों में यात्रा करते हुए द्रौपदी से कहा कि हे देवी! जहाँ वेदों में तुम रमण करती रहती हो, जहाँ भयंकर वनों में सदैव यागों की प्रतिभा चलती रहती है, तो याग का पात्र क्या है, याग किसे कहते हैं? उस समय द्रौपदी ने कहा कि महाराजा! आप इतने महान् हैं और मुझसे प्रश्न कर रहे हैं, क्या मेरी परीक्षा ले रहे हैं? उन्होंने कहा कि नहीं देवी। मैं तुम्हारी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ मेरा तो प्रश्न है। उस समय द्रौपदी ने कहा कि पात्र का अभिप्राय यह है कि हम हवि देवताओं को प्रदान करते हैं। देवता

हमारे लिए वह वस्तु त्यागते हैं, जिससे अन्न के लिए वृष्टि होती है। याग से पर्जन्य होता है। उस पर्जन्य से वृष्टि होती है, उसी वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है। उसी को हम याग कहते हैं। हमारे जीवन का संचार होता है। हे भगवन्! आप तो सर्व जानते हैं। इसको देवपूजा कहते हैं।

देवपूजा का अभिप्राय यह है कि देवताओं में जो गुण हैं उन्हीं ऐसे गुणों को हमें धारण करना चाहिए। जैसे अग्नि जब तक प्रदीप्त रहती है, तो चाहे कोई मृगराज हो, कोई प्राणी हो, अग्नि के समीप नहीं आ सकता। इसी प्रकार मानव के हृदय में ज्ञान रूपी अग्नि का संचार इतना रहना चाहिए कि जिससे काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ इस मानव के ज्ञान रूपी अग्नि के समीप न आ सकें। जैसे आपो है वह शीतल जल है, सोम कहलाता है। यह जो संसार है यह जल रूप माना गया है। जल से संसार की उत्पत्ति है। माता के गर्भस्थल में बालक का निर्माण होता है। वह भी एक जल रूप माना गया है। वह जल स्वरूप माता के गर्भस्थल में स्थापित हो जाता है। सूर्य की नाना किरणों के द्वारा, चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा शुष्क बनाया जाता है। उन कणों को, उन परमाणुओं को जो विद्यमान हैं उन परमाणुओं का निर्माण किया जाता है। वे परमाणु जहाँ भी हैं वहीं की स्थली पर स्थिर किया जाता है। तो हे प्रभु! वह एक जल स्वरूप है। जैसे जल अपने आप ही स्वतः सुगठित हो जाता है। नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके, नाना प्रकार की धातुओं को ले करके यह माता के गर्भस्थल में हम जैसी बुद्धियों का निर्माण हो जाता है। तो

प्रभु! हमें भी संस्कार में इन्हीं गुणों को धारण करते हुए, संसार में अपनी वाणी के द्वारा अपने ज्ञान के द्वारा, अपनी मानवता के द्वारा संसार को सुगठित करना चाहिए। इसी प्रकार जैसे अन्तरिक्ष है उसमें सर्व वस्तु सर्व परमाणु लय हो जाते हैं। इसी प्रकार मानव के यहाँ सर्व ज्ञान लय होना चाहिए। सर्व शब्दावाली होनी चाहिए, सर्व विज्ञान रहना चाहिए जिससे वह अन्तरिक्ष के विज्ञान को जान सके और उसको सूक्ष्म से साकार रूप में ला सके।

देवताओं के गुणों को अपनाना है जैसे सूर्य प्रकाशमान रहता है, चन्द्रमा सौम्य बन करके रहता है। ऐसे ही मानव को, उन गुणों को धारण करते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए। हवि देने का अभिप्राय यही है कि हम अपने में स्वतः अपनेपन को जानते हुए, इस संसार सागर से पार होते हुए हम नम्र बनें, त्यागी बनें, तपस्वी बनें। क्योंकि त्याग और तपस्या में आनन्द है और उसी आनन्द को प्रत्येक मानव चाहता है। वह आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जब वह अपनी आत्मा को जाने। जब आत्मा में विलय हो करके परमात्मा से इसकी सन्धि हो जाती है तो आत्मा आनन्द में विचरण करने लगता है। (चौबीसवां पुष्प २७-१०-७० ई.)

द्रौपदी चीरहरण

ऋषि-मुनि उत्तरायण और दक्षिणायन की चर्चाएँ किया करते हैं। मैंने यह वाक्य तुम्हें परम्परा में उच्चारण तो किया है, आज पुनः से करता चला जाऊँ। मैं तुम्हें द्वापर के काल में ले जाना चाहता हूँ जिस द्वापर के काल में महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया था और

महाराजा युधिष्ठिर राजस्थली पर विराजमान हो गए और देवव्रत ब्रह्मचारी जो पाण्डवों के महापिता कहलाते थे, कौन पितामह भीष्म, वे वाणों की शैय्या पर विद्यमान हैं और उनका ब्रह्म का उपदेश हो रहा है। युधिष्ठिर द्रौपदी इत्यादि आते और उनका ब्रह्म का उपदेश प्रारम्भ रहता। वह उच्चारण करते रहते कि यह ब्रह्माण्ड क्या है? यह उत्तरायण क्या है? यह ब्रह्म क्या है? संसार से सबसे महान् आश्चर्य जो मानव के जीवन में बना हुआ है, शरीर को त्यागना है। क्योंकि प्रत्येक मानव यह जानता है कि यह शरीर नश्वर है। परन्तु जीवन पर्यन्त इससे बचने का प्रयास करता है। अन्तिम परिणाम यह होता है कि शरीर से विच्छेद हो जाता है। यहाँ विच्छेद क्यों होता है? भीष्म जी कहते हैं कि हे द्रौपदी! जिस वस्तु का निर्माण होता है, उस वस्तु का विच्छेद अनिवार्य है। इसी प्रकार वे उच्चारण कर रहे थे, हे देवी! मानव को अपने जीवन में महान् रहना चाहिए और तटस्थ रहना चाहिए, अपने कर्त्तव्यवाद में इतना पारंगत रहें कि उसके प्राण चले जाएं परन्तु कर्त्तव्य को नहीं त्यागना चाहिए। अपने कर्त्तव्यवाद में ही यह संसार निहित रहता है। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में यह संसार का निर्माण किया परन्तु प्रत्येक लोक-लोकान्तर इसी के नियन्त्रण में कार्य कर रहा है, उसी की आभा में कार्य कर रहा है। कर्त्तव्य करना तो मानव का जन्म सिद्ध अधिकार है। माता के गर्भस्थल में ही परमाणुओं का जो मिलान होता है वही कर्त्तव्यवाद की एक वेदी है। वहीं कर्त्तव्यवाद इस ब्रह्माण्ड में हो रहा है।

जब भीष्म जी इन वाक्यों को प्रकट कर रहे थे तो महारानी

द्रौपदी कहती हैं महाराज! एक वाक्य मैं आपसे जानना चाहती हूँ कि जिस समय महाराजा दुर्योधन ने यह चाहा कि दुःशासन के द्वारा इस देवी को नग्न किया जाए। नग्न करने की भावना जब हमारे कुटुम्ब में आई तो उस सभा में आप भी, द्रोणाचार्य भी, कृपाचार्य आदि-आदि जो महान् बुद्धिमान थे, ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे परन्तु उस सभा में मुझे नग्न कराने की भावना थी। जिस समय मुझे नग्न करने के लिए दुःशासन चलता है तो माता गान्धारी ने उसको कहा, हे दुष्टचर! यह क्या कर रहा है? माता गान्धारी ने जब इस प्रकार का उपदेश दिया। परन्तु दुःशासन का यह साहस नहीं बना। क्योंकि वह जो माता गान्धारी थी उसमें पतिव्रत का एक बल था, प्रभाव था। पतिव्रत का जो धर्म होता है, कर्त्तव्य होता है वह महान है। जिस समय गान्धार राष्ट्र से गान्धारी का संस्कार हुआ था और उन्होंने विचारा कि मेरा पतिदेव संसार को दृष्टिपात नहीं कर सकता, इसलिए माता गान्धारी ने भी अपने नेत्रों पर एक वस्त्र की पट्टी बांधकर पतिव्रत में परिणत कर लिया, जिससे वह संसार को दृष्टिपात न कर सके। वह कैसा पतिव्रत धर्म था, कैसी महता थी, उसका तप इतना महान् था कि उसने अपना एक वाक्य प्रकट किया तो दुःशासन का यह साहस नहीं बन पाया कि द्रौपदी को नग्न किया जाए। परन्तु जब सभा में ले जाया गया तो मैंने भी आपसे यह याचना की थी कि आप हमारे पूज्य हैं, महान् हैं, प्रबल हैं और मुझे नग्न किया जा रहा है, मेरी रक्षा करो। तो उस समय किसी ने रक्षा नहीं की। उस समय आपका ब्रह्मज्ञान और तप कहाँ गया था? मृत्यु के समय हमें कर्त्तव्य का

उपदेश दे रहे हैं।

दुःशासन जब मेरे वस्त्रों से मुझे नग्न करना चाहता था उस समय मैंने एक वाक्य कहा था कि हे दुःशासन! आज जिस माता के गर्भ से तुमने जन्म लिया है वह माता कितनी कर्त्तव्य परायण है, वह कैसी महामना माता है जो दूसरे पुत्रों की रक्षा करती है, जो पतिव्रत कर्त्तव्य में इतनी परायण है कि उसके गर्भ से जन्म लेने वाले इस राष्ट्र को कलंकित कर रहे हैं। जब मैंने इन वाक्यों को कहा तो तुम्हें प्रतीत होगा, मेरा जो वस्त्र था वह मेरे शरीर से दूर नहीं हो सका, उसमें इतना साहस नहीं हुआ कि वह मेरे उस भरी सभा में, वस्त्रों को मेरे अंग से दूर कर सके। क्योंकि मेरा कोई सहायक नहीं था, केवल सहायक हो सकता है, मेरे किसी जन्म का कोई तप हो या इसी जन्म का कोई तप हो। उसका यह साहस नहीं हुआ; विदुषी कन्या को संसार में कोई नग्न कर सकता। मेरा यह दृढ़संकल्प बन गया था, उसी संकल्प के आधार पर राज्यसभा में मेरा एक आसन था। राष्ट्रीयता में सब अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हैं और मैं भरी सभा में एक अबला विद्यमान हूं जहाँ आप जैसे ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हों।

उस समय भीष्म व्याकुल हो गया और कहता है, हे पुत्री! उस समय मैं क्या कर सकता था? द्रौपदी ने कहा, आप सब कुछ कर सकते थे, आप राष्ट्रपिता थे, राष्ट्रपिता क्या नहीं कर सकता? उस समय कहा, पुत्री! मैं क्या करता, मैंने राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण किया था और वह जो राष्ट्रीय अन्न था वह मेरी मनोभावनाओं में ओत-प्रोत

था और उस अन्न को पान करके मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही थी, अर्जुन के तीखे बाणों से मेरे शरीर में रक्त बह रहा था और जितना रक्त बह रहा है उतना विशुद्ध मेरा विचार बनता चला जा रहा है। हे देवी! मेरा विचार विशुद्ध बन गया है, महान् बन गया है, इसलिए मैं ब्रह्म की चर्चा कर रहा हूँ। जिस समय मैंने ब्रह्मज्ञान को पाया था उस समय अपने पिता से प्रतिज्ञा कर ली थी, जब महारानी सत्यवती को वह संस्कार कराने की भावना आई तो उस समय सत्यवती के पिता ने यह कहा था कि भीष्म राष्ट्र का अधिकारी बनेगा। उस समय मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया और पिता के लिए मैंने यह प्रतिज्ञा की कि संसार में सन्तान उत्पन्न नहीं करूंगा, संस्कार नहीं कराऊँगा। उस समय में स्वयं एक सूक्ष्म सी कृषि करता था, उसका अन्न ग्रहण करता था, स्वयं करके पान करता था। बुद्धि का कार्य, योगाभ्यास किया करता था। उस समय मैंने ब्रह्म-ज्ञान को पाया और वही ब्रह्म का ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहा। परन्तु जब मैं राष्ट्रीय अन्न को पान करने लगा तो मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी। पुत्री! अब मेरी बुद्धि सात्विक बन रही है। तुम्हारा जो अन्न है वह पवित्र है, उस अन्न में इतनी महान् शक्ति है कि वह मेरे विचारों को पवित्र बना रही है, हे देवी! मैं अपने शरीर को त्यागूँगा परन्तु उस समय त्यागूँगा जब यह सूर्य उत्तरायण हो जाएगा।

द्रौपदी का यज्ञ

महाराजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों की आज्ञा पाकर पाण्डवों को चौदह वर्ष का वन दे दिया। जब पाण्डव वन में विराजमान थे तो

महाकेन्य ऋषि ने उन्हें एक बटलोई दी जिसमें उनके लिए बड़ा सुन्दर भोजन उत्पन्न होता था। उसके विचित्र होने के कारण उसमें भी उनके स्थान पर नित्यप्रति नौ सौ निन्यानवे व्यक्ति भोजन किया करते थे। महाराजा युधिष्ठिर बड़े आनन्दित होकर भोजन कराया करते थे। भण्डारे का नियम था कि जिस समय द्रौपदी भोजन कर लेती थी उस समय बटलोई में भोजन नहीं रहता था और न उसके पश्चात् भोजन उत्पन्न होता था।

एक समय सभी ऋषि-मण्डल भोजन करके महाराजा दुर्योधन के समक्ष जा पहुँचे। दुर्योधन ने कहा..आओ, विराजो! कैसे आए, कहाँ से विराज रहे हो? उन्होंने कहा कि महाराज! हम महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ से पधार रहे हैं। दुर्योधन ने कहा..क्या, उनके यज्ञ से?

ऋषि मण्डल..हां महाराज! उनके यज्ञ से आ रहे हैं।

दुर्योधन..अरे! उन कंगालों के यहाँ इतना द्रव्य कहाँ से आ गया जो आज मार्ग में भी उनका इस प्रकार यज्ञ चलता है। दुर्योधन के लिए बड़ा आश्चर्यजनक वाक्य बन गया। उस समय दुर्योधन चाहता था कि मैं पांडवों का किसी न किसी प्रकार विनाश कराऊँ, विनाश कराया जाए तो कैसे? प्रतीत होता है कि अस्त्रो-शस्त्रों ने और भीम की गदा ने राजाओं के द्रव्य को इस मार्ग में विराजमान कर दिया है, परन्तु क्या करें? दुर्योधन कुछ कर नहीं सकता था। सांयकाल का समय था, सब ऋषि-मण्डल अपने-अपने स्थान को चले गए। सारी रात दुर्योधन के मन में संकल्प-विकल्प होता रहा और यह सोचता रहा कि पाण्डवों का नाश कराना है। उसी समय रात्रि में दुर्योधन को

यह विचार आया कि कल मैं दुर्वासा ऋषि के द्वार पर जाऊँगा और उनसे प्रार्थना करूंगा कि वह उनके यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर आयें जिससे आगे के लिए उनका यज्ञ न चले।

सारी रात संकल्प-विकल्प में समाप्त हो गई। प्रातःकाल होते ही वह महर्षि दुर्वासा के द्वार पर पहुँचे। उस समय वह सन्ध्या में विराजमान थे, वह परमात्मा का चिन्तन कर रहे थे, परमात्मा का चिन्तन समाप्त होने पर दुर्योधन ने उनके चरणों को स्पर्श किया। महर्षि दुर्वासा ने कहा, कहिए दुर्योधन! किस कारण आना हुआ? उन्होंने कहा कि भगवन् आपसे याचना करने आया हूँ, आज्ञा दें तो उच्चारण करें।

दुर्वासा..उच्चारण करो, जो आप कहोगे मैं उसे अवश्य पूरा करने का प्रयत्न करूँगा।

दुर्योधन ने तीन वचन लेकर कहा कि महाराज! मैं यह चाहता हूँ कि पाण्डवों का जो यज्ञ चलता है उसको किसी न किसी प्रकार नष्ट कराओ।

दुर्वासा ने कहा..कारण?

दुर्योधन..मैं इस कारण को नहीं जानता।

उस समय दुर्वासा सोचते रहे कि मुझे क्या करना चाहिए, सोचते हुए मध्यमकाल आ गया, उसी समय वे मार्ग में आ गए जहाँ ऋषि यज्ञ में से भोजन करके आ रहे थे।

दुर्वासा ने देखा कि झुण्ड का झुण्ड ऋषि मण्डल आ रहा है। उन्होंने उनसे कहा कि अरे! कहाँ से आ रहे हो? उन्होंने

कहा..महाराज युधिष्ठिर के यहाँ यज्ञ चल रहा है, उस यज्ञ में से भोजन पाकर आ रहे हैं।

दुर्वासा..अच्छा! धन्य हो! किस समय तक भोजन मिलता है? उन्होंने कहा कि जिस समय तक सूर्य शिखा पर से अलग हो जाएगा उसी काल में द्रौपदी भोजन कर लेगी, उसके पश्चात् बटलोई में भोजन उत्पन्न नहीं होता।

ऐसा सुना जाता है कि दुर्वासा सोचता रहा कि अब मुझे क्या करना चाहिए? अपना बहुतसा शिष्यमण्डल एकत्रित कर लिया। योगबल से देखते रहे कि अब द्रौपदी ने भोजन कर लिया है और अब भोजन नहीं रहा है। दुर्वासा मुनि अपने शिष्यमण्डल को लेकर उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ मर्यादा वाली द्रौपदी विराजमान थी। उस समय पाण्डव भी भोजन पाकर मार्ग में भ्रमण कर रहे थे वहाँ जाकर दुर्वासा विराजमान हो गए।

महारानी द्रौपदी ने कहा कि भगवन् किस प्रकार आना हुआ? उन्होंने कहा, देवी! मैं आज तुम्हारे दर्शनों के लिए आया हूँ। द्रौपदी..कहिए भगवन्! आप हस्तिनापुर से पधार रहे हैं। हे ऋषि! क्या वह दुर्योधन अब भी नग्न देवकन्याओं को सभा में नचाने का कार्य करता है या नहीं? दुर्वासा लज्जित होकर बोला, नहीं देवी! अब तो नहीं करता।

अच्छा! शान्त होकर द्रौपदी ने कहा..कहिए दुर्वासा! आप भोजन पाएँगे या आप भोजन पाकर आ रहे हैं।

दुर्वासा ने कहा..पुत्री! हम भोजन पाने आए हैं। द्रौपदी मर्यादावादी

थी, उसके हृदय में वार्त्ता आ समाई कि यह पापी मेरे पतियों को शाप देने आया है, उनका यज्ञ नष्ट करने आया है। यह कोई न कोई ऐसी योजना सोचेगा, इससे मैं अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती, उनके लिए कोई अशुद्ध वाक्य नहीं सुनना चाहती हूँ। मुझे अपने प्राणों को शान्त कर देना चाहिए। महारानी द्रौपदी ने दुर्वासा से कहा तो अच्छा आप सरयू में स्नान कर आइए और मैं आपके लिए भोजन नियुक्त कर रही हूँ। उस समय दुर्वासा अपने शिष्यमण्डल को लेकर सरयू में स्नान करने चले गए। द्रौपदी ने एकान्त स्थान में जहाँ महाराजा अर्जुन के अस्त्र -शस्त्र नियुक्त थे, पहुँचकर अपने अस्त्रों को नियुक्त किया और प्रभु से प्रार्थना कर रही थी कि हे विधाता! मैंने बहुत कष्ट पाया है और मैं अपने प्राणों को शान्त करने जा रही हूँ। मैं अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती। आज दुर्वासा ऋषि उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने आ पहुँचे हैं, मैं यह नहीं देखना चाहती। जब यह याचना कर रही थी कि इतने में वहाँ योगीराज कृष्णा आ पहुँचे और द्रौपदी से पूछा..

कृष्णा..भोजाई! आप क्या कर रही हैं?

द्रौपदी..विधाता! मैं अपने प्राण शान्त कर रही हूँ।

कृष्णा..क्यों शान्त कर रही हो?

द्रौपदी..देखा, दुर्वासा मुनि शाप देने आया है। मैं अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती।

कृष्णा-देवी! कैसे आया है?

द्रौपदी-विधाता। भोजन पाने आया है, भोजन है नहीं, न मिलेगा

और वह यहां हमें शाप देकर चला जाएगा।

कृष्ण-देवी! तुम्हारे द्वारा भोजन नहीं तो क्या हमारे द्वारा भी भोजन नहीं है? हमारे द्वारा तो भोजन है। महाराजा कृष्ण ने षोडश कलाओं को जाना था। उन्होंने कहा, ''तुम्हारी बटलोई में कोई भोजन भी है?''

द्रौपदी-(व्याकुल होकर) महाराज! बटलोई में भोजन होता तो दुर्वासा को न दिया जाता। परन्तु उस बटलोई में एक किरका लगा हुआ था। उस एक किरके का उन्होंने आहार किया और मन के संकल्प से दुर्वासा और उनके शिष्य मण्डल सबकी तृप्ति हो गई है। इस वाक्य में शंका नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह मन का एक प्रदीप ऐसा है, जिस मन को जानने से मानव को प्रतीत हो जाता है कि यह मन क्या-क्या कर सकता है। यह विचारना है कि यह मन क्या पदार्थ है जिसके संकल्प से तृप्ति हो जाती है, इसको यौगिक क्रियाओं से, षोडश कलाओं से जाना जाता है।

इतने में पाण्डव मार्ग में से आ पहुँचे और महाराज कृष्ण से बोले कि महाराज! आप कैसे आ पधारे?

कृष्ण-जब कण्ठ किया जाता है तभी आ पहुँचते हैं। वह तो विराजमान हो गए।

महारानी द्रौपदी ने भीम से कहा कि महर्षि दुर्वासा सरयू में स्नान करने गए हैं, उन्हें ले आइए। उनके लिए भोजन नियुक्त हो गया है। महाराजा भीम अपनी गदा सहित सरयू पर जा पहुँचे जहाँ स्नान-ध्यान हो रहा था। महाराजा भीम ने दुर्वासा से कहा कि द्रौपदी आपको

भोजन के लिए कण्ठ कर रही है, भोजन नियुक्त हो गया है। दुर्वासा के मन में विचार आया कि भोजन नियुक्त हो गया है। मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी, आज तू वचनों से मिथ्या बन जाएगा, अब करना क्या है? भोजन नियुक्त हो गया है।

उस काल में दुर्वासा ने कहा, मुझे भोजन की इच्छा नहीं है, मैं भोजन नहीं चाहता। महाराजा भीम ने कहा कि महाराज! या तो आप भोजन करने चलें, नहीं तो मैं आपके ऊपर अपनी गदा से प्रहार करूँगा। अब दुर्वासा मुनि को चिन्ता आ पहुँची कि आज तो मृत्यु भी आई। दुर्वासा को गदा का भय नहीं था, उसके हृदय में जो पाप था उसी का प्रहार था और वह उस काल में एक महान् पाप का प्रदर्शन कर रहा था। दुर्वासा जब उसके मध्यम वर्ग में आए तो कहा, भीम, मुझे इच्छा नहीं है। भीम ने तब भी वही उत्तर दिया कि चलिए, नहीं तो भुजाओं में गदा है, मैं आपके ऊपर प्रहार करूँगा।

महर्षि मार्ग में यही विचार करते चले जा रहे थे कि कौन सा पदार्थ पाना चाहिए। जो पदार्थ मुझे मिलेगा उसे ग्रहण करने से मेरी इच्छा पूर्ण न होगी। इसलिए मुझे वह पदार्थ पा लेना चाहिए जो आज न मिले, जब वह पदार्थ नहीं मिलेगा तो तू यहाँ से अपनी इच्छा पूर्ण करके चले जाना। दुर्वासा के मन में यही संकल्प-विकल्प दौड़ते चले जा रहे थे। उसके लिए द्रौपदी ने बड़ा ऊँचा आसन लगाया और उस पर दुर्वासा मुनि विद्यमान हो गए।

अब महारानी द्रौपदी कृष्णा के द्वार जा पहुँची और योगीराज से कहा, महाराज! दुर्वासा ऋषि तो आ पहुँचे हैं, भोजन कहाँ है?

कृष्ण-पूर्व प्रश्न करके आओ कि वह क्या भोजन करेंगे? दुर्वासा मुनि जो अपने मन में संकल्प किए बैठा था कि आज बिना ऋतु के आम का फल मँगाऊँगा जिसे वह न दे सकेंगे और तू शाप दे करके चला जाएगा, दुर्वासा यह विचार कर रहा था कि द्रौपदी आ पहुँची और कहा, कहिए भगवन्! आप क्या भोजन करेंगे।

दुर्वासा ने कहा-पुत्री! मैंने तो आज एकादशी का व्रत किया है। आज मैं अन्न तो पाऊँगा नहीं मुझे तो आम का फल चाहिए। मैं बिना ऋतु का फल पाया करता हूँ। द्रौपदी व्याकुल हो गयी और कहा कि अरे यह तो हमारे जीवन को नष्ट करने आया है। उसने कृष्ण से कहा महाराज! वह तो हमारे जीवन को नष्ट करने आया है। वह बिना ऋतु का आम का फल चाहता है।

महाराज कृष्ण ने द्रौपदी से कहा-उच्चारण करके आओ, कच्चा आम खाएँगे या पक्का।

अब दुर्वासा मुनि को चिन्ता हुई कि अरे इनके द्वारा तो आम का फल है। यदि तूने कच्चा आम मांग लिया तो इनके द्वारा कच्चा ही न हो और पक्का मांग लिया तो पक्का ही न हो वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया। दुर्वासा ने कहा-पुत्री! मैं तो दोनों प्रकार के ही खाऊँगा।

यह सुनकर द्रौपदी कृष्ण से बोली-महाराज! वह तो दोनों प्रकार के उच्चारण कर रहा है, एक वाक्य और कहा कि यदि मेरे मुख में आ पड़े तो खाऊँगा अन्यथा नहीं।

महाराज कृष्ण सभी योगों को जानते थे। भ्रष्ट योग को भी जानते थे। उन्होंने कहा कि द्रौपदी जाओ, कहो कि मुंँह ऊपर को खोलकर

के विराजमान हो जाएँ।

उस समय द्रौपदी ने दुर्वासा से कहा महाराज! आप ऊपर को मुँह खोलकर विराजमान हो जाएँ। आपके लिए फल आने वाला है। दुर्वासा मुंह खोलकर विराजमान हो गए। महाराजा कृष्ण ने महान् यौगिक क्रियाओं से, योग सिद्धियों से दुर्वासा को चमत्कार दिखाया और क्षण समय में अन्तरिक्ष में आम का एक वृक्ष लग गया। आम का वृक्ष लग जाने के कारण उसी काल में दुर्वासा ने देखा कि आम के वृक्ष पर पुष्प आने लगे। कुछ समय बाद देखा कि फल भी आने लगे कुछ काल में देखा कि कुछ आम कच्चे, कुछ आम पक्के हो गए।

उसी काल में एक वायु चली। अब कच्चे-पक्के दोनों आम झड़ने लगे और दुर्वासा मुनि के जो कच्चा आम लगता था तो वज्र के तुल्य और जो पक्का आम आता था उससे उनके सब वस्त्र भ्रष्ट हो जाते थे। अब दुर्वासा मुनि व्याकुल हो गए और व्याकुल हो करके कहा-पुत्री! मेरे प्राणों का दान दो मैं अपने प्राणों का दान चाहता हूँ। मैं आपका फल नहीं चाहता। दुर्वासा का छोटा सा मुख उन आमों से बहुत बड़ा मुख बन गया। उस समय महारानी द्रौपदी मुग्ध होने लगी और महाराजा कृष्ण से कहा..महाराज वह तो शान्ति को कह रहा है।

महाराज कृष्ण ने कहा..उच्चारण करके आओ कि उन्हें कोई बेल पत्र तो नहीं चाहिए।

द्रौपदी ने दुर्वासा से कहा..महाराज आज आपने एकादशी का उपवास किया है आज आपको बेल पत्र तो नहीं चाहिए।

दुर्वासा मुनि बोले..पुत्री! यदि मेरे शरीर में इस प्रकार बेल पत्रों ने

आक्रमण किया तो प्राणान्त हो जाएगा। मैं तो प्राणों का दान चाहता हूँ। मुझे मेरे प्राणों का दान दीजिए। दुर्वासा मुनि व्याकुल हो गए। द्रौपदी ने कृष्ण से कहा..महाराज! ''शांतम् भवतो अश्वते'' महाराजा कृष्ण ने शान्ति का प्रदर्शन किया।

उसी काल में दुर्वासा मुनि ने कहा..अरे दुर्योधन! तू धर्मात्माओं को सताना चाहता है, नष्ट करना चाहता है। जा तेरा संसार में विनाश हो जाएगा और पाण्डवों की विजय होगी। महाराजा दुर्वासा के इतना कहने से उसके सात जन्मों का पुण्य समाप्त हो गया। सात जन्मों का पुण्य समाप्त होने से दुर्वासा वहाँ से चलकर अपने शिष्यमण्डल में जा पहुँचे।

शिष्यमण्डल ने कहा..कहिए भगवन्! आप आनन्दित तो हैं।

दुर्वासा ने कहा..आनन्द कहाँ? आज मेरे जीवन का सभी कुछ दुर्योधन नाश कर चुका है। आज मैं पाण्डवों को नष्ट करने की योजना बनाकर गया था परन्तु मेरे सात जन्मों का सब कर्म समाप्त हो गया।

शिक्षा

हम जो दूसरों को नष्ट करने की, दूसरों को हानि पहुँचाने की योजना न बनावें अन्यथा मानव के सात जन्मों तक के पुण्य नष्ट हो जाते हैं। दुर्वासा को यह चाहिए था कि वह पाण्डवों को सुख पहुँचाता। जो राजा होते हुए भी मार्ग में आपत्तिकाल में पड़े हुए थे। उन्होंने यह तो सोचा नहीं, केवल अपने मान में आ करके, राज-सम्मान में पाण्डवों का विनाश करने गए। अपने सात जन्मों के पुण्यों

को समाप्त कर बैठे। जिन सात जन्मों के पुण्यों से ऋषि की उपाधि मिली थी, वह उपाधि भी समाप्त हो गई। यह है मानव की आकृति। वास्तव में मर्यादा वह पदार्थ है जिस मर्यादा में चलकर यह सब समाज का समाज सुधर जाता है और अपने कर्त्तव्यों के तट पर आ जाता है। (आठवां पुष्प ६-११-६२ ई.)

युधिष्ठिर का राजसूर्य-यज्ञ

जब युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ किया था तो यहाँ सर्व राजा आ पहुँच थे और उन्हें राजा अर्जुन, भीम और नकुल की आज्ञा से सबको सन्तुष्ट किया था। इन्द्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। दुर्योधन वहाँ आ गए। दुर्योधन वहाँ आ गए। दुर्योधन ने यह विचारा कि यह पाण्डवों का यज्ञ नष्ट हो जाए, इनके यज्ञ में कुछ न रहे। परन्तु जहाँ ईश्वर होता है वहाँ कोई प्राणी उसको नष्ट करना चाहता है तो उसके नष्ट करने से कोई नष्ट नहीं होता। (ग्यारहवां पुष्प ३१-७-६८ ई.)

जिस समय यज्ञ का कार्यक्रम बनने लगा कि कौन-कौन मनुष्य क्या-क्या करेगा। तो युधिष्ठिर जी से कहा कि महाराज! आप तो यज्ञ दृष्टिपात करते रहो। अर्जुन से कहा कि तुम सेवा करो। भीम से कहा कि तुम अस्त्रों-शस्त्रों को नियुक्त करो और शकुनि से कहा कि तुम पशुओं के भोजन के प्रति हो। इस प्रकार द्रव्य का स्वामी महाराजा दुर्योधन को बनाया। जब सब चुन लिए, महाराजा युधिष्ठिर कृष्ण से बोल, महाराज! आप क्या करेंगे? वह बोले कि मैं वह कार्य करूँगा जो मैं सदा परम्परा से करता चला आया हूँ। उसी कार्य को मैं कर

पाऊँगा। उन्होंने कहा कि महाराज! क्या करोगे? कृष्ण ने कहा कि यज्ञ में जो अतिथि आएँगे मैं उनके चरणों को स्पर्श करके आचमन करूँगा। (बारहवां पुष्प पृष्ठ-७)

महाराजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूर्य यज्ञ किया। इस यज्ञ में सब राज्य-सम्पत्ति लगा दी गयी। ऐसा सुन्दर यज्ञ था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय वह नेवला भी उस यज्ञ में जा पहुँचा और यज्ञ शेष में जा स्नान किया। किन्तु उसका शरीर स्वर्ण का न हुआ। नेवला व्याकुल होने लगा। उस समय महाराजा युधिष्ठिर ने नेवले से कहा कि अरे नेवले! तुम शोक युक्त क्यों हो रहे हो। उस समय नेवले ने कहा मैं शोक युक्त इसलिए हो रहा हूँ क्योंकि महाराज एक समय उदांग ऋषि महाराज ने यज्ञ किया था। जो सूक्ष्म सा यज्ञ था। परन्तु यज्ञ के होने से वृष्टि हो गयी थी और यज्ञ के यज्ञ शेष में स्नान करने से आधे शरीर का ही स्नान हुआ वह स्वर्ण का बन गया। हे महाराज। आपने इतना बड़ा यज्ञ किया है, मैंने इस अवशेष में स्नान भी किया परन्तु मेरा आधा शेष शरीर स्वर्ण का न हुआ। इसका क्या कारण है? उस यज्ञ में क्या विशेषता थी? मैं इसलिए व्याकुल हो रहा हूँ कि यह कैसा यज्ञ है?, जिससे मेरा आधा शरीर स्वर्ण का न बना? यह सुनकर महाराजा युधिष्ठिर व्याकुल होने लगे। उनकी व्याकुलता को देखकर नेवले ने कहा, हे महाराज! आप व्याकुल क्यों हो रहे हैं? महाराजा युधिष्ठिर ने कहा कि मैं इसलिए व्याकुल हो रहा हूँ कि मैंने इतना बड़ा यज्ञ किया परन्तु इसका कोई महत्व नहीं। क्योंकि आपका शरीर आधा सोने का

होने से रह गया है। यह यज्ञ तो न होने के तुल्य है। उस समय महाराजा कृष्ण ने जो षोडश कलाओं को जानने वाले थे, कहा कि अरे नेवले! शान्त रहो। आगे तो वह समय आ रहा है जब इतना भी नहीं रहेगा। आगे अन्धकर का काल आ रहा है। जब संसार में नाना प्रकार की अज्ञानता छा जाएगी। मानव के जीवन का कोई विकास न होगा उस समय तुम्हारा यह आधा शरीर जो स्वर्ण का है यह भी इस प्रकार का न रहेगा। आगे तो वह समय आने वाला है कि शुभ कार्य के लिए भी नाना प्रकार के सम्प्रदाय चल जाएँगे। यह संसार तो अधोगति को जा रहा हे। इस संसार की गति को न देखो, आज तुम शान्त होकर उस महान् गान को गाओ जिससे तुम्हारा वास्तविक विकास हो।

नेवले का शरीर वास्तव में स्वर्ण का नहीं हो गया था यह तो एक वैज्ञानिक वार्त्ता है। नेवले ने कहा था कि जब मैंने उस शेष को पाया था जहाँ तक उसका रंग पहुँचा वहाँ तक मेरा हृदय इतना पवित्र बन गया कि मैं उसका वर्णन ही नहीं कर सकता। महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ शेष को भी मैंने ग्रहण किया परन्तु इसमें मुझको कोई आनन्द न आया। (तीसरा पुष्प ८-३-६२ ई.)

महाराजा दुर्योधन

जब महाभारत संग्राम के लिए सामग्री एकत्र हो रही थी। महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण को कहा कि महाराज दुर्योधन की मति प्रभु ने हर ली है। उसके समीप जाएँ और वाक्य उच्चारण कीजिए। आपके वाक्य को स्वीकार करेंगे। भगवान् कृष्ण उनके द्वार पर जा पहुँचे, तो

महाराजा दुर्योधन ने उनका बड़ा आदर किया। वह शान्त मुद्रा में विराजमान हो गए।

दुर्योधन ने कहा, कहिए भगवन् आज आपने कैसे कष्ट किया?

भगवान् कृष्ण ने कहा भाई! हमारी यह इच्छा है कि तुम इस राज्य में से कुछ पाण्डवों को अर्पित कर दो। वह भी अपने जीवन की पूर्ति कर लेंगे।

दुर्योधन ने कहा भगवन्! मैं आपके वाक्यों को नष्ट नहीं करना चाहता। परन्तु राष्ट्र के इस प्रकार विभाजन नहीं हुआ करते। राष्ट्र का विभाजन हो जाए तो वहाँ कुछ नहीं रहता। आप राष्ट्र का विभाजन न करिए।

कृष्ण ने कहा नहीं, नहीं, हम राष्ट्र का विभाजन नहीं कराना चाहते। परन्तु उन्हें भी कुछ दीजिए जिससे वे भी अपने जीवन की पूर्ति करते चले जाएँ।

दुर्योधन ने कहा जितने स्थान में मानव का एक केश आता है इतनी भी भूमि उनको प्रदान नहीं की जाएगी।

कृष्ण ने बहुत कुछ कहा। परन्तु इस वाक्य के उच्चारण होते ही उन्हें प्रतीत होने लगा कि अब समय आ गया कि अब यहाँ अग्नि प्रदीप्त होगी। भगवान् कृष्ण ने कहा अच्छा दुर्योधन जैसी तुम्हारी इच्छा, परन्तु अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है। दुर्योधन ने उन्हें कुछ कटु शब्द कहा 'गौचर' और दुष्ट कहा भगवान् कृष्ण मग्न हो गए। दुर्योधन ने उनके लिए नाना प्रकार की खाने की सामग्री एकत्र की, परन्तु भगवान् कृष्ण ने कहा भगवन् मैं इस अन्न को नहीं खाऊँगा। क्योंकि

तुम्हारा अन्न तुम्हारी भावनाओं से दूषित हो चुका है। यह अन्न मुझे भी दूषित करेगा। दुर्योधन ने बहुत कुछ कहा परन्तु नाना प्रकार के भोजन को त्यागकर महात्मा विदुर के यहाँ जा पहुँचे। जो अन्न से पीडित रहता था, जो मार्ग से शाखायें लाता और उसका भोजन बनाकर दोनों प्राणी खाते। भगवान् कृष्ण ने वह भोजन मग्न होकर पान किया और पान करके वहाँ से चले। (आठवां पुष्प ११-५-६७ ई.)

अर्जुन और दुर्योधन का कृष्ण से युद्ध में सहायता प्राप्त करना

जब महाभारत का संग्राम होना निश्चित हो गया तब संग्राम के लिए दोनों पक्ष भगवान कृष्ण से सहायता लेने के लिए चले। एक स्थान से महाराजा अर्जुन चले तथा दूसरे स्थान से महाराजा दुर्योधन अभिमान से संलग्न महाराजा कृष्ण के सिर के आँगन में विराजमान हो गए। अर्जुन पश्चात् पहुँचा और वह उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। भगवान कृष्ण निद्रा में तल्लीन थे। निद्रा से जब जागरूक हुए तो प्रथम अर्जुन को दृष्टिपात किया और पूछा, कहो अर्जुन! किस प्रकार आए हो? आज क्या कार्य हो गया है? दुर्योधन ने कहा, भगवन्! मैं आया हूँ आपके द्वार! उन्होंने कहा, बहुत सुन्दर, बोलो क्या चाहते हो?

दुर्योधन..भगवन्! हम संग्राम के लिए सहायता चाहते हैं, हमें सहायता दो।

कृष्ण..भाई! तुम्हारी सहायता होगी परन्तु प्रथम माँग अर्जुन की होगी।

दुर्योधन..पहले आया तो मैं हूँ।

कृष्णा..यह तो मैं नहीं जानता परन्तु सबसे पहले मुझे अर्जुन के दर्शन हुए हैं। देखो केवल मैं एक स्थान में हूँ और एक स्थान में मेरी सर्वस्व सेना है। अब जो चाहते हो ले जाओ। महाराजा अर्जुन ने यह विचारा, मैं सेना का क्या करूँगा, जब मेरे द्वार जनार्दन आ जाएँ। तो उन्होंने कहा, भगवन्! मैं तो आपको चाहता हूँ। दुर्योधन बड़ा मग्न हो गया कि सर्वसेना मुझको युद्ध करने के लिए प्राप्त हो गई है। मैं इनका क्या करूँगा, इनको तो शस्त्र भी नहीं उठाना। (दसवां पुष्प १०-५-६८ ई.)

बभ्रुवाहन (अम्बरीश)

जिस समय महाभारत का संग्राम होने वाला ही था, उस समय अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन अपने स्थान से महाभारत संग्राम के लिए कुरुक्षेत्र में पहुँचने के लिए अवतरित हो रहे थे। मार्ग में ही भगवान कृष्णा और महाराजा अर्जुन का समागम हुआ। दोनों संन्यासी रूप में थे। इसलिए बभ्रुवाहन उन्हें अच्छी प्रकार न जान सका। उन्होंने कहा कि आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं बभ्रुवाहन हूँ। मैं पातालपुरी का राजा हूँ। मैं आपके इस महाभारत के क्षेत्र कुरुक्षेत्र को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। क्योंकि इसकी जो रज है वह बड़ी पावन है। मैं उसे दृष्टिपात करना चाहता हूँ।

यह सुनकर कृष्णा बोले, क्या तुम संग्राम करने आए हो?

बभ्रुवाहन..भगवन्! मैं संग्राम नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि संग्राम करने के लिए मेरे पास सेना नहीं है। हाँ, एक बात अवश्य है कि मैं

निश्चय करके आया हूँ, मैं अपनी माता से आज्ञा पाकर आया हूँ कि कुरुक्षेत्र में मैं उस स्थान में रहूँगा जहाँ से यह दृष्टिपात करूँगा कि जिसका पक्ष परास्त होगा, उसी स्थान में मैं उसी समय अस्त्रो-शस्त्रों से युक्त होकर उसी दल में शामिल हो जाऊँगा।

कृष्ण..तुम ऐसे बलवान हो, जो स्वयं उस स्थान में रहोगे जिसका दल परास्त होने वाला है।

बभ्रुवाहन..हाँ, महाराज।

कृष्ण..तुम्हारे द्वारा ऐसी क्या विशेषता है?

बभ्रुवाहन..भगवन्! मैंने अपने जीवन में तीन अस्त्रों..शस्त्रों को जाना है। उन तीनों से मुझे यह विश्वास रहता है कि मेरा एक-एक अस्त्र ऐसा है कि जो अठ्ठारह की अठ्ठारह अक्षौहिणी सेना को एक ही समय में समाप्त कर सकता है। यह सुनकर कृष्ण ने पूछा, इसकी परीक्षा क्या है?

बभ्रुवाहन..भगवन्! आप इसकी परीक्षा ले सकते हैं। यह मेरा अस्त्र है, इसमें आपके समीप जो वृक्ष है इसी महान् कृतियों में इसे अर्पित कर रहा हूँ, इसकी पत्ती-पत्ती को छेदन करके यह यन्त्र मेरे द्वार आ जाएगा, यही मेरे अस्त्र की विशेषता है।

कृष्ण..हम परीक्षा चाहते हैं।

उस समय ब्रवीक (बभ्रवाहन) ने ऐसा ही किया, अपने अस्त्र का प्रहार कर दिया। यह वृक्ष की पत्ती-पत्ती को छेदन करने लगा। कुछ पत्तियाँ भगवान कृष्ण ने अपने पगों के नीचे कर ली थीं, उस समय जब अस्त्र पत्ती-पत्ती को छेदन कर रहा था और सूक्ष्म पत्तियां

रह गईं तो महाराजा ब्रवीक ने कहा..हे भगवन्! आपके पगों का छेदन करके यह मेरे समीप आ सकता है।

भगवान कृष्ण ने उन पगों को दूर कर लिया उन पत्तियों को छेदन करके वह अस्त्र महाराजा ब्रवीक के समीप आ गया। उसी अस्त्र को आज ब्रह्मास्त्र कहा जाता है।

अब महाराजा कृष्ण और अर्जुन ने यह विचारा कि इसका तो ऐसा भंयकर परिणाम हो सकता है। यह महाभारत कुरुक्षेत्र भी नहीं होने देगा अब क्या करना चाहिए?

अर्जुन ने कहा इससे कुछ और जानकारी करो। वह महाराजा ब्रवीक से बोले..हे ब्रवीक जब तुम इतने क्षत्रिय हो, इतने महान् वैज्ञानिक हो तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम दानी कितने हो।

ब्रवीक..प्रभु! जो आप चाहेंगे वह मैं दान में अर्पित करने वाला हूँ।

कृष्ण..यह जो कण्ठ के ऊपर का भाग है, इसे हमें अर्पित कर दीजिए।

ब्रवीक..यह ऐसा व्यवहार क्यों? मैंने आपको जान लिया है, आप तो कृष्ण हैं। आप ही इस महाभारत के रचयिता हैं। इसलिए आपको मैं यह दान दे रहा हूँ। आप मेरे कण्ठ से ऊपर वाले भाग को अर्पित कर लीजिए।

कृष्ण..नहीं, हम आपके शरीर से दूर नहीं चाहते। आप इस संग्राम को दृष्टिपात करो। परन्तु भुजाओं से अस्त्रों-शस्त्रों से कार्य नहीं कर पाओगे।

ब्रवीक..यह मुझे स्वीकार है।

इसके पश्चात् तीनों प्राणी एक स्थान में विराजमान हो गए। तीनों का परिचय हुआ। क्योंकि वह अर्जुन का पुत्र था। अर्जुन के चरणों को स्पर्श किया और कहा कि आप तो मेरे पिता हैं। आप यदि चाहते हैं तो हे पिता आपको संग्राम की आवश्यकता नहीं। मैं इस संग्राम को एक क्षण समय में समाप्त कर सकता हूँ।

अर्जुन..नहीं, हम ऐसा नहीं चाहते।

कृष्ण..हे ब्रवीक! क्या तुम्हें इस संग्राम में निमन्त्रित किया गया है?

ब्रवीक..प्रभु! मुझे किसी ने निमन्त्रित नहीं किया और न मैं निमन्त्रण चाहता हूँ। क्योंकि इस संगा्रम से तो हमारे ही परिवार का नाश है। भगवन्! मैं एक वाक्य और जानना चाहता हूँ कि आप तो जनार्दन हैं, केशव हैं। परन्तु ऐसा क्यों हुआ?

कृष्ण..यह इसलिए हुआ कि इस समय विज्ञान की पराकाष्ठा, विज्ञान की प्रतिभा उज्ज्वल हो गई है। जब ईश्वरवाद नहीं होता उस समय अभिमान की मात्र प्रबल हो जाती है। अभिमान का परिणाम केवल विनाश हुआ करता है। इसलिए आज इसके विनाश का कारण उपस्थित है। मुझे तो केवल ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।

ब्रवीक..संसार में ईश्वर भी कोई वस्तु होता है।

कृष्ण..संसार मे ईश्वर भी होता है। क्योंकि ईश्वर को न मानने से ही यह संग्राम है।

ब्रवीक..प्रभु! मैं तो विज्ञान की प्रतिभा में परिणत होता हुआ अब मैं बुध में जाने का प्रयास कर रहा हूँ। मंगल में जाने वाले यन्त्रों के

निर्माण में मैं कटिबद्ध हो रहा हूँ। कुछ समय से मेरी यह प्रबल मनोकामना जागरूक हो रही है कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है।

कृष्ण..अरे ब्रवीक! ईश्वर को न मानना ही संसार में अन्धकार है और ईश्वर को स्वीकार करना ही प्रकाश कहा जाता है। जब मानव के हृदय में राष्ट्र के गर्भ में ईश्वरवाद होता है, मानववाद होता है उस समय ऐसी रक्त भरी क्रान्ति नहीं हुआ करती। रक्त भरी क्रान्ति का जो कारण होता है वह ईश्वरवाद न मानना ही होता है। आध्यात्मिक विचारों में ऊँचे विचार होते हैं और ईश्वर से ही राष्ट्र का निर्माण ऊँचा हुआ करता है, राष्ट्र में दुर्बलता नहीं होती। इसलिए आज राष्ट्र में प्रबलता न होने के कारण केवल ईश्वर की प्रतिभा को नष्ट करना है। आध्यात्मिकवाद में अपने से दूर कर देना है।

महाराजा ब्रवीक ने यह स्वीकार कर लिया तो उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं तो ईश्वरवाद में विश्वास नहीं कर रहा था, आज मुझे यह ज्ञान हुआ है कि वास्तव में जब प्रकृति के गर्भ में जाते हैं तो अणु-परमाणुओं को एकत्रित करने लगते हैं। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने तुझे इतना मोह लिया है, इतना ममतामयी में धारण कर लिया है, क्योंकि उस प्रकृति के गर्भ में जाने के पश्चात् मैं ब्रह्म-चेतना को अपने से दूर कर देता हूँ। इसलिए आज से मैंने यह संकल्प धारण कर लिया है कि मैं ईश्वरवादी बनूँगा और उसकी प्रतिभा को जानना, मेरा अनुसन्धान करना एक लक्ष्य होगा।

कृष्ण..अरे ब्रवीक! क्या तुम ईश्वर पर अनुसन्धान कर सकते हो? ईश्वर पर आज तक कोई अनुसन्धान नहीं कर पाया है। ईश्वर को

वही जानता है जो अपने पर अनुसन्धान कर लेता है। जो अपने पर अनुसन्धान नहीं कर पाता वह संसार में प्रभु पर अनुसन्धान कर ही नहीं सकता। (इक्कीसवां पुष्प २९-७-७३)

जन्मेजय

महाराजा परीक्षित के राज्य में महाराजा जन्मेजय सर्वस्व यज्ञ कराने के पश्चात् जिसको हम पूर्वकाल में जन्मस्ती कहा करते थे, आधुनिक काल में उसको जर्मनी कहा जाता है, वहाँ जाकर जन्मेजय ने सूक्ष्मसा राष्ट्र बनाया। वहाँ वेद के अनुपम साहित्य को स्थापित करता चला गया। उस वेद की विद्या से उस राष्ट्र में विज्ञान ने इतनी प्रगति की है। आज जो विज्ञान हम देखा करते हैं वह विज्ञान वेदों से ही प्राप्त होता है। (छठा पुष्प १५-७-६४ ई.)

ऐतिहासिक स्थानों का परिचय

ग्राम रामनगर तहसील आँवला जिला बरेली

आँवला से कुछ दूर पर मानव अवशेष प्राप्त होते हैं। वहाँ पर भीम और घटोत्कच की विज्ञानशालाएँ थीं। यह नगर सोमकामुककेतु कहलाता था। घटोत्कच पाण्डवों की सेना का सेनापति था तथा वह यहीं निवास करता था, यहाँ उसकी विज्ञानशालाएँ थीं तथा वे नाना प्रकार के वैज्ञानिक अस्त्र -शस्त्रों का निर्माण करते रहते थे। यह स्थान गंगा के पूर्वी तट पर है। गंगा के जलों के अवशेषों को लेकर उनसे नाना प्रकार के अणुओं का निर्माण करते रहते थे। 'आपोज्योति' लेते हुए यहाँ नाना प्रकार की आकृति तथा सुहानी रहती थी। महाभारत

संग्राम में ये सब सेनाएँ तथा घटोत्कच समाप्त हो गए। परन्तु यहाँ भीम का निवास रहा। जब महाराजा युधिष्ठिर को वन प्राप्त हुआ था तो उसे इसी स्थान पर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यहीं पर द्रौपदी तथा युधिष्ठिर को ऋषियों ने वह बटलोई दी थी जिससे भोजन का यज्ञ चलता था। महात्मा दुर्वासा ने पाण्डवों को शाप देने का प्रयास यहीं पर किया था। महाभारत के समाप्त हो जाने के पश्चात् यहाँ कुछ भवनों का निर्माण किया गया। यहाँ पर पाण्डवकाल में युधिष्ठिर का न्यायालय रहा। भगवान कृष्ण तथा अर्जुन ने विज्ञानशालाओं में यहाँ अपने अवशेषों का निर्माण किया था। इसके पश्चात् यहाँ अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का भी न्यायालय रहा था। उस समय भी उसके राष्ट्र की सेनाएँ यहाँ रहा करती थीं। इसके पश्चात् यह भूमि निरमानव बन गई। इसके पश्चात् यहाँ रमकेतु नाम की नगरी रही जिसमें शूद्र प्राणी रहते थे। इसके बाद वह भी समाप्त हो गयी।

इसके पश्चात् जैन काल में एक तपस्वी ने आकर यहाँ तपस्या की, उनके तपस्वी बनने के पश्चात् उसके अवशेषों के कारण उस समाज ने दो-तीन हजार वर्ष पूर्व यहाँ देवालय का निर्माण किया तथा उसमें तपस्वी की मूर्ति को स्थापित किया, इसके पश्चात् यहाँ रेमकेतु, सुहागिनी, मृदानी तथा केकरु नाम के जैन हुए, जिन्होंने इन मन्दिरों का निर्माण किया, इसके पश्चात् यह निर्माण इसी प्रकार होता रहा।

यहाँ एक पुस्तकालय था जिसमें घटोत्कच, भीम तथा परीक्षित की हस्तलिखित पोथियाँ थीं। जिनमें चन्द्रयान तथा अन्य लोकों को जाने

के यन्त्र बनाने का विज्ञान था। उसको उस समय जला दिया गया जब यहाँ जैन देवालय बने। पाण्डवों ने गंगा पार करके यहाँ पर अपना कुछ काल बिताया था। उस बटलोई से यहीं पर भण्डारा चलता था। इसके पश्चात् पाण्डव अपना गुप्तकाल बिताने के लिए विराटपुरी चले गए, जो इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण भाग में स्थित था।

इस भूमि पर भीम तथा घटोत्कच ने यज्ञ कराना चाहा तो उस समय व्यास, सोमकेतु, शीर्ष, महर्षि कुम्भ, जमदग्नि, शाम मुनि ऋषि जिनको सांख्य दर्शन का कर्त्ता कपिल भी कहा जाता है, यहाँ आए थे। यज्ञ छः मास तक चला था। इस यज्ञ से प्राप्त सुगन्धियों के परमाणुओं को लेकर, उनको ज्ञान-विज्ञान में परिणत करके यन्त्रों से चन्द्रयान आदि का निर्माण किया था।

इस स्थान पर इस समय जैन देवालय हैं। जैन शब्द को वैदिक सन्धि करने पर इसका अर्थ 'अहिंसा परमोधर्मः' बनते हैं, जहाँ अहिंसा की पवित्र वेदी होती है, उसी को जैन समाज कहते हैं। जिन महापुरुषों का यह देवालय है उनका जीवन 'अहिंसा परमोधर्मः' रहा है। उनके जीवन की नाना घटनाएँ हैं। एक समय वह तपस्या कर रहे थे। प्रकृति का स्वभाव है कि वह सबकी परीक्षा लेती है। जब उनका जपन चल रहा था तो उनके चरणों के समीप सर्पराज आ गए किन्तु उनका जपन चलता रहा, उनकी तपस्या और निग्रह चलती रही। आत्म-निग्रह वाला जो प्राणी होता है वह तपस्वी होता है। इन्द्रियों का निग्रह ही 'अहिंसा परमोधर्मः' कहलाया गया है। पातंजलि के अनुसार 'चित्तवृत्ति निरोध' चित्त की वृत्तियों के निरोध

करने का नाम ही योग है। उस जपन को सुनने के लिए मृगराज आ गए। वे इतने तपस्वी थे कि वेद का 'अहिंसा परमोधर्मः' वाला परम्परा वाला विचार उनमें रमण करता रहता था। आज उनके अनुयायी कहाँ से कहाँ चले गए। (पन्द्रहवां पुष्प २३-८-७१ ई.)

ग्राम बरनावा (वारणावत) जिला मेरठ

यह पाण्डव स्थल की भूमि है। यहाँ महानन्द ने भी कई बार तपस्याएँ कीं तथा पुरातन काल में श्रृंगी जी ने यज्ञ भी कराए। इस स्थान पर एक शिवालय था। एक श्वेत शक्ति नाम का वैश्य रहता था उसने इस शिवालय का निर्माण कराया था। इससे पूर्व यहाँ अप्रताम अश्वम था जो महाराजा कृतियों के समय में विनाश हो गए। यहाँ कुछ खण्डहर थे जहाँ साकृत राजा रहता था। महाराजा परीक्षित न्यायालय के भी कुछ खण्डहर थे। उसके पश्चात् यहाँ शिवालय तथा "आहे आस्वात् कूप" बनाए गए। यहाँ पर भीम और उसके पुत्र घटोत्कच की विज्ञानशालाएँ रहीं। ये नदियाँ ३५० वर्ष पूर्व तक आधा योजन दूरी तक प्रवाह रखती थीं। बरनावा में २२ लाख मानव वास करते थे। यहाँ लाक्षागृह का निर्माण किया गया था। अब यहाँ इसको यवनों ने श्मशान भूमि बना दिया। एक सरबुद्दीन नाम का यवन था। उसने २२ ब्राह्मण कन्याओं को नष्ट करके यहाँ दफन कर दिया था। उसी सरबुद्दीन को आज यहाँ पूजा के योग्य समझा जाता था। पाँच वैश्य कन्याओं को नष्ट करके कूप में डाल दिया था। (अठारहवां पुष्प २३-२-७२ ई.)

पुरातन काल में जब यह वारणावत पुरी नहीं थी इस स्थान पर पाँच ऋषियों ने तप किया था। ये पाँच ऋषि थे जिन पर सवार होकर महाराजा नहुष इन्द्र बनने की कामना लेकर चला था। यह हर नदी का तट है। इस पर चार ऋषि तप करते थे। यह वही तट है जिस पर नारद मुनि ने इन्द्राणियों को शिक्षा दी थी और महाराजा महुष सर्पयोनि को प्राप्त हो गए थे। महाराजा युधिष्ठिर ने द्वापर काल में यहीं यज्ञ किया था। यह भूमि इतनी पवित्र है कि कितने ही ऋषियों ने इस पर तप किया ये चार ऋषि यहाँ तपस्या करके महर्षि विभाण्डक के यहाँ पहुँचकर परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। सतयुग में महर्षि मुद्गल ने भी इसी स्थान पर तपस्या की थी। इस पुण्य भूमि पर आत्मा संसार का कल्याण करने आती है। वे भौतिक वातावरण के लिए न हो करके, भौतिक द्रव्य को संसार के कल्याग में अर्पित करके उनका पुनः उत्थान करते हैं। द्रव्य का एक ही मुख्य ध्येय होता है, कि उससे पुण्य भूमि को ऊँचा बनाना। जो मानव पुण्यभूमि में भी पुण्य नहीं दे सकता वह अपने आप को निगलता रहता है। पुण्य भूमि को उत्तम बनाना मानव का कर्त्तव्य है। अच्छाइयों को लाने का प्रयास किया जाए। इस स्थान से श्रृंगी जी का मिलान भी होता रहा है।

यहाँ पर दुर्योधन ने पाण्डवों को नष्ट करने के लिए एक लाक्षागृह बनवाया था। किन्तु पाण्डव तो बचकर जीवित चले गए। अन्त में युद्ध हुआ। दुर्योधन संसार में न रहा तथा पाण्डवों की विजय हुई। यहाँ पर अर्जुन तथा घटोत्कच का बहुत विशाल पुस्तकालय था जिसमें

सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, मंगल-विज्ञान के ऊपर अनेकों पुस्तकें थीं। जैनकाल में इनको जलाकर नष्ट कर दिया गया।

यवनों के शासन काल में यहाँ पर एक चन्द्रकान्त नाम का वैश्य था। जो पतन करने वाला था। उन्होंने एक भव्य मन्दिर बनवाया। यहाँ पर १५२२ वर्ष पूर्व वाणिज्य करने वालों ने एक कूप बनवाया था। यवनों ने मन्दिर के पुजारी को नष्ट कर दिया तथा मन्दिर को भी नष्ट कर दिया।

लाक्षागृह पर लगभग ४००० वर्ष पश्चात् पुनः विद्युत प्रकाश का निर्माण हुआ। इससे पूर्व भी था। उस समय विज्ञान के ऊपर काफी अनुसन्धान होता रहा था।

यहाँ पर ४ कोसों को दूरी में नदी अपना प्रवाह लिए रहती थी। उस समय इसके तट पर नाना यज्ञ होते रहते थे। इसके तट पर द्रोणाचार्य की स्थली थी। जिनमें अस्त्रो-शस्त्रों की विद्या होती थी। सैनिक यहाँ नाना प्रकार की शिक्षाओं का अध्ययन करते थे तथा धनुर्विद्या का पठन-पाठन होता था। उस समय यहाँ पर श्वेतकेतु नाम के ब्राह्मण थे जो ब्रह्मचारियों को यज्ञ कराते थे। उनका नित्यप्रति का कर्म करता था कि सूर्योदय होते ही यज्ञशाला में विराजमान हो जाते और यज्ञ होता। यज्ञ की सुगन्धि से यहाँ का वातावरण इतना सुगन्धित रहता था कि वहाँ जो भी प्राणी जाता वह सुगन्धित हो जाता था।

एक समय महानन्द जी गुरु की आज्ञा से द्रोणाचार्य की स्थली को देखने गए तो वहाँ पर यजुर्वेद पारायण याग हो रहा था।

महानन्द ब्रह्मचारी को उपदेश देने का समय दिया गया तो उन्होंने कहा था कि हे ब्रह्मचारियों! तुम्हें ब्रह्मचारी रहना है, ब्रह्मचारी रहकर धनुर्विद्या को अपनाना है, इसको निगलना है, इसको चरना है। चरने का अभिप्राय यह है कि जो धनुर्विद्या के साथ में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह ब्रह्मचारी संसार में कितना भाग्यशाली होता है।

७ सप्तम अध्याय-शिक्षा-प्रद कथाएँ

बड़े मूर्ख की खोज

एक राजा थे, उनका राज्य बड़ा पवित्र था, राष्ट्र में कोई एक-दूसरे का ऋणी नहीं था। एक समय राजा पर्वतों से भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र में आ रहे थे। तो उनके मन में एक कल्पना जागी, 'अरे तू इतना महान् राजा है, इतनी प्रजा का स्वामी है किन्तु तेरे द्वारा एक छड़ी भी नहीं।' वह अपने राष्ट्र में पहुँचा और शिल्पकारों को बुलवाकर कहा कि तुम मेरे लिए एक छड़ी बनाओ जो भुजाओं में सुशोभित हो। शिल्पकारों ने करोड़ों मणियों से गूंथकर उसकी छड़ी को बनाया और राजा को अर्पित करते हुए कहा कि लीजिए भगवन्। राजा को वह छड़ी बड़ी प्रिय लगी।

एक समय वे पर्वतों पर भ्रमण के लिए जा पहुँचे। सांयकाल को लौट आ रहे थे तो उन्हांने देखा कि श्मशान भूमि पर एक वैरागी महात्मा हैं। राजा उसके समीप पहुँचे और कहा कि हे महात्मा! तुम यहाँ क्या कर रहे हो? चलो, मेरे नगर में चलो।

ऋषि ने उत्तर दिया..हे महाराज! आपके नगर में जो हैं वे ही एक दिन यहां आ जाएँगे, वहाँ जाकर क्या करूँगा।

राजा ने सोचा यह साधु बड़ा मूर्ख है और साधु से कहा कि अरे साधु! ले इस छड़ी को ले और इसे उसको दे देना जो तुमसे अधिक मूर्ख हो। साधु ने छड़ी को स्वीकार कर लिया। राजा अपने राष्ट्र में जा पहुँचे। राजा अपने राष्ट्र का पालन करते रहे और करते..करते

वह समय आ गया जब वह मृत्यु शैय्या पर स्थिर हो गए। केवल मृत्यु में कुछ समय रह रहा था। श्मशान भूमि में रहने वाले साधु ने अपने योगबल से देखा कि आज राजा मृत्यु को प्राप्त होने जा रहा है। साधु उस घड़ी को लेकर राजा के समीप जा पहुंचे। राजा ने साधु को दृष्टिगोचर पाया और कहा अरे मूर्ख साधु तूने यह छड़ी अभी तक किसी को नहीं दी।

साधु ने कहा..राजन्! मुझे अपने से मूर्ख कोई मिला ही नहीं जिसको मैं यह छड़ी देता। परन्तु राजन् जब आप इतनी बड़ी यात्रा में जा रहे हैं तो कितनी सेना साथ ले जाएँगे।

राजा ने कहा..अरे साधु! मैं तो आपको मूर्ख कह चुका हैं अरे इस अन्तिम यात्रा में यह सेना मेरे साथ नहीं जाएगी। साधु ने कहा..राजन्! सेना नहीं ले जाओगे तो ये मन्त्री तो अवश्य आपकी आज्ञा पालन करने के लिए और राष्ट्र की वार्त्ताओं का निर्णय करने के लिए साथ जाएँगे।

राजा ने कहा..अरे साधु! तू तो बड़ा मूर्ख है। अरे इस यात्रा में यह मन्त्री भी साथ नहीं जाएगा।

साधु ने कहा..यदि मन्त्री साथ नहीं जाएगा तो द्रव्य तो अवश्य साथ जाएगा। क्योंकि आपको खान-पान की आवश्यकता है, जिसके लिए धन अनिवार्य है।

राजा..अरे मूर्ख साधु! इस यात्रा में द्रव्य भी मेरे साथ नहीं जाएगा।

साधु..अरे राजन्! यह पत्नी तो अवश्य जाएगी।

राजा..अरे महामूर्ख! इस यात्रा में पत्नी भी मेरे साथ नहीं जाएगी।

साधु..पत्नी नहीं तो पुत्र ता अवश्य साथ जाएगा।

राजा..अरे महामूर्ख! पुत्र भी मेरे साथ नहीं जाएगा।

साधु..अरे राजन्! ये बड़े-बड़े गृह जो आपने बनवाये हैं ये तो आपके साथ जाएँगे।

राजा..अरे महामूर्ख! ये गृह भी मेरे साथ नहीं जाएँगे।

साधु..फिर आपके साथ क्या जाएगा?

राजा..मेरे साथ कुछ नहीं जाएगा।

तब साधु ने छड़ी लेकर राजा पर आक्रमण कर दिया और कहा "ले अपनी छड़ी को।" मुझसे तो बड़ा मूर्ख तू है। संसार में कौन होता है। अरे संसार में वे कर्म तो आज तक किए नहीं जो तेरे साथ जाते। जो जीवन भर करते रहे वह यहाँ के यहाँ रह गए। ले इस छड़ी को स्वीकार कर। राजा ने साधु के इन वाक्यों का पान किया और कहा प्रभु! मैंने वे कर्म नहीं किए जो आज मेरे साथ जाते। मुझे क्षमा करो। मैंने आपको सहस्रों बार मूर्ख कहा। प्रभु मुझे क्षमा करो। मैं महापापी हूँ। ऋषि दयालु थे। तथास्तु कहकर अपने आश्रम चले गए और राजा मृत्यु को प्राप्त हो गए।

शिक्षा

मानव को वह कर्म करने चाहिएं कि जब वह संसार से जाए तो यह कर्म भी उसके साथ जाएँ। इस भौतिक पिण्ड में आकर वह कर्म भी करो जो कर्म इस पिण्ड को त्यागते समय तुम्हारे साथ जाएँ और

आत्माओं में रमण करने वाले बनो। वह कर्म है परमात्मा का चिन्तन करना। अपने सदाचार को स्थापित और प्रभु को सर्वव्यापक मानकर कोई पाप न करना। (चौथा पुष्प १८-४-६४ ई.)

सत्संग का लाभ

एक राजा था। उसके यहाँ एक सूक्ष्म सा बालक था, वह राजा किसी साधु की संगति में आत्मिक-ज्ञान की चर्चा करने जाया करता था। वहाँ एक गान गाया जाता था कि ''अरे मानव! तू विरोध न कर, परमात्मा का चिन्तन कर। तुम्हारे द्वारा प्रीति होनी चाहिए।'' यह बालक के पूर्व ज्ञान का फल था। बालक ने वह ही अपने कण्ठ में धारण कर लिया। कुछ समय पश्चात् राजा और उसकी पत्नी दोनों का विरोध हो गया। दोनों ने प्रतिज्ञा कर ली कि अब एक-दूसरे से वाक्य उच्चारण नहीं करेंगे। अधिक समय हो गया। राजा और रानी दोनों की इच्छा हुई कि हम दोनों में कैसे प्रेमभाव हो, कैसे मिलन हो? एक दिन बालक सत्संग से आया और पिता के स्थान पर कहने लगे ''अरे मानव विरोध न कर। परमात्मा का चिन्तन कर।'' पिता ने कहा, अरे अपनी माता से जाकर उच्चारण करो। माता के स्थान पर गया और उच्चारण किया ''अरे मानव! विरोध न कर, परमात्मा का चिन्तन कर, प्रेम प्रीति से रह।'' जब ऐसा कहा तो माता ने कहा अरे पिता के द्वार जाओ। अब पिता के द्वार पहुँचे। पिता ने कहा माता के द्वार जाओ। बालक ने सोचा, अब ये दोनों ही मुझे उच्चारण न करने देंगे। वह दोनों के मध्य विराजमान होकर उच्चारण करने लगा। एक स्थान से पिता ने उसे कण्ठ लगाया और एक स्थान से माता ने उसे

कण्ठ लगाया। उस बालक के प्रति माता-पिता का प्रेम उज्ज्वल था। उसने कितनी ऊँची क्रोध की सीमा को नष्ट कर दिया।

इसी प्रकार आत्मा माता की प्रवृत्ति तथा पिता परब्रह्म परमात्मा योगी को अपने हृदय में धारण कर लेते हैं, वह ऋषि बन जाता है। प्रकृति और परमात्मा के मध्य जो विरोध था उसको इस महान् आत्मा ने दोनों को अपनाते हुए नष्ट कर दिया।

संसार कल्प-वृक्ष है

एक बार देवर्षि नारद इस मृत-मण्डल में आ गए। उन्होंने विचार किया कि मैं किसी प्राणी को स्वर्ग में ले चलूँगा। जब वह इस संसार मे भ्रमण करने लगे। भ्रमण करते-करते क्या देखा कि एक मानव बड़े दुःखित हो रहे हैं। ऐसे कहते हैं कि उसकी पत्नी उसे नित्य-प्रति दण्ड दिया करती थी। प्रातःकाल में उसे दण्ड दिया तो वह बड़ा दुःखित हो रहा था और प्रभु से याचना कर रहा था कि प्रभु! मैं जीवन नहीं चाहता, केवल मृत्यु चाहता हूँ। देवर्षि नारद बोले यह मनुष्य बड़ा दुःखित हो रहा है और उससे कहा कि चलो आज मैं तुम्हें स्वर्ग ले चलूँ, वह बोला चलिए भगवन्!

नारद मुनि और वह मानव दोनों भ्रमण करते हुए स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे। वहाँ जाकर नारद मुनि ने कहा कि देखो भाई यह स्वर्ग का द्वार है। मैं स्वर्ग में भगवान् विष्णु से आज्ञा लेने जा रहा हूँ और तुम इस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो जाओ। यहाँ सुन्दर प्रभु का चिन्तन करो। नारद मुनि तो स्वर्ग में जा पहुँचे और मानव उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गया, जहाँ मन्द-सुगन्ध वायु चल

रही थी, आनन्द आ रहे थे। मानव के मन में कल्पना जागी कि अरे! यह तो बड़ा सुन्दर स्थान है। यहां मेरे लिए एक आसन होना चाहिए था। वह तो कल्पवृक्ष था, कल्पना करते ही सुन्दर आसन आ गया। उस आसन पर विराजमान हो गए। अब उस मनुष्य के मन में कल्पनाएँ जागीं, जब ऐश्वर्य ने उसे लालायित कर दिया और उसके मन में कल्पना जागी कि यहाँ तो नाना अप्सराएँ होनी चाहिएं ऐश्वर्य के लिए। कल्पना करते ही वहाँ ऐश्वर्य के लिए अप्सराएँ भी आ गयी। इतने में उस मनुष्य के मन मे कल्पना जागी कि यदि मृतलोक में मेरी पत्नी होती तो तेरे ऊपर डंडा होता। अब कल्पना करते ही मृतलोक वाली पत्नी भी आ पहुँची। अब वह मानव बड़ा दुःखित हुआ। आगे वह मानव और पीछे उसकी पत्नी दीर्घ गति से भ्रमण कर रहे थे कि इतने में नारद मुनि आ पहुँचे। उन्होंने अपनी दीर्घ वाणी से कहा, अरे! यह क्या? अपनी कल्पना को त्याग। उस मनुष्य ने कल्पना को त्यागा, कल्पना को त्यागते ही न पत्नी ही है, न अप्सराएँ, न आसन है, केवल वही कल्पवृक्ष विराजमान है। देवर्षि नारद ने कहा, अरे महामूर्ख! जब तुझे इस कल्पवृक्ष के नीचे कल्पनाएँ ही करनी थी तो यहाँ भी तूने अशुद्ध कल्पनाएँ कीं। अरे! अगर तू यहाँ ऋषि बनने की कल्पना करता तो ऋषि तो बन जाता, यदि देवता बनने की कल्पना करता तो देवता बन जाता।

शिक्षा

यह ससांर कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव आया है ऊँची से ऊँची

कल्पना करने के लिए, यहाँ तुम्हें कल्पना करनी है, कर्म करने हैं, कर्म किए बिना तो रह नहीं सकते। इसलिए तुम्हें मुक्ति के लिए कर्म करने चाहिएं।

सुख का मूल 'निष्काम वृत्ति'

एक समय एक महान् ऋषि थे। एक राजा उनके समीप जाया करते थे, उनकी बड़ी सेवा किया करते थे। परन्तु उस राजा की प्रजा नाना चिन्ताओं में मग्न थी, इसलिए उनकी प्रजा बहुत दुःखी थी। इसी से राजा बड़ा दुःखित था। ऐसी दशा में राजा ने मन में सोचा कि भाई! तेरे वश का राज्य नहीं है, अब क्या करना चाहिए।

ऐसा विचार कर वह राजा ऋषि के पास जा पहुँचा। राजा ने ऋषि से निवेदन किया, महाराज! मेरे वश का राज्यकार्य नहीं है, क्या किया जाए, पुत्र तो अभी छोटा है?

तब ऋषि ने कहा, यदि राज्य पुत्र को नहीं देते तो राज मातेश्वरी को दे दो।

राजा ने कहा, मातेश्वरी से भी काम नहीं चलेगा।

तब ऋर्षि से कहा, अच्छा भगवन्! आप ले लीजिए। राजा ने उस राज्य को संकल्पपूर्वक ऋषि को दान कर दिया।

ऋषि ने पूछा कि हे राजन्! अब तुम कहाँ जाओगे?

राजा ने कहा, ऋषिवर! कोष में से कुछ द्रव्य लेकर, दूसरे देश जाकर कोई व्यापार करके कुछ निर्वाह करूँगा।

उस ऋषि ने कहा कि राजन्! कोष का द्रव्य राज्य का है और अब राज्य मेरा है, तुम्हारा नहीं।

राजा ने कहा कि महाराज! यह भी सत्य है, मैं वैसे ही चला जाऊँगा। दूसरे राष्ट्र में जाकर किसी का सेवक बन जाऊँगा।

ऋषि ने कहा, अरे! जब तुम्हें सेवक ही बनना है तो तुम मेरे ही सेवक क्यों न बनो, मेरा सेवक बनकर राज्य का कार्य करो। जनता को कहो कि राज्य मेरा नहीं है मेरे गुरु का है। गुरु का भय करो, निष्काम वृत्ति से जीवन के भोगों को भोगते हुए राज्य का कार्य करते रहो, निष्काम वृत्ति से तुम्हारा जीवन इन चिन्ताओं से पृथक, हो जाएगा, जीवन स्वच्छ बन जाएगा। राजा ने वैसा ही किया। ऐसा करने से प्रजा शान्त हो गयी।

परोपकार 'अनन्तसुख'

एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा और उसने कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा, क्या वेतन लोगे?

उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नहीं लूँगा परन्तु मेरा एक नियम है कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूँगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो कार्य उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात् उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिन्तित रहने लगा। एक समय वे मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा, आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्त्ता

कह सुनाई कि मेरे द्वारा एक सेवक आया हुआ है, उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको देने के लिए कार्य नहीं है। इसलिए मैं उसकी भुजाओं से नहीं बचूँगा।

उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भई! तुम उसको अपने कार्य में ही क्यों लगा रहे हो। संसार के कार्य में लगा दो, उसको छुटकारा नहीं मिलेगा और तुम उसकी भुजाओं से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्त्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आए और उसको संसार का कार्य बता दिया कि जाओ तुम संसार का कार्य करो। तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसकी भुजाओं से बच गया।

धर्म पवित्र मन की ध्वनि है

शतपथ नाम की पोथी का निर्माण करते हुए आचार्य ने अपने प्रथम पृष्ठों में एक वार्त्ता प्रकट की है

दैत्य और देवताओं की वार्त्ता प्रकट करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि एक समय दैत्यों और देवताओं का महान् संघर्ष हो रहा था। ऐसा विशाल संग्राम हुआ कि देवताओं ने दैत्यों को विजय कर लिया। देवताओं में एक महत्ता ओत-प्रोत होने लगी और प्रत्येक के हृदय में आनन्द की भावना ओत-प्रोत हो गई। ऐसा कहा जाता है कि एक समय देवताओं की सभा में वृष का जन्म हो गया। वृष के मुखारविन्द से एक ध्वनि का जन्म होता था। उस ध्वनि को जो भी मानव श्रवण करता था वही देवता बन जाता था।

जब यह संसार देवता बनने लगा तो कहा जाता है कि दैत्यों की सभा हुई। महाराजा विरोचन को दैत्यों ने निमन्त्रण दिया और प्रार्थना की कि देवताओं की सभा में एक वृष का जन्म हुआ है। उसके मुखारविन्द से एक ध्वनि का जन्म होता है जो भी ध्वनि को श्रवण करता है वह देवता बन जाता है। यह संसार अब देवता बनता चला जा रहा है। हम दैत्यों का क्या होगा?

विरोचन जी ने कहा कि हे दैत्यों! शुम्भ जी जाओ इस वृष को छला जाए। जिसके मुखारविन्द से ध्वनि उत्पन्न होती है। कहा जाता है उस समय शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज तीनों दैत्यों ने क्रियात्मक कर्म करने के लिए कार्यक्रम बनाया कि वृष को छलेंगे।

वृष को छलने के लिए दैत्यों ने महाराजा विरोचन की आज्ञा पा करके वहाँ से प्रस्थान कर लिया। तब वह वृष के द्वार आए तो वृष को यह ज्ञान हो गया था कि आज तू दैत्यों के द्वारा छला जाएगा। महाराजा वृष ने उस समय वह अपनी ध्वनि रेणुका को अर्पित कर दी। वह ध्वनि रेणुका में प्रतिष्ठित हो गयी और वृष को दैत्यों ने छल लिया। जब दैत्य उस महान् वृष को छल लाए और विरोचन के सम्मुख लाए तो महाराजा विरोचन ने उसको मन्थन किया। मन्थन करने के पश्चात् उसमें वह ध्वनि नहीं थी। जिससे यह संसार देवता बनता था। वह ध्वनि जब न रही तो उन्होंने कहा कि ध्वनि कहां गयी? महाराजा विरोचन ने कहा कि हे दैत्यों! वह ध्वनि तो रेणुका के द्वार चली गई। अब रेणुका को छलने के लिए शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीच तीनों ने प्रस्थान कर लिया। रेणुका को भी यह ज्ञान हो गया

था कि तू आज दैत्यों के द्वारा छली जाएगी। उस समय रेणुका ने उस ध्वनि को अग्नि के द्वार अर्पित कर दिया। रेणुका को दैत्यों ने छल लिया और जब सभा में लाया गया तो महाराजा विरोचन ने उस का मन्थन किया। मन्थन करने के पश्चात् उसमें भी वह ध्वनि न थी जिससे यह संसार देवता बनता था। दैत्यों ने कहा कि वह ध्वनि कहाँ गई? वह ध्वनि तो अग्नि में अर्पित हो गयी है। उन्होंने कहा कि आज हमने अग्नि को छलने के लिए प्रस्थान किया। उस समय अग्नि ने उस ध्वनि को यज्ञ के पात्रों में परिणत कर दिया। अग्नि को दैत्यों ने छल लिया परन्तु उसमें भी ध्वनि न मिली और अग्नि ने कहा कि अब तुम उस ध्वनि को अपने द्वारा अर्पित नहीं कर सकोगे।

संसार एक मोह जाल है

द्वापर काल में एक समय महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के द्वार पहुँचे! महाराज धृतराष्ट्र ने उनका ऊँचा स्वागत किया और कहा कि हे महात्मा विदुर! मुझे वर्णन कराइए कि आज का संसार कैसा है?

महात्मा विदुर बोले कि महाराज! आजका संसार बड़ा विलक्षण है। यह एक भयंकर वन में है, जहाँ भयंकर अग्नि प्रज्ञवलित है और सिंह व हाथी अपनी ध्वनि कर रहे हैं। मनुष्य इन्हें विचारता है तो वहाँ से भयभीत होकर तीव्र गति से अपने स्थान को आने लगता है और उस वृक्ष पर आ जाता है जो जलाशय के तट पर है। यहाँ देखता क्या है कि जलाशय से एक सर्प उसके निकट आता चला जा रहा है। उस सर्प से भयभीत होने लगता है और देखता क्या है कि जिस वृक्ष पर विराजमान है उस वृक्ष को छः मुखों वाला हाथी

निगलता चला जा रहा है। उस पेड़ को एक काले वर्ण का तथा दूसरा श्वेत वर्ण का चूहा उस पेड़ को काटते चले जा रहे हैं। आगे और गम्भीरता से देखता क्या है कि जिस वृक्ष पर वह विराजमान है उस पर मधु-छत्ता है और मधु गिर रहा है मनुष्य उसके आनन्द में मग्न है। महाराज यह है आज के संसार का मनुष्य।

महाराज धृतराष्ट्र ने कहा..कि इसको मुझे अच्छी प्रकार समझाइए।

इसका स्पष्टीकरण करते हुए विदुर ने कहा कि जब मनुष्य माता के गर्भस्थल में रहता है तो वह भयंकर वन में है। जहाँ प्राण रूपी हाथी अपनी ध्वनियाँ कर रहे हैं और प्राण-रूपी अग्नि प्रज्ञवलित हो रही है। उस समय यह मनुष्य प्रभु से याचना करता हुआ इस संसार सागर रूपी वृक्ष पर आ जाता है। इसके पश्चात् वह देखता है कि सर्प-रूपी मृत्यु उसके निकट चली आ रही है और गम्भीरता से देखता तो क्या कि छः मुखों वाला हाथी इस वृक्ष को निगलता चला जा रहा है।

वह छः मुखों वाला हाथी एक वर्ष है जिसमें छः ऋतुएँ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर हैं जो इस संसार रूपी वृक्ष को निगलता चला जा रहा है और गम्भीरता से देखता है कि इस छः मुख वाले हाथी को श्वेत व काले वर्ण वाले चूहे 'दिन व रात' काटते चले जा रहे हैं।

इसके पश्चात् और भी गम्भीरता से देखता है कि काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ रूपी मधुछत्ता है, जिस छत्ते के आनन्द में यह मनुष्य मृत्यु को भूल बैठा है।

अतः इससे बचने के लिए तुम्हें ज्ञान रूपी प्रकाश को पाना चाहिए।

संसार रूपी समुद्र से निस्तारा

सतोयुग में एक टटीरी समुद्र तट पर रहा करती थी। एक समय समुद्र ने उस टटीरी के दो अण्डों को अपने में रमण कर लिया। टटीरी ने सोचा इस महान् पापी समुद्र ने मेरे दोनों पुत्रों को अपने में रमण कर लिया है। अब मुझको इसे शान्त करना चाहिए। वह इसको शान्त करने के लिए पृथ्वी के कणों को स्थापित करने लगी। इतने में अगस्त्य मुनि वहाँ आ पहुंचे और टटीरी से पूछा कि यह तू क्या कर रही है? उसने कहा इस पापी समुद्र ने मेरे दोनों पुत्रों को अपने में रमण कर लिया है। मैं इसको शान्त करना चाहती हूँ। अगस्त्य मुनि बोले, अरे! यह तू क्या कर रही है। मैं इस समुद्र को पान कर लेता हूँ। कहते हैं अगस्त्य मुनि ने तीन आचमन किए और तीन आचमनों में समुद्र को शोषण कर लिया। अपने उपस्थ इन्द्रियों के द्वारा समुद्र को खारी बना करके त्याग दिया और उन दोनों पुत्रों की रक्षा हो गई। अर्थात् संसार रूपी समुद्र में यह जीवात्मा रूपी अण्डे आवागमन के चक्र में डूबते रहते हैं पर जब वेद-ज्ञान प्रकाश जो त्रयी विद्या, ज्ञान-कर्म उपासना को तीन आचमन बना कर पान करता है वह इस संसार-सागर से पार हो जाता है।